

॥ श्रीमत् सुखसागर सहस्रविजयतेतराम ॥

॥ सु ख च रि त्र . ॥

(रचयिता)

मुनिवर्य श्रीमान् वीर पुत्र
आनंदसागरजी महाराज साहब.

SUKH CHARITRA.

BY

MUNIVARYA SHREEMAN VLER PUTRA
ANANDSAGARJLE MAHARAJ

(प्रसिद्ध कर्त्ता)

कोठारी पुनमचन्द्र आनंदमल्ल.
वीरानेर-राजपूताना

वीर सम्बत १४४३] वि सं १९१४ [सन १९११

प्रथम संस्करण
१००८

सर्व हक स्वाधीन

{ न्योछावर
तत्त्वग्रहण

अहमदाबादके

काठुपुर टंकशाळमें-वी युनियन प्रीन्टिंग प्रेस कंपनी लीमिटेडमें
मोतीलाल सांमळदासने ठापा



॥ श्री जिनेश्वरभ्यो नमः ॥

॥ श्रीमत् सुखसागर सद्गुरुभ्यो नमः ॥

॥ प्रस्तावना ॥

क्या कोई ऐसा पुरुष है कि जो अपने धुरंधर आचार्यादि महान् पुरुषोंके चरित्र सुनना न चाहे ? उन्होंने किस १ समयमें क्या २ महत्वके कार्य किये कि जिससे जन समुदाय एक अलौकिक हालतमें आ गया ? उत्तरमें कहना होगा कि अज्ञान प्रेमियोंको ठोढ़ प्रत्येक मनुष्य इस बातको जानने व सुनने की इच्छा करेगा ।

इस जैन शासनमें परम परमात्मा चरम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामीके पश्चात् अनेकानेक महान् विद्वान् उद्यमशील परोपकार परायणादि विशिष्ट गुण विभूषित ऐसे १ आचार्य होगये है कि जिनका चरित्र पढ़कर या सुनकर हरेक जन्म जिज्ञासु अपने आचरणको सुधार जैन शासनको उन्नत दशामें लानेके लिये प्रयत्नशील हो सकता है

आधुनिक समयमें जी पाश्चात्य विद्वानोंको पुरातन चरित्र (ANCIENT HISTORIES) पढ़ने व लिखनेका अत्यन्त शौख है इतना ही नहीं बरनवे अपना सर्व समय ग्रंथ व लेखादिके खोजमें व्यतीत कर अपनेको कृतकृत्य मानते हैं. तात्पर्य की महान् पुरुषोंका चरित्र मनुष्यको निर्मल बुद्धिधारक बना देता है

यद्यपि जैन वर्गमें सेकड़ों आचार्य प्रखर बुद्धिको वारण करनेवाले हो गये तदपि आसन्नोपकारियोंके चरित्र हमें जियादे लाजप्रद हो सकते हैं

वस इस ही बातको विचार कर इस ग्रंथमें एक महान् विद्वान् तपस्वी, यशस्वी, परोपकार परायणका चरित्र लिखनेका प्रयत्न किया गया है जैनके महान् उद्यमशील आचार्योंमें आप जी एक अद्वितीय मुनिराज हो गये हैं

आपका पात्र नाम "सुखसागरजी महाराज" आप असाधारण विद्वान् महा महोपाध्याय श्रीमान् कृमाकल्याणजी महोपाध्याय पदपर हुवे हे आपकी विद्यमानी वीर सं १३४५ विक्रम सं १७ वीर सं १४१९ विक्रम संवत् १९४९ तक रही

सच्चा चरित्र वही है कि जो जीवनीके साथका सार्थक सिद्धान्तिक रहस्यसे जरा हुवा हो तात्पर्यकी इस चरित्रके अदर ग्रन्थी महानुभावने अपनी विशाल बुद्धिसे योग्य १ स्थानो पर प्रसंगानुक्रमके ही रहस्यकी बातें उल्लेख कर जन समुदाय पर महोपकार किया है

इस ग्रंथके निर्माता पूज्यपाद गणाधीश्वर शान्त मृगुनि महाराज श्रीमान् त्रैलोक्यसागरजी महाराजके स्वयं वैरागी, गाल ब्रह्मचारी, बुद्धि विचक्षण, सुविनीत शिष्य श्रीमान् वीरपुत्र उद सागरजी महाराजने अपने अमूल्य समयको सार्थक कर गुरु जन्मि वश व परोपकारार्थ इस ग्रंथकी रचना कर अपनी निर्मल बुद्धिका परिचयेदा है।

आपने इसमें हमारे चरित्र नायकके अनुपम चरित्रको वक्त करते हुवे प्रथम ग्रहस्थात्रमके विषयकों खुलासा तौर पर उद्घृत किया है

आपने इसमें मुख्य १ चौबीस विषयोंको वक्त ही योग्यतासाथ दर्शाये है खासकर ज्ञान, दर्शन और चरित्रका आपने हेतु युक्ति कर नये ढंगपर इस प्रकार उल्लेख किया है कि प्रत्येक साधारण बुद्धिवाला जे उसके गूढ़ रहस्यकों सहज ही समज सके

आगे चल कर आपने दान, शील, तप और जर्बनाकों इस प्रकार खुलासा बताये है कि लोगोमें जो आजकल इन चारों विषयों पर वादानुवाद चलते है वे तो मानो पलायन ही कर गये

ऐसे अलौकिक ग्रंथको देख हमारी इच्छा हुई कि यदि यह ग्रंथ उपकर प्रकाशित हो जाय तो जैन व जैनेतर सर्वकों वन्मा उपयोगी हो।

हमने हमारे अज्ञिप्राय उक्त ग्रंथ रचयिता मुनिराजके सन्मुख निवेदन किये आपने महत् कृपाकर हमको यथेष्ट करनेकी आज्ञा वहीस की

हमारे लघु ज्ञाता आणादमल्लके सर्गीय पुत्र "दोपचन्द्र" के परजव जाते समय ज्ञानादि वृद्धिके लिये कितनाक वष्य सस्थापन कर रखवा है इम अवस्थामें हमने यह कार्य उत्तम समझ उसहीके तर्फसे यह ग्रंथ ठपवाकर बिना मूल्य वितीर्ण किया है.

इस ग्रथके अंतमें हमारे चरित्र नायकके गुण गाँजित अष्टक और कितनीक गहलियें ली रखी गई है

अन्तमें हम ग्रथकर्ता महानुजावको कोटिशः ध यवाद देकर पाठक वर्गोंमें सविनय निवेदन करते हैं कि इस ग्रथकों पढकर उसका अनुकरण करनेका महान् लाज उठावें

यद्यपि इसके मूफादि शोधनेका कार्य ध्यान पूर्वक किया गया है तदपि यदि दृष्टि दोपसे वा ठापेवालेकी असावधानतासे कोई त्रुटि रह गई हो तो सज्जन जन सुधारकर पढनेकी कृपा करें

॥ शुभ नूयात् ॥

आपके कृपाकाही
पूनमचन्द्र आनंदमल्ल कोठारी.
चीकानेर-राजपूताना



॥ ॐ ॥

॥ श्री चीतरागेज्यो नमः ॥

॥ श्रीमत् सुखसागर सहस्ररुच्यो नमः ॥

॥ विषयाऽनुक्रमणिका ॥

नम्बर	विषय	पृष्ठ.
१	मङ्गलाचरणम्	१
२	गृहस्याश्रमका विवेचन	२
३	वैराग्यकी सुदृढता	५
४	दीक्षाकी धामधूम	५
	१ वनोत्थका स्वरूप	७
	२ दीक्षा दिवसका शुजागमन	८
	३ वरघोषेका दृश्य	९
	४ श्रमणपदाऽलङ्कृत	१०
५	वर्षोपदेश	११
	१ गुरु पदका महात्म्य	१४
	२ कृतप्रतापर उदाहरण	१८
६	दृढदीक्षा	२०
७	धर्म देशना	२०
	१ चतुर्गतिका दृश्य	२२
	२ संसारकी अनित्यताका अनुभव	२५
	३ गृहस्याश्रमसे ग्लानी और वैराग्यमें समानता	३०
८	पञ्च महा व्रतोंका दिग्दर्शन	३१
	१ प्रथम अहिंसा महा व्रत	३१
	२ द्वितीय सत्य महा व्रत	३२
	३ तृतीय अस्तेय महा व्रत	३४
	४ चतुर्थ ब्रह्मचर्य महा व्रत	३६

संख्या	विषय	पृष्ठ
५	पञ्चम अपरिग्रह महा व्रत	३७
६	पञ्चम महा व्रतों पर दृष्टान्त	४०
७	मार्थना रूप उपदेश	४३
१०	चारित्र्य रक्षा तथा ज्ञव्योपकार	४४
११	यथा नाम तथा गुणाः	४७
१२	शान्तमुखा	४९
१३	सम्यग् ज्ञानकी महिमा	५०
१	दिव्य पुरुषार्थ	५०
२	पाठनशैली	४२
३	अमृत रसका आस्वादन	५३
१४	सम्यक् दर्शनका विवेचन	५५
१५	सम्यग् चारित्र्यका विवरण	५८
१	अष्ट प्रवचन माताका स्वरूप	५९
२	त्रोर शत्रु मनकी डर्जयता	६२
७	अज्ञूत दृष्टान्त	६४
३	मौनानंद	६९
४	कायोत्सर्गकी सनिष्टता	७०
१६	दान गुण पर व्याख्या	७४
१७	शीलका महा प्रज्ञाव	८१
१	पवित्र नववामोंका विचार	८२
१८	दिव्य तपस्या	९५
१	गुरु शिष्यका अपूर्व दृश्य	१०५
२	सर्वोपयोगी तप चिन्तन	१३२
३	इखरी तपस्याका महा फल	१३८
१९	निर्मल जावना	१४३
२०	अप्रति बक्षताका विशाल प्रज्ञाव	१५७
१	नविष्य वाणीका साक्षात् प्रज्ञाव	१६०

	१	कुतुहलमें गुणाकर	.					१६३
२१		जवान्तरमें उत्तम प्रस्थान	.					१७०
२२		प्रजावशाली गुरु जयन्ति	१७३
२३		मौहन गुर्वावली		१७४
२४		ग्रन्थकी पूर्णाहुतिके दोहरे		११०

॥ शुद्धम् ॥

V. A. S.





॥ श्री वीतरगोज्यो नमः ॥

॥ श्रीमत् सुखसागर महुरुभ्यो नमः ॥

॥ समर्पण पत्रिका ॥

शान्त, दान्त, महन्त, उर्नय त्यागी, सकल गुणरागी, अशरण क्षरण, तरण, तारण, कृपायन्त, दयायन्त, गुणवन्त, र्म धुरवर, धर्मातार, तेजस्वी, यशस्वी, अतुल्य प्रतापी, शारङ्ग, धर्मङ्ग, तत्वज्ञादि समस्त गुण वरिष्ठ जैन गगन मार्गतएक विशाल ज्ञानो गणाऽधीश्वर विज्ञाने स्मरणीय पूज्यपाद गुरु-वर्य श्रीमज्जैनाचार्य श्री श्री श्री २००० श्री श्रीमान सुखसागरजी महाराज साहज की ऋण्य निर्मल सेवाओं

हे पृथ्वेश्वर ! आपने घोर तपस्यादि अनेक सदाचारों द्वारा दुर्निवार कर्म बंधनोंको मिथिया कर दिये, इतनाही नहीं किन्तु अनेक प्रकृतियोंको प्रध्वंस कर निर्मूल कर दी

हे अद्वैत विज्ञातः ! आपने अपने दिव्य ज्ञानकी मौद शक्ति द्वारा जैन-धर्मका विशाल प्रजाय चारों ओर विस्तीर्ण किया अर्यान् दमकती हुई दिव्य ज्ञान कान्तिसे जूमएहलका प्रकाशित कर दिया

हे करुणारस जएन्तार ! आप श्रीने अपने पवित्र हृदयमे उमरते हुवे व-चनामृतों द्वारा अनेक देह वरियोंका अनुपम उपकार कर उनके जीवनको सार्थक किये

हे स्वामिन् ! हम सकल समाज आपके नित्य स्मरणीय परमोपकारको जीवन पर्यन्त प्रति पथमें तनिक जी प्रियोगारस्था प्रतिपन्न नहीं कर सकते.

(ग्रथरचयिता)

विभाते स्मरणीय पूज्यपाद मुनिवर्य श्रीवीर-
पुत्र श्रीमान् आनदसागरजी महाराज ।



जन्म वीरान्त १८१२]

[दीक्षा वीरान्त १८२७

विवाह १८४०]

(ग्रथरचयिता के गुरुवर्य ।)

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद गुरुवर्य श्री श्री श्री १००८
श्रीमान् त्रैलोक्यसागरजी महाराज साहब ।



जन्म बीरान् २३९९]

[दीक्षा बीरान् २८२२

॥ ॐ ॥

॥ श्रीर्वातरांगेभ्यो नमः ॥

॥ श्रीमत् सुखसागर सद्गुरुभ्यो नमः ॥

॥ सुखचरित्र ॥

(मङ्गलाचरणम्)

अर्हन्तो जगवन्त इन्द्रमहिता. सिद्धाश्चसिद्धि स्थिता ।
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्यानुपाध्यकाः ॥
श्रीसिद्धान्त सुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः ।
पञ्चैतेपरमोष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तुवो मङ्गलम् ॥ १ ॥

जावार्थः—प्रथमही प्रथम अखिल दूषणत्यागी, सकल गुण गणालकृत, परमापकारीश्री अर्हन्त जगवानकों नमस्कारता हू (कथञ्चूता अर्हन्तः) कैसे हैं वे अर्हन्त मन्त्रु (इन्द्रमहिताः) इन्द्रवर्गसे पूजित हैं

तत्पश्चात् निरंजन, निराकार, अक्षय, अविनाशी, केवलज्ञान, फेवलदर्शन, द्वायकसमकृतादि गुणोंको धारण करनेवाले सिद्ध परमात्माकों नमस्कार करता हूँ (कथञ्चूताः सिद्ध देवा) कैसे हैं वे सिद्ध मन्त्रु (सिद्धिस्थिताः) सिद्ध स्थानके अन्दर स्थित हैं

तत्पश्चात् परमपुण्य धीरवीर, गम्भीर, धर्मधुरंधर, धर्मावतार, श्रीमदाचार्य महाराजकों नमस्कार करता हू (कथञ्चूताः आचार्याः) कैसे हैं वे आचार्य महाराज (जिनशासनोन्नतिकराः) जिनशासनके उन्नति करनेवाले हैं

तत्पश्चात् 'ज्ञानेदाता, परमोपकारी उपाध्याय महाराजकों नमस्कार करता

हूँ (कथञ्चूताः उपाध्यायकाः) कैसे है वे उपाध्याय महाराज (श्रीसिद्धान्त
सुपाठकाः) ग्यारह अङ्ग और बारह उपाङ्गादि सिद्धान्तोको पढानेमें परि
पूर्ण निपुण है

तत्पश्चात् परमपवित्र, शान्त मुद्राधारी, निर्मल चारित्रधारी, दिव्य ज्ञान
गुणोपेत श्रीमन्मुनि महाराजाओंको नमस्कार करता हूँ (कथञ्चूता मुनिवराः
कैसे है वे पवित्र मुनिमहागज (रत्नत्रयाराधकाः) ज्ञान, दर्शन और चारि
तीन रत्नोकी आराधना करनेवाले है

यह अनन्त गुण गणालंकृत पञ्चपरमेष्ठि प्रतिदिन मङ्गलकारी होवें यह
मार्थना है

अब मैं अपने परमोपकारी, शान्त, दान्त, महन्त, धीरवीर, गम्भीर, तेज
स्वी, यशस्वी, सागी, वैरागी, वर्षधुरधर, उर्मावतार, विशालज्ञानी, निर्मल
दर्शनधारी, मोक्षाजिलापी, उत्कृष्टसयमधारी, वरुजागी, मुजागी, अमाल
ब्रह्मचारी, अतुलप्रतापी, शशिसमान सौम्य, सायरसम गंजीर, पृथिवसम
सहनशील, चारणरुवत् अप्रभक्त, सकल गुणरागी, अज्ञानतिमिरजाष्कर,
कृपावतार, दयासागर, आत्मध्यानी, योगीश्वर, शास्त्रज्ञ, वर्षज्ञ, तत्त्वज्ञाननेक
गुणगुणालंकृत प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद गुरुवर्यश्री श्री श्री १००० श्री श्री
स्वस्त्यम्बु गगनाम्बरमणि श्रीमङ्गलेश्वर श्रीमान् सुखसागरजी
महाराज साहबका “ सङ्क्षिप्त जीवनचरित्र ” लिख दिखनेका प्रयत्न करता हूँ

सङ्गनो! यद्यपि मेरी इतनी सामर्थ्य नहीं है, कि उन महान् पुरुषका
सच्चरित्र वर्णन कर सकुं तदपि उनहीके महा प्रजापकी अतुल कृपाका अवल-
म्बनकर अपने विषय (Subject)—में प्रवृत्त होताहूँ

॥ गृहस्थाश्रमका विवेचन ॥

अतीव मनोहर मरु स्थल देशमें धीकानेरके निकट सरसा नामक एक
ग्राम है, वहापर खीची नामक क्षेत्रीय वंशसे उत्पन्न हुवे डग्गम गोत्रको धारण
करनेवाले जैन बृहन् औरस वंशके अन्तर सुशोभित जैन धर्मानुरागी. मनसु

खलालजी नामक श्रावक निवास करते थे, उनके पतिव्रतको धारण करने-वाली जेतीवाई नामकी जार्या थी इनके चतुर्भुक्तिकों धारण करनेवाला मुख-लाल नामक एक सुपुत्र था, ये लोग न्याय इच्योपार्जन करके अपनी आजी-वका करते थे तथा धर्मकी आराधनाजी उत्तम प्रकारमें करते थे इस प्रकार मुखपूर्वक अपना काल निर्गमन करते थे

इस सुपुत्रका जन्म वीर सवत् (१३४५) विक्रम संवत् १८१६ में हुआ द्वितीया के शशि समान दिनत्रदिन चढती कलाको प्राप्त होने लगा इस प्रकार मुखपूर्वक गव्यावस्या व्यतीत की, इसही अवस्थामें आपके मातपिता परलोक प्रस्थान कर गए कितनेक समयके पश्चात् अपनी जगिनीके कथनसे जयपुर नामक शहरमें प्राप्त हुये, वहापर गोलेडा माणिक्यचंडजी, लक्ष्मीचंड-जीकी सहायतासे मुक्तरोंक वस्तुओं (Spices) का व्यापार करते थे

कितनेक काल पर्यंत तो इस प्रकार न्यायसे इच्योपार्जन किया तत्पश्चात् उपरोक्त सहायक श्रेष्ठीके वहापर मुनीपपदकों धारण किया और गान्तनापूर्-वक अपना निर्वाह करते रहे, अपने स्वामीका कार्य सचे दिलसे नेकनानिपूर्वक करते थे इस प्रकार अति तृष्णा (Greed) शाकिनीसे पृथक् होकर सतोप-पूर्वक कालको निर्गमन करते रहे

आप अखण्ड शियलव्रत (Chastity) कों धारण करते हुवे तपश्चर्या (Devotion) के अंदर निपुण थे तथा व्रत, प्रत्याख्यानादि योग्यतापूर्वक उत्तम प्रकारसे करते तथा प्रतिक्रमण, सामायिक और जिनेश्वरकी पूजनादि करनेमें पूर्णत रुचिबद्ध थे पञ्चप्रतिक्रमण और कितनेक प्रस्तावोंसे परिचित एवं देव, गुरु और धर्मकी सेवामें श्रद्धायुक्त तल्लीन थे

अनुचित जोगोपजोगको परिहास कर योग्य पदार्थोंको सेवन करते थे पिताजीके अत्यन्त आग्रह होनेपर जी वेमि (Fetters) रूपस्त्रीको अङ्कि-कार नहीं की, आप समझते थे कि कीचके अंदर प्रवेश हो जानेके पश्चात् धर्मकी निर्मल आराधना नहीं कर सकेंगे इस उपमकालके अंदर स्त्रीजातिपर विश्वास करना गोयादोका खाना है, देखिये नीतिकारने कहा हः—

(४)

(श्लोक)

नदीनांचनखीनांच । शृङ्गिणामृशस्त्रपाणानाम् ॥

विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीपुराज कुलेषु च ॥ १ ॥

जावार्थः—निम्न लिखितका विश्वास नहीं करना चाहिये—नदियोंका कारण कि किसी समय फुटाकर रसातलमें पहुंचा देगी

नखधारी व शृंगधारी जानवरोंकाः—कारणकि अवशरकों पाकर शरीरकों ठेदन कर देंगे

दस्तगत शस्त्रधारियोंकाः—कारणकि क्रोध वश होने पर मस्तकादि ठेदन कर देंगे

स्त्रियोंकाः—कारणकि उपमकालकी स्त्रियोंका चरित्र विचित्र है; देखिये कहा हैः—

(पद)

स्त्रीचरित्र जाने नहीं कोय ॥

पति मारकर सति होय ॥ १ ॥

राजाओंकाः—कारणकि कहा है कि डराचार राजाओंके कान होते हैं मगर शान (Sense) नहीं होती

आपकों उपरोक्त नीतिवाक्यसें जली व प्रकार चिदित हो गया होगाकि स्त्री संसर्गसें किस प्रकार हानि होती है

बुद्धिवाङ्मुरूप अपने आज्ञ्यन्तर विचारोंको स्त्रीके सन्मुख भगद नहीं करते कारणकि स्त्रीजातिका हृदय गम्भीर नहीं होता; देखिये मै प्रसङ्ग दृष्टान्त लिखता हूँ—

स्त्री अपने पत्नीसी (गृह निकटवर्ति) के सन्मुख यह जाहिर करती है

कि. आज्ञा अमुक जोजन बनाया था, अमुक शाक कीयी, अमुक ब्राह्मण आया था, अमुक वस्तु लाई गई है, अमुक वस्तु जेजी है, अमुक मकारका फलह हुवा, अमुक आनन्द प्राप्त हुवा इत्यादि अनेकशः वार्तालाप करती है

सकनो ! खानपानकी जी बात जब हृदयमें नहीं उठर सकती तो दीर्घ विचारका उठरना कैसे संभव हो सकता है किसी व्यक्तिपर विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है बल्कि स्त्रीके जाति स्वभावमेंही अनेकशः उपण मौजूद है; उनमेंसे कितनेक यद्वाप उचुत करता हूँ—

(श्लोक)

अनृतंसाहसंमाया । मूर्खत्वमति लोचता ॥

अशौचत्वं निर्दयत्वं । स्त्रीणादोषाः स्वज्ञावजाः ॥१॥

अर्थः—जूठ बोलना, साहसिकपन करना, कपट क्रियाओं सेवन करना, जरू मति होना, अति लोच दशाको धारन करना, डगंठनीय दशामें रहना, निर्दय हृदय होना इत्यादि स्त्रीजातिमें स्वभाविक दोष होते हैं

पाठकवरों ! जब स्वज्ञावदीके अन्दर इतने डगुण रहे हुवे है तो बाहरी दूषणोंकी गिनती कैसे हो सकती है; अर्थात् उष्ट स्त्रियें अगण्य दूषणोंसे दूषित है ऐसे दीर्घ विचारका अपलम्पन करके पेन्नीरूप स्त्रीको अङ्गीकार नहीं किया गरजकी सत्तारमें रक्त न होते हुवे, परम वैराग्य दशामें रमण करते थे

॥ वैराग्यकी सुदृढ़ता ॥

ऐसे सुअवशरमें परमपूज्य श्रीमान् राजसागरजी महाराज और ऋषि-सागरजी महाराजने अपनैं चरण रेणुकासें उस जयपुर नगरको पवित्र किया, अर्थात् आप महानुज्ञाओंका शुजाग मन हुआ

आवक श्राविकाओंके असाग्रहसें चातुर्मासकी विनति स्वीकार कर. वहीं पर सुखपूर्वक निवास करते रहैं, आप महानुज्ञा नञ्यात्माओंपर अतिनी उपकार किया करते थे, धर्मदेशनाके अदर मायः वैराग्य रत्तको विशेष रूपसें

मर्दशित करने थे आपके अमृतमय देशनाके पान करनेमें स्वयं वैरागी सुख-
लालके जाव दृढीभूत हुवे

एक दिन सुखलालने आकर श्रीमान् राजसागरजी महासागरकों दोनो
करजोड़ सविनय प्रार्थना की:-

ह गुरुवर्य्य ! मैं मरु स्थल देशमे सरसा नामक ग्राममें रहता हूँ मेरे पि-
ताके अत्यत आग्रह होनेपर जी सर्पणीरूप स्त्रीजालको अङ्गीकार नहीं की
और अपनी वहीनके आग्रहसें यहांपर आया हू

हे स्वामिन् ? मैं वचपनसेंही वैराग्य दशामें निमग्न हूँ, इसही लिये अधिक
काल तपश्चर्यामें व्यतीत किया और सासारिक जंजालसे पृथक् रहा

ह नाथ ! यहापर आनेसें मुझे ऐमा अपूर्व लाज हुआ है कि जिसका
मैं वर्णन करनेको असमर्थ हूँ; किन्तु इतनी तो अवश्यही प्रार्थना करूंगा कि
जैसे लोहेको पारस लगजानेसें सुवर्ण हो जाता है वैसे ही आप जी अपनी
उदार वृत्तिद्वारा मुझ अधमको पावन करो

अन्य हे ! ऐसे वर्मात्मा पुरुषोंकोकि जो सत्सङ्गतीकी वाछा करते है सत्य
है ! सत् सङ्गतीका उत्तमही फल हुआ करता है कहा है:-

(श्लोक)

काचः काञ्चन संसर्गा । ङ्क्ते मारकती द्युतिं ॥

तथा सत् सन्निधानेन । मूर्खोऽयाति प्रवीणताम् ॥ १ ॥

अर्थः—सुवर्णके संसर्गमें काच मरकतमणि (Emerald) के प्रजाको
धारण करता है; तैसेही सत्सङ्गतिसें मूर्ख प्राणी प्रवीणताको प्राप्त हो जाता है

पुनः—वह गुरु महाराजको प्रार्थना करता है कि हे प्रजो ? मुझे इस
असार ससारसें बहुतही ग्लानो आती है वास्ने अनुग्रहपूर्वकदीक्षा (Incan-
tation) प्रदान कर चरणशरण कीजियेगा

हे महानुभाव? आप खुदही जानते हैं कि "श्रेयासि बहु विघ्नानि" इस-
लिये कृपाकर शीघ्रही समयरूपी नौकामें स्थान दीजियेगा

गृहस्थाश्रमसे जयजीत जानकर तथा वैराग्य (Asceticism) वचनोंको
श्रवण कर करुणालय मुनि महाराज श्रीराजसागरजीने फरमाया "एवमस्तु "

प्रथमही प्रथम तो यह खयाल हुआ कि चातुर्मासमें दीक्षा देना शास्त्रोंमें
मना फरमाया है और यह वैरागी अतिही आतुरता करता है अब क्या क-
रना चाहिये? विचारज्ञानसें शीघ्रही यह विज्ञात हुआ कि जैन सिद्धान्तोका
एकान्त पक्ष नहीं है किन्तु सामान्य और विशेष दोनोंही नियम हुआ करते
हैं, शास्त्रकारोंका यह जी हुकुम है कि किसी प्राणिको यदि उग्र वैराग्य प्राप्त
हो गया हो और संसारसें जयजीत होकर चरणशरण आया हो आदि
विशेष कारणोंसे चातुर्मासमें जी दीक्षा हो सकती है

ऐसे सुअग्रशरमे उस मुखलाल नामक श्रावकके विद्यमान सबन्धियोंसें
आज्ञा लेकर दीक्षाका कार्य उपरोक्त श्रेष्ठिपर्य्यमाणिक्यचन्द्रजी, लक्ष्मीचन्द्र-
जी गोलेठा (राठौड़)की तर्फसे प्रारम्भ हुआ

॥ दीक्षाकी धामधूम ॥

यज्ञ मुहूर्त्तके अन्दर इव्य माङ्गलिककी विधियों करते हुवे नियमानुसार
दीक्षाका कार्य प्रारम्भ किया

यह वैरागी वनमा प्रातःकालमें अपने निखनियमसें निवृत्त होकर अपने
शारीरिक व्यथाको अलग कर स्नान मञ्जन करनेके पश्चात् प्रजुज्जक्तिमे लय-
लीन हो जाता था; तत्पश्चात् नाना प्रकारकी मनोहर पोषाक पहनकर अनेक
अन्नूपणोंसें अलङ्कृत होता हुआ परोपकारी गुरुवर्षके दर्शनार्थ जाता था,
तत्पश्चात् अपने सङ्गनोंसें मिलाप करता हुआ प्रार्थि लोगोंकी इष्टा परिपूर्ण
करनेके निमित्त वनोला (जोजनार्थ)के वास्ते मस्थान करता था

(वनोत्तिका स्वरूप)

वैरागीके आगे नाना प्रकारके वाजिन्न वने गढेये, चोतर्फमें क्रोमों लोत

सौजाकी प्राप्त हो रहेये, सबसे आगे बहुतसे लोग जैनशासनकी जय बोलते हुवे प्रस्थान कर रहेये एवं सर्वसे पीठे बहुतसी सौजागिनी स्त्रिये माङ्गलिक गायन कर रहीथी; इस प्रकार मत्येक दिन अति उत्सवपूर्वक बनोला किया जाताथा

कइ एक महानुभाव यहापर शङ्का करते है की वैरागीका गसी पोष के, इतना जेवर, ऐसा खानपान और इतनी उपजोगीय पदार्थ क्यों सेवन कराई जाती है यह तो वैरागी (Ascetic) काल कृण नहीं है किन्तु साक्षात् सरागीका स्वरूप है.

जोप्रश्न कर्त्ता साहब ! आपका प्रश्न करना ययार्थ है; किन्तु यदि आपने सूद्धम दृष्टिसे विचार किया होता तो यह आक्षेपीय माँका प्राप्त नहीं होता, देखिये योमेसेमे ही आपके इस प्रश्नको हल् (वारण) करनेका प्रयत्न करता हूँ:-

वैरागीकी मनोवृत्ति स्थिरीभूत है या जोगोपजोगमे रक्त है इस बातकी परीक्षाके वास्ते उपरोक्त व्यवहार किया जाता है, अन्य कारण यह भी है कि उसके अपूर्व स्वरूपको देखकर जगतनिवासी जन्व्यात्मा उस पवित्र वैराग्यकी अनुमोदना करके अनन्त पुण्यार्थके जागी हो तथा जैन शासनका उद्योत हो

बनोलेके पश्चात् मध्याह्न कालमे व्यावहारिक और धार्मिक कार्यमे अपना काल निर्गमन करता था; एवम् सायङ्कालके जोजनके पश्चात् अपने प्रतिक्रमण कार्यमे प्रवृत्त हो जाताथा

प्रतिक्रमण कर्मके पश्चात् रात्रीके अन्दर संझनोसे मिलाप करता हुआ पहँर रात्री पर्यन्त धर्मगोष्ठी किया करताथा बाद इसके शयनावस्थामे हो जाता था इस प्रकार अपने नियमित टाइमपर प्रत्येक कार्य कुशलतापूर्वक (Proficiently) किया करताथा

(दीक्षा दिवसका शुभागमन)

देखते ही देखते दीक्षाका निजदिन शुभमिति जाइपद शुद्ध पञ्चमी वीर

सम्बत् (१३१५) विक्रम सम्बत् १९०६ का मुवर्णमय सूर्य अपनं दिव्य स्वरूपको प्रकाशित करता हुआ उदय स्थानपर आन पहुँचा

चारों ओरसे लोक मनोहर वस्त्रानूपण पहिन धर्मशालामें एकत्रित होने लगे, थोड़ेही समयमें क्या देखते हैं कि निर्मलावस्थाको धारण करनेवाला वैरागी वनना उवत् स्थानपर आन पहुँचा; आतेही बराबर गुरु महाराजको विनयपूर्वक नमस्कार करके योग्य स्थानपर बैठ गया

थोड़ेही समयके बाद समा होकर दोनो करजोरु गुरु महाराजसे तथा विद्यमान सम्बन्धियोंसे एव समस्त चतुर्विध संघसे कृपाका प्रार्थि हुआ

सर्व सङ्गाने अनुग्रहपूर्वक कृपा प्रक्रीसकी; तत्पश्चात् गुरुवर्यके तथा समस्तके समक्ष इस अनुपम गायिका उच्चारण किया:-

(गाथा)

खामेमि सब्वजीवे । सब्वेजीवा खमंतुमे ॥

मिन्तिमे सब्व ज्ञूएसु । वेरंमझंन केणई ॥१॥

जाप्रार्थः—मै सर्व जीवोंसे कृपाका प्रार्थि होता हूँ, सर्व जीव मुझे कृपा करे; समस्त जीवोंसे मुझे मैत्रीय ज्ञाव है किसीसे वैरज्ञाव नहीं है

इस महा माङ्गलिक गायिका सविस्तार विवेचन करनेके पश्चात् गुरु महाराजसे वन्दना कर बरघोड़ेमें प्रवृत्त हुआ

(बरघोड़ेका दृश्य)

सर्वसे आगे नगारे (Drums) पर विजयका डंका धनाधनसे पन् रहा था, निशान (Emblem) अपनी शोजाको प्रकट कर रहा था, वेएन वाजोकी ध्वनिचारों ओर गुञ्जा रही थी, शोजनीक कुञ्जर, कोतलके आम्ब, शीबिकाधे, (पालखीधे) ऋगिये और सिगराम् (सेजगामिये) अपनी शोजाको पृथक् पृथक् बतला रही थी; सवार और सिपाहियोंकी

पलटनसे अधिक शोजा हो रही थी, समस्त वरघोमेके बीचोबीच वैरागीका हस्ति अपनी घूमत चालसे शनैः शनैः कदम ऊठा रहा था वैरागीके मस्तक पर चवरादि हुल रहे थे इसही अवस्थामे वार्षिक दान देता हुवा कृतार्थ होता था चारों तर्फ श्रावकोंके मुखद्वारा जैनधर्मकी जयध्वनि उठ रही थी सर्वसे पीठे सधवा स्त्रियें धवलमङ्गल गा रही थी, वैरागीके मस्तकपर रहे हुवे तुरें और किलड़ी अपनी अजीब शोजाकों बतला रहे थे, इसका दिव्य स्वरूप सर्व लोगोको मनोरञ्जन कर रहा था; यहा तक कधि अपने गौरव लक्षणसे प्रकाशित करता है कि यह वरघोमा (Procession) साक्षात् चक्रवर्तिके वरघोमेके सदृश दिव्य शोजाको प्राप्त हुवा था

अनुक्रमसे वरघोमा दीक्षाके स्थान पर जा पहुँचा; ज्योही वैरागी वनमा हस्तिसे नीचे उतरा कि सब लोगोंने जैनशासनकी जयध्वनिका उच्चारण किया वैरागी वनमेने प्रथम पूज्यपाद गुरुमहाराजको नमस्कार किया और अपने योग्य स्थानपर विश्रामित हुवा

इसही अवसरमे कई एक लोगोंने अतर फुलेलद्वारा वैरागीका सम्मान किया (received) और कितनेहीने न्योठावर करके जिहुक तथा गरी-वोको बद्धीसकिया

॥ श्रमणपदालङ्कृत ॥

तत्पश्चात् दीक्षाका समय उपस्थित होनेपर गुरुमहाराजने क्रियामें प्रवृत्त होनेके वास्ते सूचना की "आज्ञा प्रमाण" ऐसा कहकर क्रियामें प्रवृत्त हुवा, कुठ क्रिया कर लेनेके पश्चात् श्रमणलिङ्ग (साधुवेश) (monk-dress) धारण करानेकों अन्य स्थानपर ले गये, गृहस्थके सर्व वस्त्र परिखाग कर श्रमण वस्त्रोंमें अलङ्कृत किया, ज्योंही उस स्थानसे रवाना हुवे की समस्त लोगोंने वीरशासनकी जयध्वनी की और धन्य धन्य इन शब्दोंसे वधाया

यह महानुभाव मुनरपि अपनी क्रियामे प्रवृत्त हुवे, योमीही टाइमके बाद धुज सुहूर्त्तमें सर्व सामायक उचरार्ई गई, पश्चात् विधिपूर्वक नाम स्थापन किया;

नाम "सुखसागरजी" रखा गया और शिष्य (Disciple) श्रीमान रिद्धि-सागरजी महाराजके किये गये-

इस अवसरमें सर्व लोगोंने पूज्यपाद राजसागरजी महाराज ऋद्धिसागरजी महाराज और सुखसागरजी महाराजके नामकी जय-वनी की

तत्पश्चात् धर्मदेशना प्रारम्भ की; इस देशनामे संसारकी अनिश्चिता और साधु कर्तव्य विशेष रूपसे बतलाया गया उस विषयकी यत्किञ्चिद् व्याख्या लिख दिखाने है:—

॥ धर्मोपदेश ॥

(श्लोक)

अर्थाः पादरजोपमा गिरिनदी वेगोपमं यौवनम् ।

मानुष्यंजल विन्दु लोलचपलंफेनोपम जीवनम् ॥

धर्म्यो न करोति निश्चलमतिः स्वर्गार्गलोक्षटनम् ।

पश्चान्ताप हतो जरापरिणतः शोकाग्निना दह्यते ॥१॥

जावार्थः—लक्ष्मी पेरके रजके मुआफिक है, जैसे पेरपर रज लगकर अति शीघ्र अलग हो जाती है तैसेही लक्ष्मी (Wealth) चलायमान होती है यौवनावस्था पर्वतकी नदीके वेगके मुआफिक होती है, जैसे नदीका वेग शीघ्र उतर जाता है जिसमें जी ढालु पर्वतकी नदीका वेग अतिही शीघ्र उतर जाता है वैसेही चार दिनकी माहुणी यौवनावस्था प्रस्थान कर जाती है सच है ? " चार दिनकी चादनी फिर अधेरी रात " मनुष्योंका जीवन रु-छोलित जलके चपल विन्दु तथा जलके जाग सदृश होता है, जैसे चपल विन्दु तट्टाणमे नष्ट हो जाता है तैमेंही जीवनका कुछ ठिकाना नहीं जो स्थिर बुद्धिवाला स्वर्गके अर्गला (जागल)को दूर दठानेवाले धर्मका आचरण नहीं करता है वह वृक्षावस्थाके अन्दर पश्चात्तापसे दहतप्रदत्त किया जाता है ठीक कहा है " अथ पश्चात् कया वने जन चिडिया चुग गई सेत " और

शोरूपी अग्निसे जलाया जाता है जैसे अग्नि हर एक पौत्रलिक स्थूल पदार्थको जला देती है तैसेही शोकातुर प्राणीकी आंत जल जाती है इस शोकके सदृश जगतमें अन्य कोई डःखदाई पदार्थ नहीं दिख पड़ती

सामायक चारित्र ऐसा उत्तम पदार्थ है जोकि यथा ख्यात चारित्रको प्राप्त करा देता है, जैसेकि श्रुतज्ञान (knowledge of scripture) केवल ज्ञानके दिलानेमें एक प्रधान निमित्त है.

यह चारित्र त्रिविध १ (मन, वचन और कायाके साथ करना, कराना और अनुमोदना) अङ्गीकार किया जाता है; इसमें मुनिराज सावध व्यापारका सर्वथा त्यागी होता है अर्थात् साजुके सर्व कर्त्तव्य करनेको स्वीकारता है महत्त कारणको पृथक् रखकर कोई प्रकारका आगार (तुट्टी) नहीं रहती है

वर्तमान समयमें सद्पात्र महानुभाव मुनिवरोंको ठोकर कइ एक आम-म्बरीय, प्रमादी, और मदोनमत्त साजु, साध्वी अपने क्रियासँ जट्ट होकर तीर्थङ्करोंकी आज्ञाका खून करते हुवे डर्गतिका प्रयत्न करते है मगर वन्ध हो, उन मुनिवर्गोंको जोकि जवतारक चारित्रको निर्मल तथा पालन करके अपने मनुष्यजवकी साफल्यता करते है

जिस वख्त वैरागोंको उत्कृष्ट वैराग्य प्राप्त होता है उस वख्त वह जीव सप्तमगुणस्थानपर वर्तता है, दीक्षा लेनेके पश्चात् षष्ठमगुणस्थानपर आ जाता है कारणकि उसकी स्थिति केवल अन्तर्मुहूर्त्तकीही होती है, द्वितीय यहकी कारण है कि नैगमनयके विचारवाला दीक्षा लेके शीघ्र पतित हो जाता है हां अलवत्ता? सूत्रमरुजु सूत्रवाला कुठ दृढ जाववाला होता है; परन्तु आद्योपान्त दृढ परिणामोंको रखनेवाला स्थूल रुजुसूत्र धारक होता है और यह उत्कृष्ट चारित्रधारी कहलाता है देखिये:—

दीक्षा चार प्रकारकी होती है तद्यथा.—

- १ सिंहके मुताधिक लेना और सिंहके मुताधिक पालन करना
- २ शियालके मुताधिक लेना और सिंहके मुताधिक पालन करना

- ३ सिंहके मुताबिक लेना और शियालके मुताबिक पालन करना
 ४ शियालके मुताबिक लेना और शियालके मुताबिक पालन करना

प्रथम पदवाला उत्कृष्ट, द्वितीय पदवाला मध्यम, तृतीय पदवाला जघन्य और चतुर्थ पदवाला कनिष्ठ कहलाता है

जिस वस्तु दीक्षा अङ्गीकार की जाती है उस वस्तु यही विचार रहता है कि सर्व प्रपञ्चो (anxieties) को परित्याग कर दाक्षिण्यता (flattery) से विमुख होकर अप्रतिग्रन्ध आचरण करूंगा तथा पुत्रलको अरसविरस आहारपानी देकर जीर्ण वस्त्रोंको सेवन करता हुआ उत्कृष्ट चारित्र्य प्रतिपालन करूंगा एव शास्त्र सिद्धान्तोंका वेत्ता होकर अनेक जघन्य जीवोंका उपकार करूंगा और खासकर योगाभ्यास करता हुआ शुद्ध ध्यान एवं आत्म निन्दाद्वारा कर्मोंका क्षयकर परमपद लेनेका प्रयत्न करूंगा

इत्यादि नाना प्रकारमे विचार करता है लेकिन दीक्षा लेनेके पश्चात् महानुभावोंके शिवाय पामर प्राणि अपनी समस्त प्रतिज्ञाको परित्यागकर विपरीत वर्ताव करने लग जाता है जैसे:—

गृहस्थोंके वशीभूत होकर दूषित जोगोपजोग पदार्थोंको सेवन करता हुआ आचारसे पतित होकर निर्मल चारित्र्यको कलङ्कित करता है इत्यादि अनेकशः अवगुणोंसे अलङ्कृत होकर उर्गतिका जागी होता है

हम उनही महामुनिवरोंको वन्द्य समजते हैं कि जो सिंहके मुताबिक शूरवीर होकर निर्मल चारित्र्यको अङ्गीकार करते हैं तथा यावत् उन्न वैसाही निजाते हैं, सज्जन पुरुष उर्गति दातार गृहस्थाश्रमको ठोमकर पवित्र चारित्र्य को ग्रहण करके अपनी आत्माका कल्याण करते हैं, यह बात जगत् प्रसिद्ध है कि जितनी उत्कृष्ट करणी चारित्र्यधारी कर सकते हैं उतनी अन्यको करना उप्यार है

चारित्र्यधारीमें समय बन्ना गुण यह होना चाहिये कि दृढ श्रद्धायुक्तः गुरु * जक्तिमें तल्लीन रहै तथा उनकी आज्ञासे अणुमात्र जी विपरीत न

चले. आप जली प्रकार जानते हैं कि गुरु सेवासें बढ़कर जगत्रयमे कोई पदार्थ नहीं है देखिये किसी दीक्षेच्छु महानुभावने श्री सम्मैत शिखरके स्त-वनमे ठीक कहा है:—

॥ गुरुपदका महात्म्य ॥

(गाथा)

गुरु चरणोंमें प्रीत वनी रहै ।

इसको खूब निजाना मोरे राजिन्दा ॥

ज्ञानतत्व अरु सकल पदारथ ।

इससें सब मिल जाना ॥ मोरे राजिन्दा सम्मे ॥१॥

सच है ? गुरुचरणोंकी सेवाका यही फल होता है, गुरु कृपा एक ऐसी उत्तम चीज़ है कि उःसाध्य जी साध्य हो जाता है

कई एक बुद्धि विलक्षण यह कह देते हैं कि सेवासें कुछ जी फल नहीं होता किन्तु पढ़ लिखकर होशियार होना चाहिये जिसमे अपनी यशकीर्ति (fame) तथा शासनका उद्योत हो

यद्यपि उनका कथन यथार्थ है मगरतादम जी निर्मल ज्ञान तबही प्राप्त हो सकता है कि जब गुरु महाराजकी कृपाका अवलम्बन हो, देखिये उस पर मुझे एक दृष्टान्त स्मरण होता है वह लिख दिखाता हूँ:—

किसी एक अनुपम शहरके अंदर अनेक साधुओंकी समुदायसें सुशो-जित एक आचार्य महाराज विराजते थे उनके कइ एक शिष्य व्याख्यान-दाता, कइ एक विद्यार्थी और कइ एक वैयावची ये उनमेंसे एक विद्यार्थी और एक गुरु जक्तकी सफलताका नमूना पेश करता हूँ

* गुरुका अर्थ यहापर यही समझना चाहिये कि जो चारित्रको निर्मल पालन करने-वाले हो अर्थात् चारित्रसे पतित और क्रियासे भ्रष्ट गुरुको गुरु नहीं समझना.

पढनेवाले शिष्यको जब गुरु महाराज कोई कार्य बतलाते थे तब वह यही उत्तर देता था की अजी हम पढते है दोनो काम नही कर सकते “ चाहे पढा लो चाहे घास कटालो ” जब कजी जोर देकर गुरु महाराज कोई कार्य करनेको कहते तो वह लौकिक लक्षात्में व मुद्रिकल करता सो जी उसमें ऐसा प्रयोग करता कि दूसरी वस्तु कोइ कार्य न बतलावें यथा:— पानी लेनेको जाता तो मटकी फौर देता और गौचरीको कजी जाता तो पात्रे तौर देता इत्यादि कार्य इसही प्रकार करता था मगर वे महानुभाव गुरु महाराज यह सूत्र समजते थे कि यह गुरु कृपाके बगेरही ज्ञानकी सफलताको चाहनेवाला अविनीत मूर्ख शिरोमणी है

इधर जित्त गुणोको धारण करनेवाले सुविनीत शिष्यको जब गुरु महाराज कोई कार्य फरमाते थे तब वह महानुभाव “तहत्त वचन” (प्रमाणवचन) ऐसा महान सुविनय वचनका प्रयोग करता हुवा अन्य सर्व कार्यको परित्याग कर गुरु महाराजके अनुग्रहपूर्वक बतलाए हुए कार्यको करता था; कहनेका तात्पर्य यह है कि वह जित्तान् शिष्य सबसे अधिक टाइम अपने गुरु जित्तमें लगाता था, जिस वखत गुरुकी सेवा किया करता था उस वखत उसें कई एक उत्तमोत्तम वस्तुओंकी प्राप्ति होती थी गुरु महाराज उसपर अतिही प्रसन्न थे सच है ! विनय गुणके अन्दर ऐसीही अपूर्व शक्ती है कि हरएकको प्रसन्न कर सकता है

एक दिनका जिक्र है कि एक महत् सजा (Gathering) इकठी हुई थी उसमें अनेक विद्वान् लोक एकत्रित थे प्रत्येक धर्मका विचार किया जा रहा था उसके अन्दर यह आचार्य महागज जी मय अपने शिष्य समुदायके उपस्थित थे इस सुअवसरमें जैनधर्मके तात्त्विक पद इन्व्य संबन्धि प्रश्न किये गये

आचार्य महाराजने पहिलेही पहिल पढनेवाले शिष्यको आज्ञा दी की इन प्रश्नोके तुम ययार्थ उत्तर दो वह गुरुजित्तसे विहीन केवल पढाईका मौल रखनेवाला अविनीत शिष्य नामामौल करने लग गया

इतनेहीमें गुरु महाराजने उस बैयावचीय सुविनीत शिष्यको आज्ञा दी

कि तुम उन प्रश्नोंका यथार्थ उत्तर दो, इस वचनको सुनतेही “आज्ञाप्रमाण” इस पवित्र शब्दका उच्चारण कर उन प्रश्नोंके युक्तियुक्त प्रमाणसे ऐसे उत्तम उत्तर दिये कि जिससे सर्व सजासद् लोग प्रसन्न हो गये उसही समय सर्व सजाके समक्ष गुरु महाराजने यह प्रकट किया कि गुरुजितिका प्रत्यक्ष फल इस प्रकार मिलता है और अविनीतोंकी अवगणना इस प्रकार होती है।

यह सुन वह जित् विहीन शिष्य लज्जित हुआ और गुरु महाराजसे यह प्रार्थना की कि हे स्वामिन् ! मैं महामूर्ख हूँ कि आपकी सेवा बिलकुल न की केवल पढ़नेहीके स्वार्थमें लीन रहा इसही लिये मुझे सद्ज्ञान प्राप्त न हुआ और इस प्रकार उर्दशासे दूषित हुआ, अब अनुग्रहपूर्वक पूर्वके समस्त अपराधोंको क्षमा कीजियेगा आजसे मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आपकी सेवामें प्रतिदिन संलग्न रहूंगा।

अहाहा ! गुरु महाराजकी कृपाका ऐसाही महात्म्य है, जो गुरु महाराजकी सेवा कर ज्ञान संपादन करता है वही निर्मल ज्ञानका जागी हो सकता है, पुस्तकके पढ़ेये दिव्य ज्ञानी (men of deep thoughts) नहीं हो सकते क्योंकि गुरु गम्यताका जो उत्तम ज्ञान होता है वह पुस्तकमें प्रायः नहीं रहा करता है; देखिये किसी एक विशाल ज्ञानीने ठीक कहा है:—

(श्लोक)

पुस्तक प्रत्ययाधीतं । नाधीतं गुरु सन्निधाः ॥

सज्जा मध्ये न ज्ञोजन्ते । जार गज्जाइव स्त्रियः ॥१॥

जावार्थः—जो प्राणी गुरुके पास पढ़नेसे निमुख रहा और केवल पुस्तकके प्रतीतसे पढ़ा हुआ है वह व्यञ्जिचारिणी (Adulterous) गर्जवती स्त्रीके मुआफिक सज्जामें शोभाकों प्राप्त नहीं होता है; अर्थात् लज्जित होता है कहनेका तात्पर्य यह है कि गुरुगम्यताकी विद्याके सहस्र अन्य कोई विद्या नहीं है

गुरु महाराज यदि प्रसन्नतापूर्वक ज्ञान बखीस करे तो एक शब्द सहस्र शब्द इतना फल करता है यह प्रत्यक्ष उपरोक्त दृष्टान्तसे तथा अनुभवसे सिद्ध है

गुरु महाराज उत्तम ज्ञान देकर ज्ञान प्रदान करते हैं क्योंकि मध्यम ज्ञानके अन्दर प्रदान करनेसे विपरूप हो जाता है कहा है:—“पयःपानं जुजंगाना केवलं विपरवर्द्धयेत्” अर्थात् सर्पको डग्ध पिलानेसे सिर्फ जहर बढ़ता है, मध्यम ज्ञानका यही लक्षण है

महानुजावा ! यदि कोई यहापर यह प्रश्न करे कि गुरु महाराज ही यदि शुद्धशुद्धका विचारकर अशुद्धको ज्ञान प्रदान न करेंगे तो अधम लोग कैसे पावन हो सकते हैं ? उत्तरमें विदित होकि अधमको पावन करनेका लक्षण इस प्रकार होता है:—

जैसे अशुद्धक्षेत्र हलादि प्रयोगसे शुद्ध हो जाता है तद्वत् अशुद्ध ज्ञान जी शुद्ध हो जाता है; अर्थात् उस अशुद्ध ज्ञान के साथमे ऐसा प्रयोग करना चाहिये कि जिससे शुद्ध मार्गमें प्रवृत्त हो जाय इस अवस्था तक सामान्य ज्ञानका परिचय होना उत्तम है तत्पश्चात् शुद्धावस्थामें गुरु गम्यनाका उत्तम ज्ञान प्रक्षेपण करना समुचित है यही परम्पराका प्रचलित नियम है

वर्तमानमें कइ एक जक्ति करानेके स्वार्थि गुरु वगेरे परीक्षा किये हुवे ही बुगलध्यानी जक्त जनोको उत्तम प्रकारका ज्ञान प्रदान कर देते है किन्तु अखीरमे उसका बहुत ही घुरा परिणाम होता है; देखिये गृहस्थ लोग एक दमनीकी ईंझी खरीद करते है उस समय यह फूटी है या अछी है इस बातको जाननेके वास्ते तीन टङ्कारोंसे बजाकर ग्रहण करते है; तो क्यों साहिब ? शिष्यवर्गकी या विद्यार्थिकी वगेरे परीक्षा किये हुवे उत्तम ज्ञान प्रदान करना कैसे समुचित हो सकता है ? अर्थात् अवश्य परीक्षा करना चाहिये

इधर वर्तमान जमानेमे कइ एक धूर्त विद्यार्थि लोग स्वार्थ लोभमे मग्न होकर बाह्य जक्ति लक्षणको दिखलाते हुवे उत्तम ज्ञान ग्रहण करनेकी कोशिस करते है और हृदयमें यह दूषित विचार करते हैं कि ज्ञान सम्पादन होनेके पश्चात् इससे परिचय रखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है नहीं ! नहीं !! इतना ही नहीं !!! बल्के ज्ञान संपादन करनेके पश्चात् यह चेष्टा किया करते है कि जब तक यह गुरु महाराज मौजूद हैं तब तक मेरी प्रतिष्ठा नहीं हा स-

केगी इसलिये कोड प्रयत्न करूँ कि यह सप्ताहसे प्रस्थान कर जाँय यह वही मसल है कि जिस तरह सिंहके डट्ट शिशुने अपनी उपगारिणी बिल्लीको मारनेका प्रयत्न किया था; इसही लौकिक दृष्टान्तको किञ्चित् रूपमें प्रकाशित करते हैं:—

(कृतघ्नता पर उदाहरण.)

एक किसी जयानक अटवीके अन्दर बहुत से जानवर रहते थे, वे एक दूसरेसे संयोग कर अपना योग्य कार्य किया करते थे

व्यावहारिक यह कहावत है कि बिल्ली सिंहकी मासी होती है एक दिनका जिक्र है कि एक सिंहके बच्चेने जाकर मार्जारको प्रार्थना की कि हे मासी ! मुझे पक्षे मारने वगेराकी कला सिखलानेकी कृपा कीजिये; सुनतेही बिल्लीने दिलमें यह विचारकि इस नूतन जानजेको एकदमसे सर्व कलाएँ नही सिखलाना चाहिये न मालूम विनीत है या अविनी है ऐसा समझ उसने यह उत्तर दिया कि कलसे तू कला सीखनेको आना

द्वितीय दिन प्रातःकाल होते ही वह सिंहका बच्चा अपनी मासी बिल्लीके आश्रम पर आन पहुँचा और प्रार्थना की कि मैं आपकी आज्ञानुसार हाजिर हुवा हूँ, अब कृपा फरमाकर अपनी कलाकौशल सिखलाइयेगा; उस बिल्लीने दया लाकर पञ्जा मारना आदि कला कौशलमे निपुण किया

सिंहके बच्चेने एक दिन दिलमें विचार किया कि जब तक मासी मौजूद रहेगी तब तक अपनी प्रतिष्ठा (Respect) होना डब्बार है क्योंकि पाठक गुरुकी विद्यमानीमें विद्यार्थीकी पूर्णतः प्रतिष्ठा नहीं होती इसलिये इस मासीको इसजबसे विदा कर देना चाहिये; ऐसा विचार विकराल रूपको धारण कर ज्योंही बिल्लीको मारनेको पञ्जा उठाया खोंही बिल्ली तत्काल दरख्त पर चढ़ गई

यह अवस्था देख सिंहके बच्चेने बिल्लीसे प्रार्थना की कि हे मासी ! मुझ-

को यह कला तुझने क्यों न सिखलाई; विद्वाने उत्तर दिया रे डष्ट! अथम!! कृतघ्न!!! यदि तेरेको यह कला सिखलाती तो आज मेरा जीवन रटना डण्डार था सच है! कृतघ्नो (Ungroatful) का यही लक्षण है और इस ही लिये सिंह पञ्जे बगोरकी कला जानता है मगर दरखतपर नहीं चढ सकता है

इस दृष्टान्तसें तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार विद्वाने अयोग्य सिंहेके बच्चेको संपूर्ण कला नहीं सिखलाई उस ही प्रकार ज्ञानवान् पुरुष योग्यायोग्यकी परीक्षा किये बगेर अयोग्यको उत्तम प्रकारका ज्ञान प्रदान नहीं करते हैं मगर यदि व अपनी अतुल कृपाद्वारा किञ्चित् ज्ञी गुरुगम्यताका ज्ञान बढ़ीस कर दे तो जवका निस्तारा होना अति सहन है; गुरु महाराज ही तरणतारण है; देखिये एरु सुविनीत विद्वानका कथन है:—

(श्लोक)

विदलयति कुबोधं बोधयत्यागमार्थं ।

सुगतिकुगतिमार्गो पुण्यपापे व्यनक्ति ॥

अवगमयति कृत्याकृत्य ज्ञेवं गुरु र्यो ।

जवजल निधि पोतस्त विना नास्तिकश्चित् ॥१॥

श्री सोमप्रज्ञाचार्य ॥

जावार्थ:—हे स्वामिन ! आप अज्ञानको विनाश करनेवाले है तथा आगमके रहस्याऽर्थको बतलानेवाले है; एवम् पुण्य पापरूप सद् और असत्गतीका प्रकट कथन करनेवाले है तथा हे गुरुवर्य ! कृत्वाकृत्य जेदोंको आप बतलानेवाले है इस ही लिये हे नाथ ! इस जवरूपी संसारसें तिरानेमें आपके शिष्याय कोइ अन्य नौका नहीं है; अर्थात् आप ही समर्थ और आधारजुत है

गरजकी जगन्नपमे गुरु महाराजके समान कोइ उपगारी नहीं हो सकता इस ही लिये उनकी आज्ञामें कटिबन्ध (engago) होना यह शिष्य वर्गका मुख्य धर्म है और इस ही से चारित्रकी निर्मल आराधना कर अपनी आत्माका जला कर सकता है

॥ वृहदीक्षा ॥

इन महानुजावकी वृहदीक्षा इस ही सालके मार्गशीर्षमे वने ही समारोहसे हुई इस वृहदीक्षाका किञ्चित् स्वरूप लिख दिखानेका प्रयत्न करता हूँ:-

सङ्गानो ? इस वृहदीक्षाका नाम ठेदोपस्थापनीय है यानी ठोटी दीक्षामे प्रमाद बश लगे हुए प्रायश्चित्तोंको ठेदनकर निर्मल पञ्च महाव्रत (give goat oaths) उच्चराए जाते है इस अवस्थाके पूर्व तरु केवल सर्व सामायकका ही अधिकारी रहता है इस प्रकार उत्तम चारित्र्यका प्राप्त होना बडा ही उर्लज है; देखिये श्री उत्तराध्ययनके नृतीय अध्ययनके प्रथम गायामें इस प्रकार फरमाया है:-

॥ धर्मदेशना ॥

(गाथा)

चत्वारिपरमङ्गाणि । उल्लहाणीह जन्तुणो ॥

माणुसत्तं सुईसद्धा । संजमम्भीय वीरियम् ॥१॥

अर्थ:-प्राणियोंको मनुष्यपन, सूत्रपर श्रद्धा, समय और वीर्य इन चार उत्कृष्ट अङ्गोका प्राप्त होना अति उर्लज है इन चारों अङ्गोका किञ्चित् विशेष स्वरूप लिख दिखता हूँ:-

यह चेतन अनादि कालसे निगोदके अन्दर रहा हुआ अनन्त डःखोंसे दग्ध हो रहा है नरक (Hell) के जीवोंको जितना डःख है उतना अन्य गतिवालेको नहीं मगर विचारे निगोदके जीवोंको उससे जी अनन्त गुणा-डःख झानियोंने फरमाया है देखिये मनुष्य जिन वरुत जन्म लेता है उस समय इतनी वेदना होती है कि जेमे कोई बलवान् पुरुष माहेतीन क्रोन सूइयें गरम करके अपनी शक्तिपूर्वक किसी मनुष्यके सर्व रोमराइमे प्रवेश कर दे इसमें जितनी वेदना है उससे जी अनन्त गुणी होती है कहा है:-

(गाथा)

ऊँठकोनी सूई ताती करीरे । समकाले चोवे कोई राय जो ॥
 तेथी अनंतगुणीतोहा कहीरे । दुःख सहत विचार तब थायजो
 तूने संसारी ॥१॥

निरोगी पुरुष एक श्वासोच्छ्वास लेता है इतनेमे निगोदिये जीव कुठ जा-
 जेरू (अधिक) सत्तरा जव कर लेते है यानी इतनी टाइममे सतरा वरूत जन्म
 और सतरा वरूत मरणको प्राप्त होते है आत्माथि महानुजावों । विचारिये
 कि जव एक वरत जन्म लेनेसे इतना डःख होता है कि जिसको सुनने मात्रसे
 जव्यात्माकी देह कम्पायमान हो जाती है, अश्रुपातमें नदियें उहने लग जाती
 है, करणमें शूलमा मालूम होता है, जुजाका जल नष्टताको प्राप्त हो जाता है,
 बुद्धि विह्वल दशाको प्राप्त हो जाती है, मन शोकसागरमें गोता लगाने लग
 जाता है, मज्ज शून्य दशाको प्राप्त हो जाता है, चिन्ता महारानी शरीरके
 प्रत्येक अवयवमे प्रवेश कर जाती है कहीं तक कहा जाय वज्रके घावसें जी
 अधिक ड खकों प्राप्त होता है शिवाय डःखके कुठ जी नही सूजता जब सु-
 ननेसे ही ये हाल है तो जला जोगती वखतका तो कइनाही क्या है

वर्षाऽनुरागियों । एकवार जन्मका इस प्रकार डःख होता है तो
 विचारे निगोदिये जीव जोकि निरोगी पुरुषके एक श्वासोच्छ्वासके अन्दर १७
 वरत जो जन्म मरण करते है उनके डःखोंको केवली महाराज या उनकी आ-
 त्मा ही जान सकती है

ऐसे महान् कष्टके स्थानसे यह चेतन अकाम निर्जरा कर व्यवहार राशिमे
 प्राप्त होता है इमें जी यदि अपर्याप्ताऽवस्थाको प्राप्त हवा तो कोइ जी कार्य
 करनेको समर्थ नही हो सकता कटाच पुण्ययोगसे पर्याप्तावस्था पालिया और
 एकेन्दिधे उत्पन्न हुवा तो जी नाना प्रकारकी वेदना सहन करना पमती है;
 देखिये पृथ्वी, अग्नि, तेज, वात और वनस्सतिहाय मनोऽज्ञावके कारण कुठ
 जी उचित कार्य करनेको समर्थ नही हो सकती है

अकाम निर्जरा करता हुआ अनन्त पुण्यार्थके वश वेइन्डिको प्राप्त करता है तद्वत् क्रमशः तेन्डि चौरिन्डि तक पहुँचता है मगरताहम जी ज्ञानादि तथा मनोऽज्ञावसें यथार्थ धर्म प्रतिपालन नहीं कर सकता है

(चतुर्गतिका दृश्य)

इस स्थलसें उठकर असन्नि पञ्चेन्डिकों प्राप्त करता है मगर यहापर जी नव प्राण होनेसें धर्मका यथावत् आचरण नहीं कर सकता है पश्चात् जीव सन्नी पञ्चेन्डिकों धारण करता है; इस अवस्थामें जी चारों गतियें मौजूद है यदि जीव नरक गतिमें प्राप्त हो जावे तो नाना प्रकारकी वेदनाको सहन करना पड़ता है वहापर रहे हुवे परमाधामी किस १ प्रकार वेदना दते है; देखिये:—नैरैयेकी टंगडि पकड़कर चारसो पाचसो योजन ऊँचे उठालते हैं बीचमें कई बाजकवे आदि चूँट १ कर खाते है, नीचे कुंजीपाक नरकमें गिरते है, कजी खड़से शिर काटते है, कजी हात, कजी पेर, कजी नाक, कजी कान काटते है; कजी जाला शिखासें मालकर नीचे निकाल देते है, कजी अधोसें उर्ध्व जगमें निकलाते है कजी नेत्रोंमें पिरोते है, कजी कणोंमें और कजी मुखमें प्रवेश करते है, कजी कटारीसे हृदय विट्टीर्ण करते है, कजी लोहकी नदीमें टंगमी पकड़ फेंक देते है, कजी गरम १ स्तम्भ आलिङ्गन करवाते है, कजी जयानक रूप बनाकर मराते है इत्यादि अनेकश घोरातिघोर कष्ट देते है. जिसका पूर्ण स्वरूप हमारी लेखनीसे बाहर है

यदि जीव पुण्य योगसें तिर्यञ्च गतिको प्राप्त हो जावे तो वहा पर जी देखिये कितने १ कष्ट सहन करना पड़ते है; जैसे विचारें वेलोंको सार्थमाह रथोंमें, गाम्भियोंमें जोतकर मनोबंध बोझा खिचवाते है; किसान कुवेमेंसे जल खिचवाते है; नेत्रोंको बंद कर तैलीघानीमें घूमाते हैं; व्यापारी पीठपर पोठी रखकर ककर पट्टरमें गमन करवाते है जिस्ती पानीकी पखाल लाडकर डमते जाते हैं; किसान सेतोंमें हलमें जोतकर जमीन विदारण करवाते है विचारे घोमे फिट्ठन (वग्गी) तागे डक्के वगेरामें जुडकर कितने ही मनुष्योंका व माल असबावका बोझा खीचते है; घासपानी और दाना जी

बलतपर नहीं मिलता है; चाबुकोंके प्रहार सहन करते हुवे अपने कालको व्यतीत करते है इस प्रकार हस्ति, ऊँठ और खरादि जानवरोंको जी अनेकशः कष्ट सहन करना पड़ता है जोकि हम मनुष्य दृष्टिसे देख सकते है

यदि जीव पुण्य कृत्यसे देवगतिमें उत्पन्न हो जावे तो व्रत पञ्चकाण ग्रहण नहीं करनेसे यथेष्ट धर्मका पालन नहीं कर सकता है विचारे देवता मार्यना करते है कि हे मजो ! दो घड़ीकी सामायक यदिहमें जी उदय आ जाय तो हमारा जन्म सफल हो जाय; यद्यपि वह कितने ही सुखी हैं तदपि उस गतिसे मोक्ष हरगिज्जन्ही हो सकता यही प्रबल पुण्यहीनताका लक्षण है

जोऽज्ज्वात्मा ! उपरोक्त तीनों ही गतियोंको परित्याग करके जो प्राणि मनुष्य गतिको प्राप्त करता है वह अनन्त पुण्यार्थको धारण करनेवाला अपने यथार्थ धर्मको प्रतिपालन करनेको समर्थ हो सकता है इस प्रकार कठिनता पूर्वक मनुष्य जब प्राप्त होता है मगर इस गतिमें जी कितनी ही आफतें होने से यथार्थ धर्मको पाना कुछ सहज नहीं है किन्तु अतिही कठिन है देखिये:-

यदि अनार्य क्षेत्र में उत्पन्न हो गया तो धर्मकी प्राप्ति नहीं हो सकती है, कदाचित् पुण्य योगसे आर्य क्षेत्रमें उत्पन्न हुवा और नीच जातिमें प्राप्त हो गया तो जी यथार्थ धर्म नहीं पा सकता, यदि उत्तम जातिमें प्राप्त हुवा और दरिद्र कुलमें जन्म लिया तो जी श्रेष्ठ धर्मकी प्राप्ति नहीं हो सकती, यदि उत्तम कुलमें प्राप्त हुवा और शरीरसे लाचार रहा तो जी धर्मकरणी नहीं कर सकता, यदि शरीर निरोग रहा और ड्यूसनोपें मग्न रहा तो जी धर्मरुस नहीं कर सकता यदि ड्यूसनोसे अलग रहा और देव गुरु धर्मकी योगवाइ न मिली तो जी श्रेष्ठ सिद्धि नहीं होती, अगर् पुण्ययोगसे उस क्षेत्रमें इन तीनों रत्नोंकी योगवाइ हो और उनसे सयोग न होतो जी पुण्यहीनता समझना चाहिये, कदाचित् समर्ग हुवा और धर्म श्रवण न किया तो जी यथार्थ प्राप्ति नहीं हो सकती, यदि श्रवण किया और उसको दिलमें धारण न किया तो जी कुछ फल नहीं हो सकता, कदाचित् धारण किया और उस जिन वाणीपर श्रद्धा न हुई तो जी उत्तम फल प्राप्त नहीं हो सकता, यदि किञ्चित् श्रद्धा हुई और उसके मुताबिक मनुष्य

न की तो जी सपूर्ण ययेष्टता प्राप्त नहीं हो सकती इस प्रकार जिनांगमपर श्रधा होना बन्नी डर्लज है

महानुभावो ! उत्तम श्रधा हो जानेके बाद जी निर्मल चारित्र्यको ग्रहण करना अत्यन्त डर्लज है, गृहस्थाश्रममें हजारो डःख मौजूद है यथाः—सवसें वना चिन्तारूपी डःख आकर व्याप्त हो जाता है जैसेः—

लक्ष्मी न होनेकी हालतमें उसे प्राप्त करनेका अधिकाधिक फिकर रहता है, अरे मैं क्या करूं ? व्यापार करूं या माका मालूं या देश लूँटूं या निलाम करूं या अन्य द्यूत व्यापार करूं ? आदि अनेक विकल्प बने रहते हैं तथा लक्ष्मी होनेपर उसके रक्षा की अधिकतः चिन्ता होती है यथाः—

अरे कोई चोर न ले जाय, कहीं राज न ले ले । कहीं माकान पड़ जाय, कहीं अग्निमें न जल जाय, कहीं देवता अपहार न कर लें और कहीं जमीन निगल न जाय आदि अनेकशः डःख होते हैं एवमः—

कुटुम्ब परिवारके जी बहुतसें डःख है यथा कोई कु स्त्रीसे संयोग हो जाय तों वह अनेकशः डःख देती है जैसें विचारा पुरुष डकानसें या नो-करीसें जोजनकी वख्त घरपर आता है उस तप्ताऽवस्थामें वह स्त्री कहती है आजनाज नहीं है, कजी कहती घृत नहीं है, कजी कहती गुदू नहीं है, कजी कहती शकर नहीं है, कजी कहती दाल नहीं है, कजी कहती आज लक्ष्मियें नहीं है क्या तुमारे हायपेर जलाके रोटियें बनाऊँ ? इस प्रकार विचारे उस पुरुषको जोजनके समय डःख देती है, और जी मुनियेः—

जिस वख्त की शयनगृहमे पहुँचता है उस वख्त जी नाना प्रकारसें वद्वमहाहृ किया करती है, कजी कहती मुझे उत्तमोत्तम वख्त बना दो, कजी कहती अठे १ जेवर बना दो, कजी कइतो मुझे उत्तमोत्तम खानपान कराठ; अन्यथा मैं तुमे स्वीकार न करूंगी, न तुमारे घरमें रहूंगी आदि अनक प्रकारकी धमकी बतलाकर विचारे उस पुरुषको डःख कर देती है ।

इस ही प्रकार वहीन और लक्ष्मी यही कहा करती है कि मुझे कुछ जी

नहीं दिया चाहे उन्हें हजारों रुपैयाँका माल देदिया जाय तोजी सतौप को प्राप्त नहीं होती है पिता, माता, जाई, पुत्र इत्यादि सर्व अपने स्वार्थमें रमण करते है यह अनियाइ रिस्तावही तरु फलदायक हैं जहा तककी अपना शरीर नि-रोगावस्थाको धारण किया हुवा है तथा लक्ष्मीने जय तरु निवास किया है

देखिये स्वार्थि रिस्तहदार बाहरसें इतना प्रेम दिखलाते हैं कि जैसें निर्गुणी रोहिङ्गेके पुष्प अपने मनोहर रूपको बतलाते हैं; सच है! जर्जनोका यही स्वरूप है लेकिन सज्जन पुरुष बेही है कि जो डःखमें जी सहान्ग्य करते है सुखमें तो हजारों मित्र बन जाते हे कहा है:—

(दोहरा.)

सुखमें सज्जन बहुत है । डःखमें लीने गीन ॥

सोना सज्जन कसनको । विपति कसोटी कोन ॥१॥

इस प्रकार स्वार्थि सम्बन्धियोंकि डःखके अन्दर परीक्षा हो जाती है कि उनका सचा प्रेम है या फूटा इसपर मुझे एक अनुपम दृष्टान्त स्मरण होता है उसे यहा उद्धृत कर लिख दिखता हूँ:—

(ससारकी अनित्यताका अनुभव.)

जम्बुद्वीपके इसही जरतङ्गेत्रके अन्दर मालवदेशमें अवन्तिकापुरी नामक एक अनुपम शहर है वहापर विक्रमादित्य राजा अनेक गुणशाली राजाओंसे शोभायमान होता हुवा सुखपूर्वक राज्य करता था उसमें बने १ विशाल जैन मन्दिर अपने दिव्य स्वरूपको प्रकट कर रहेये और ध्वजा पताका तोरणादि अलौकिक शोभासें सुशोभित थे

वहापर देवगुरु जक्त, धर्म कार्यरक्त, विनयवन्त अनेक ज्येष्ठ श्रावक श्राविका निवास करते थे; उन्हेंमें मणिचन्द्र और सुवर्णचन्द्र नामक दो प्रतिष्ठित सेठ निवास किया करते थे उनके सूर्यकान्ता और चन्द्रकान्ता दो स्त्रियें

थी; उनके-सूर्ययश और चन्द्रयश नामके दो विनयवान् पुत्र थे-इन दोनोंके-चन्द्रमति और तारामति नामकी दो स्त्रियें थीं

इन दोनों श्रावक ग्रंथुओंके आपुसमें गाढ प्रीति थी इनमेंसे सूर्ययश कुमार विशाल बुद्धिको धारण करनेवाला जिनेश्वरके आगमोंके रहस्यका वेत्ताया साप्ताहिक विषय सुखोंको जोगता हुआ जी अनित्य ज्ञानामें निमग्न था इधर चन्द्रयश कुमार विचारा जोलेपनको धारण किया हुआ गहरे विचारोंसे विमुक्त था

एक दिनका जिक्र है कि यह दोनों मित्र आपुसमें वार्तालाप कर रहे थे उसही अवसरमें विस्मय सूर्ययश कुमारने सप्ताहकी अनित्यता प्रकट कीकि हे मित्र ! पिता, माता, ज्ञाह, बहीन, स्त्री, पुत्र, पौत्रादि समस्त परिवार स्वार्थके साथी है कोई किमीका नहीं सब जुंटा है ऐसा' जिनेश्वरका वचन है इसलिये किसी पर विश्वास नहीं करना चाहिये सदा सावधानीसे ही रहना यह उत्तम पुरुषोंका कर्तव्य है

यह व्यवस्था सुन चन्द्रयश बोला कि मित्र तुम्हारा कहना यथार्थ नहीं; देखिये मेरे मातपितादि मुझपर अधिकाधिक स्नेह रखते हुवे लालना पालना उत्तम प्रकारसे करते हैं मेरे विरह (Separation) को बिलकुल सहन नहीं कर सकते, आधिव्याधिमें इतना दग्धपना हो जाता है कि जो मेरे कथनसे बाहर है, इधर स्त्री ऐसी पतिव्रता है कि जो मेरे दर्शन किये बगेर अन्नजल ग्रहण नहीं करती है तथा आइसों एक अणुमात्र जी विपरीत नहीं करती, मेरी विरहाऽवस्थाको समयमात्र जी सहन नहीं कर सकती, आधिव्याधिमें मृत्युवत् दुःखको प्राप्त हो जाती है, यहाँ तक उसका उत्तम व्यवहार है कि जहापर मेरा स्वेद (पसीना) गिरता है वहापर रुधिर मालनेकों तैयार है अर्थात् विनय जक्तिमें इतनी लीन है कि जो हमारे वक्तव्यसे बहार है, इसही प्रकार अन्य कुटुम्ब परिवार जी बन्ना ही स्नेहकारी है; इसलिये हे मित्र ! तुमारा कहना तदन मिथ्या है

यह सुन सूर्ययश बोला कि हे जोले ज्ञाई! तेरा यह कहना ठीक नहीं

वे सन्ध्याके रङ्गके सुआफिक पलटते देर नहीं करते हैं गजसुकुमालजीने अपनी मातासे ठीक कहा है:—

(गाथा)

पलटे रङ्ग पतङ्ग कसूँवाको जिसो
ते ऊपर विश्वास जामण करवो किसो ॥१॥

हे मित्र ! यदि तेरी इठा हो तो तेरे स्नेही कुटुम्बकी मृत्यु परीक्षा करके बतलाऊँ कि डःखमें किस प्रकार साथी है इस बातको सुनकर चन्द्र-यशने सहर्ष स्वीकार किया

सूर्ययशने उसको कहाफि हे मित्र ! तुम मकानपर जाकर “उदरमें शूल-रोग हो गया” ऐमा वाहना (Protence) करना और अपने नेत्रों जगरेको ऐसे विकृति रूपमे करनाकी जिससे सब लोगोंको मृत्यु अवस्था प्रतीत होने लग जाय

सुनतेही उन शब्दोंके वह शीघ्रही अपने घरपर पहुँचा और जोजन करके एकदमसे कल्पित शूलरोगसे दग्ध होता हुआ विलापात करने लगा

इस अवस्थाको देखकर मातपिताओंने कइ एक वैद्य, हकीम और मा-दरोंको बुलवाये मगर किसीकी जी औपथी फायदेमन्द न हुई सर्व कुटुम्बके लोग निरास होकर इस जयानक डःखसे डःखित होने लगे

इसही अवसरमें वह सूर्ययश कुमार वैद्य स्वरूपको धारणकर औपथीका बॉक लेकर चन्द्रयशके मकानपर जा पहुँचा पहुँचतेही नोकरसे कहाफि शेट साहबसे जाकर कहोकि एक विदेशी वैद्य दारपर खमा है, वह प्रत्येक बीमा-रीकी उत्तमोत्तम औपथी जानता है यह सुन नोकरने शीघ्रही शेटसे जाकर प्रार्थना को सुनतेही शेटने अतीव हर्षके साथ बुलानेकी आज्ञा बहूसकी, उसही वरुत नोकरने उस वैद्यको जीतर प्रवेश करा दिया, वैद्यने अपने योग्य

स्थानपर बैठकर उस ग्लानीकी नब्ज देखी और कहाकि एक डग्धका कटोरा जर लेआउं

सुनतेही इस शब्दके उसका पितारजत (चादी) के कटोरेके अन्दर निर्मल डग्ध जर लेआया उस वैद्यने कटोरेको लेकर उस ग्लानीके शरीरपर इक्कीसवार उतारा किया और सब लोगोके सामने यह जाहिर कियाकि व्याधिका जितना जहर था सर्व इसके अंदर खिंचे गया है इसलिये जिसको यह कुमार प्यारा हो वह इसे पानकर लेवे जिससे यह कुमार जीवित हो जायगा और पान करनेवाला मरण शरण हो जायगा

अब यह वैद्य मत्येक्तको पृथक् पृथक् पूछता है उसपर लोग क्या उत्तर देते है सो विचित्र लीला ध्यानपूर्वक पढियेगा

प्रथमही प्रथम वह वैद्य डग्धका कटोरा लेकर उसके पिताके सन्मुख हुवा और प्रार्थना कीकि है शेर साहब ! आप वृक्ष है अधिक जीवकी संज्ञावना नही इसलिये यदि आप सच्चे प्रेमी है तो आफताफके मुआफिक दमकते हुए इस कुंवर कन्हैयेको जीवित कीजिये और लीजिये यह डग्ध सानन्द पान कीजिये

पिताका उत्तरः—प्यारे वैद्यजी ! यह कार्य होना अति कठिन है इस जगतमें विरले पुरुषोंको ठोकर कौन ऐसा है कि जो चाहकर मृत्युवश होवे इसके अतिरिक्त जिस बातको तुम कहो वह स्वीकार है, यदि हम दोनो दम्पती मौजूद रहेंगे तो पुत्रोत्पत्ति होना असम्भवित नही है जाई वैद्यजी ! निर्यक हाहा करनेमें कुछ लाज नही है देखिये ठीक कहा हैः—“ आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जा सुखी नवेत् ” इसका अनुकरण करते हुवे मैने आपसे स्पष्ट निवेदन किया है

यह सुन वैद्य कौतुकार्य माताके सन्मुख उपस्थित हुवा और प्रार्थना कीकि हे शेरानी साहब ! यह आपका युवान पुत्र मिनटोके अंदर मरण शरण हो जायगा जिस पुत्रकोकि आपने नौ मास पर्यन्त अपने उदरके अन्दर स्थान

प्रदान किया है बाद में जाना प्रकारकी सुश्रुपाकर पालन किया है वह मनो-हर पुत्र आज परलोकके प्रस्थानकी तैयारी कर रहा है आप इन्धवस्याके अन्दर पहुंच गई हो अब अधिक जीवनकी संज्ञावना नहीं इसलिये कृपाकर अपने प्यारे पुत्रको बचाऊँ, रक्षा करो, इस डट्ट कालके कञ्जेसँ मुक्त करो; अर्थात् जीवितदान दो और लो यह डग्धपान कर लो

माताका उत्तरः—हे जाई वैद्यजी ! तुम्हारा कहना सर्वथा ठीक है किन्तु यह कार्य होना बहुत कठिन है इस डनियामें सैकड़ों पुत्र जन्मते हैं और इसही प्रकार मृत्युको प्राप्त होते हैं तो जला ! किसर् के पीठे जान दी जाय यह सत्तारका अनानि प्रवाह ऐसाही चला आता है और इसही प्रकार चलता रहेगा विशेष क्या कहूँ तुम खुद सुझो

इसके बाद डग्धका ऋशोरा लेकर बहुत सेरिस्तहदारोंके सन्मुख हुवा किन्तु सर्वने इसही प्रकार टूटाफूटा उत्तर दिया अन्तमें वह वैद्य उसकी स्त्रीके पास गया और कहाकि हे जड़े ! तुम अपने पतिको बचाऊँ अगर पति मर जायगा तो तुम्हें इस डनियामें कुछ जी सुख नहीं है देखो उत्तम खान-पान जी तुम नहीं कर सकती, उत्तम वस्त्र जी जोगमें नहीं ला सकती हो तथैव अलङ्कारोंसँ अलङ्कृत नहीं हो सकती, उत्तम सेजपर शयन नहीं कर सकती हो, हँसीमजाक तथा अन्य वार्त्तालाप निम्न नहीं कर सकती हो, अपने शीलकी रक्षा जी उत्तम प्रकारसँ करना डर्लज है इसही प्रकार किसीसँ घनिष्ठ सम्बन्ध रखना जी डःसाःय है कहनेका तात्पर्य यह है कि पति मृत्युके बाद स्त्रीको किसी प्रकारका सुख नहीं हो सकता है तो फिर अपने प्यारे पतिके बचानेका यश क्या ठोमती हो स्त्रियोंका यह मुख्य धर्म है कि अपने पतिके सकट (Distress)को निवारण करे और मुना जी जाता है कि तुम वनी ही पतिव्रत धर्मधारका हो और सदैव अपने पतिकी आङ्गामे चलनेवाली हो तथैव गाढ प्रीति रखनेवाली हो इसलिये हे बुद्धिमते ! लो यह डग्धपान करो और अपने प्यारे प्राणनायकों डट्ट मृत्युसे मुन्नालो

स्त्रीका उत्तरः—वैद्यजी ! तुम्हारा कहना यथार्थ है किन्तु जीते जीव मरना कैसे बन सकता है देखो इस डनियामें अन्दर हजारों स्त्रियोंके पतिकाल

प्राप्त हो गये हैं उसही प्रकार मैरी जी हालत हो जायगी अर्थात् हजारों विधवाएँकोनेका आश्रय ले रही है इसही प्रकार एक मै जी बढ़ जाऊंगी तो कुछ हर्ज नही मगर जाई वैद्यजी ! तुम्हारे कथनानुसार करनेकों मै सर्वथा असमर्थ हूँ

उस वैद्यने इस प्रकार अद्भुत घटना देखकर पुनरपि समस्त कुटुम्बकों कहाकि अरे जाईयो ! कोई जी दया लाकर इस कुमारकी रक्षा करो तुम्हारा प्रेम इसही डपमावस्थामें प्रतीत होगा

कुटुम्बका उत्तरः—कौन इस जगत्के अन्दर ऐसा है जो अपना व अपने संबंधियोंका जला न चाहता हो मगर क्या किया जाय जीवित हालतमें जान देना कठिन है और इसही कारण हम सब मजबूर हैं विशेष क्या कहै तुम खुद बुद्धिमान हो

इस आश्चर्यजनक लीलाको देखकर उस चन्द्रयशको विस्मय करता हुआ वह वैद्यरूप मित्र सर्व कुटुम्बके प्रति कहने लगाकि धन्य हो तुम्हकों व तुम्हारे उत्तम कुलकों, धन्य हो तुम्हारे शुद्ध व्यवहार तथा तुम्हारे गाढ़ प्रेमको किन्तु इस प्रकार कुटिल व्यवहार रखते हुवे अपना उत्तमपन समजते हो मैने केवल तुम्ह लोगोंके स्नेहकी परीक्षाके वास्ते ही इतना प्रयत्न किया है यह मसार महान मिथ्या तथा विश्वासघातक प्रतीत होता है देखो मै यह डपपान करता हूँ इससे मुज्जे कुछ जी नुकशान नही हो सकता यह बात सुन सर्व लज्जित हुव

(गृहस्थाश्रमसें ग्लानी और वैराग्यमें रमणता)

चन्द्रयश इस संसारकी अद्भुत लीलाको देखकर वैराग्यताकों प्राप्त हुवा.

इसही अत्रसरमें एक चतुर्ज्ञानधारी महान् आचार्यका पदार्पण हुवा, इस अपूर्व खुशखबरीकों सुनतेही सर्व लोक एकत्रित होकर पूज्य गुरुवर्यके सन्मुख

गये और महतामन्त्रसे नगर प्रवेश (Entry) करवाया उपाश्रयमे प्रवेश होतेही उपगारी गुरुवर्यने अपनी अलौकिक धर्मदेशनासे नव्य जनोको मुग्ध किये; वह चन्द्रयश कुमार जी इस जलसे येंशरीक था

एक दिन उन धर्मावतारने संसारकी अनिश्चता (Transient) पर असाधारण व्याख्यान दिया जिससे अनेक नव्यात्मा गृहस्थाश्रमके डःखसे धूज पड़े इसमें सबसे अधिक उदासीनता उस चन्द्रयशको प्राप्त हुई, यह कुमार अपने मातापिताकी आज्ञाको धारणकर इन विशाल ज्ञानीके पास अनेक नव्य प्राणियोंके साथ महतामन्त्रसे निर्मल चारित्र ग्रहण किया

न्य हे ! उस अतुल वैरागीकोकि जिसने डःखके दाता गृहस्थाश्रमको तत्काल परित्याग कर नवतारक चारित्र अङ्गीकार कर लिया

इम दृष्टान्तसे आपको विदित हो गया होगा कि यह गृहस्थाश्रम किस प्रकार मिथ्या है, तथापि निर्मल चारित्रको अखितयार करना अति डरलज है जो नव्यात्मा इस नवोद्धारक चारित्रको अखितयार करते हैं वे महानुच्चार पञ्च महाव्रतको जली प्रकार पालन कर सकते हैं

यह पञ्च महाव्रत एक ऐसे उत्तम रत्न है कि जिसको व्यवहार निश्चयादि जेदोंद्वारा ययार्थ पालन करे तो उत्कृष्ट मोक्ष पद प्राप्त होता है उनही महान् पञ्चव्रतनोकी व्याख्या लिख दिखते हैं:—

॥ पञ्च महाव्रतोका दिग्दर्शन ॥

प्रथम अहिंसा महाव्रत.

किसी जी प्राणीको हिंजा (तकलीफ) न पहुँचाना उसे अहिंसा महाव्रत कहते हैं.

व्यवहारसे:—पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति, वेन्डि, तेन्डि, चौरिन्डि, और पञ्चेन्डि, इन नौ प्रकारके जीवोंकी हिंसा करे नहीं, करावे नही और

करतेको अनुमोदे नहीं एवम् ११ मनसैं, वचनसैं, और कायासैं एवम् ८१ प्रका
रसे सर्वथा हिंसाको परिखाग करे, अर्थात् हिंसा चतुष्कमेंसे जघन्यसे प्रथम
जेद व उत्कृष्टसैं चतुर्य जेद ग्रहण करे शेष जेद सर्वथा त्याग करे

(हिंसाचतुष्क)

१ इव्यसैं हिंसा करता है ज्ञावसे नहीं.

विवेचनः—जैमें मुनिराज अहारपानीके वास्ते तथा विहार बगोरामे गम-
नागमन करते है उस बलत जो कोइ हिंसा हो जावे वह इव्य हिंसा है अ
र्थात् स्वरूप हिंसा है बन्ध हिंसा नही

२ ज्ञावसैं हिंसा करता है इव्यसैं नहीं.

विवेचनः—दिलमें ऐसा विचार होता है कि मै अमुक मनुष्यकों या अमुक
जानवरको प्राणरहित करदूं अथवा अमुक प्राणिको अमुक इंससैं दग्ध
करदूं इसादि अनेक उष्ट विचार करता है लेकिन हिंसा करनेका मौका प्राप्त
नहीं होता यह ज्ञाव हिंसा जानना; अर्थात् इससे अशुभ बध पड़ता है

३ इव्य और ज्ञाव दोनो प्रकारसे हिंसा करता है.

विवेचनः—परिणाम ज्ञी कषायके रहते है तथा इव्य हिंसा ज्ञी करता
है; अर्थात् दोनो प्रकारकी हिंसा करके उर्गतिका जागी होता है

४ इव्य और ज्ञाव दोनो प्रकारसे हिंसा नहीं करता.

विवेचनः—यह शून्य जागा है; अर्थात् असंजव है.

निश्चयसैंः—रागदेष करके जो अपनी आत्मा लीन हो रही है उससैं
शुक्त होकर अपने निज स्वरूपको प्रकट कर निर्मलावस्थाको प्राप्त होना.

द्वितीय सत्य महाव्रत.

सर्वथा असत्यका परित्याग करना उत्तम सत्य महाव्रत कहते हैं

व्यवहारसें:—क्रोध, मान, माया और लोभसें फूठ बोले नहीं, बोलते नहीं और बोलतेको अनुमोदे नहीं एवम् ११ मनसें वचनसें और कायासें एवम् ३६ प्रकारसें सर्वथा मृषावाद परित्याग करे, अर्थात् मृषाचतुष्कर्मसें जघन्यसें प्रथम जेद व उत्कृष्टसें चतुर्थ जेद ग्रहण करे शेष जेद सर्वथा परित्याग करे

(मृषाचतुष्क)

१ इव्यसें जूठ बोलता है जावसे नहीं

विवेचन:—जैसे किसी एक विधावान जङ्गलके अन्दर एक मुनिराज विश्राम ले रहे थे उस वखत एक सिंह पास होकर निकला उसको जली ज्ञाति जान लिया. थोड़ी देरके बाद क्या देखते है कि बहुतसे मनुष्योंके साथ अनेक शस्त्र धारण किया एक राजा आन पहुँचा पूठता क्या है कि हे मुनीश्वर ! सिंहको इवर निकलते आपने देखा है क्या !

यह सुन वह मुनिराज दिलमे विचार करने लगे कि यदि ये बतलाता हूँ तो पचेन्डिय जीवकी घात होती है; यदि इनकार करता हूँ तो मृषावादका प्रायश्चित्त लगता है; यदि मौन रखता हूँ तो जीवन रहना मुश्किल है ऐसा विचारते हुवे शीघ्रही यह ज्ञात हुआकि जिनेश्वरका एकान्त मार्ग नहीं है धर्मके सर्व असूल सापेक्ष और निर्वाध्य है, उन सर्वज्ञ देवने इव्य तथा जाव ऐसे दो प्रकारके मृषावाद फरमाये है: इव्य मृषावाद उसे कहते हैं कि जिसमें महत्त कारण होनेसे अधिक लाजके वास्ते यदि बोलना पड़े तो उससे बन्ध नहीं पडता है किन्तु स्वरूप मृषावाद है; ऐसा विचार कर उन मुनिराजने उच्चर दिया हे राजन् ! मुझे मालुम नहीं कि मृगराज किधर गया है अथवा अनुपयोगतासें अमल बोला जाय वह जी इव्य मृषावाद समजना

१ ज्ञावसें जूठ बोलता है डव्यसे नहीं.

विवेचनः—दिलमे ऐसा विचार करता है कि मै अमुकके समक इस इस प्रकार मनोकल्पित आम्रम्बरीय वार्त्तालाप या कीसीकी यश कीर्त्ति या निन्दा-दिक अतिही खूबसूरतीके साथ कहूंगा इत्यादि विचार करता है लेकिन ऐसी वार्त्तालाप करनेका मोका नहीं पाता, वह ज्ञाव मृपावाद जानना

डव्य और ज्ञाव दोनों प्रकारसें मृपावाद.

विवेचनः—परिणाम जी सख बोलनेमे निमग्न रहते है तथा इसही प्रकार बोलनेका जी अवसर प्राप्त हो जाता है; अर्थात् दोनों प्रकारका मृपावाद बोलकर डर्गतिका जागी होता है

४ डव्य और ज्ञाव दोनों प्रकारसे मृपावाद नहीं बोलता है.

विवेचनः—यह शून्य जांगा है; अर्थात् उत्तम और ग्रहण करने योग्य है.

निश्चयसें:—पौत्रलिक पदार्थको यह चेतन जो अपनी करके मान रहा है अर्थात् ममत्वमे लीन होकर नित्य प्रति अधिकाधिक आनन्दमें मग्न हो रहा है उससे विमुक्त होकर निर्मल ज्ञावमें रमण करना

तृतीय अस्तेय महाव्रत

बगैर दी हुई वस्तुकों विलकुल अङ्गीकार नहीं करना उसे अस्तेय महाव्रत कहते हैं

व्यवहारसें —अल्प, विशेष, कनिष्ठ, ज्येष्ठ, सच्चि और अचिच: इन छ प्रकारसें चौरा करे नहीं, करावे नहीं और करतेको अनुमोदे नहीं एवम १७ मनसें, वचनसें और कायासें एवम् ५४ प्रकारसें सर्वथा चौरा, परित्याग करे अर्थात् स्तेय चतुष्कर्मसें जघन्यसें प्रथम जेद और उत्कृष्टसें चतुर्थ जेद ग्रहण करे शेष जेद सर्वथा परित्याग करे.

(स्तेयचतुष्क)

१ ड्यसें चौरा करता है जावसें नहीं.

विवेचनः—जैसे किसी एक शहरमें एक धनाढ्य शेर रहता था वह एक वखत सकुटुम्बे यात्रार्थ रवाना हुवा, पीठसे उसके मकानमें अचानक (Suddenly) अग्नि लग गई उस वखत उसके सुयोग्य पड़ोसी (Neighbours) ने यह विचार कर सर्व सामान निकाल लिया कि जब वह आवेगा उसे वापिस दे दूंगा जब वह शेर यात्रासे लौटकर आया तब सर्व वस्तुएं उसे दे दीं. यह ड्य अदत्ता दान जानना; अर्थात् स्वरूप चौरा है वन्व चौरा नहीं

२ जावसें चौरा करता है ड्यसें नहीं.

विवेचनः—मनमें ऐसा विचारता है कि मैं अमुक राजाका या अमुक शेर साहूकारका खजाना तोकर बहुतसा ड्य चुरा लाऊँ या किसी जगह माका (Dacoity) माल कर बहुत सा धन लूँट लाऊँ इसादि सङ्कल्पविकल्प किया करता है किन्तु चौरा करनेका या माका मालनेका मौका प्राप्त नहीं होता है यह जाव अदत्ता दान जानना

३ ड्य और जाव दोनो प्रकारसे अदत्ता दान.

विवेचनः—परिणाम जी अदत्ता दानमे मग्न रहते है तथा माल जी लूँट लाता है यह दोनो प्रकारका अदत्ता दान सेवन करके आत्मा डर्गतिका जागी होता है

४ ड्य और जाव दोनो प्रकारसे चौरा नहीं करता है.

विवेचनः—यह शून्य जागा है:—अर्थात् श्रेष्ठ और आचरण करने योग्य है.

निश्चयसें—यह चेतन हूण १ मे जो कर्मोंकी वर्गणा तथा पंचेन्द्रिके

तेवीश विषय ग्रहण कर रहा है उन्हें परित्याग कर उत्तम साधनोका अनुसरण करे

चतुर्थ ब्रह्मचर्य महाव्रत.

मैथुन [व्यभिचार]सें सर्वथा पृथक् रहना उसें ब्रह्मचर्य महाव्रत कहते है

व्यवहारसें:—देवाङ्गना, स्त्री और तिर्यञ्चनी इन तीनों जातिसे मैथुन सेवन करे नहीं, सेवन करावे नहीं और सेवन करतेको अनुमोदे नहीं एवम् ए मनसे, वचनसें और कायासें एवम् ११ प्रकारसें सर्वथा कुशील परित्याग करे; अर्थात् मैथुन चतुष्कपसें जघन्यसें प्रथम जेद और उत्कृष्टसें चतुर्थ जेद ग्रहण करे शेष सर्वथा परित्याग करे

(मैथुनचतुष्क)

१ इयसें मैथुन करता है ज्ञावसें नहीं.

विवेचन:—जैसे जरत चक्रवर्ति रुद्र परिणामोंसें अपनी ६४००० स्त्रियोंको सेवन करते थे मगर रक्तता रहित थे। द्वितीय दृष्टान्त यह है कि किसी समय एक महान् पवित्र मुनिराज ग्रामानुग्राम विहार करते हुवे एक नदीके

(नोट)

दीर्घ विचारसे विमुक्त होकर भ्रम वश कितनेक लोग यह प्रश्न करते है कि स्पर्श मात्रसें मैथुनकह देना यह मिथ्या है कारणाकि ऐसे तो माता पुत्रके स्पर्शसे, पिता पुत्रीके स्पर्शसे, भाई बहिनके स्पर्शसे व्यभिचारका दोष मानना पडेगा और यदि ऐसा हों तो यह अन्याय है

उत्तर:—जो जन्व्यात्मन् ? यदि आपनें सूक्ष्म विचार किया होता तो ऐसा सामान्य प्रश्न कभी पैदा नहीं होता देखिये गृहस्याचार और भ्रमणाचारके अन्दर बहुत अन्तर है मुनिराज दूषित कार्योंके सर्वथा सागी है; दीक्षा लेनेके बाद साधु जन अपने स्वामता, बहिन और पुत्रीको स्पर्श नहीं करते है इसमें शील-रक्षाका ही कारण है विशेषेण किम.

तटपर आन पहुंचे देखते क्या है कि एक आर्या (साध्वी) जलमें डूबी जा रही है निगाह, गिरते ही यह विचार किया कि यदि मैं इसको निकालूँ तो शीघ्रत्वतके नियम विरुद्ध संघर्ष (स्पर्श-संघटा) दोषका जागी होता हूँ यदि न निकालता हूँ तो पञ्चेन्द्रिय जीवका निरर्थक घात होता है इसके जीवनसे हजारों जन्व्यात्माओंका उद्धार (Deliverance) होगा ऐसा समझ इव्यसे मैथुनका दोष न विचारता हुवा विरुद्ध जावोंसे शीघ्र ही हाथ पकड़कर बाहर निकाल दी

२ जावतें मैथुन करता है इव्यतें नहीं.

विवेचनः—दिलमे ऐसा विचारता है कि मैं इन्झाणीसैं या अमुक राजाकी रानी या अमुक युवा स्त्रीसैं विषयसुख सेवनकर अपना मनुष्य जव सफल करू मगर ऐसा छट प्रयोग करनेका मौका प्राप्त नहीं होता यह जाव मैथुन जानना

३ इव्य और जाव दोनो प्रकारसे मैथुन.

विवेचनः—मनोजाव जी व्यञ्जिचारमे संलग्न रहे और योग जी मिल जाय, यह दोनो प्रकारका कुशील नरकादि गतिका दाता होता है

४ इव्य और जाव दोनो प्रकारसैं मैथुन नहीं.

विवेचनः—यह शून्य जागा है; अर्थात् उत्तम और सेवन करने योग्य है

निश्चयसैंः—यह चेतन निज गुणकों परित्याग करता हुवा परपुत्रलमें रमणकर आनन्दित हो रहा है उससैं सर्वया पृथक् होकर अपने अनन्त ज्ञान, दर्शन और चारित्रमें तन्मय हो जाय

पंचम अपरिग्रह महाव्रत.

जोगोपजोगीय अशेष पदार्थोंसैं मूर्त्ता रहित होना उसैं अपरिग्रह महाव्रत कहते है

व्यवहारसे:—अल्प, विशेष, कनिष्ठ, जेष्ठ, सच्चि और अचित्त इन सब प्रकारके परिग्रहकों रखे नहीं, रखावे नहीं और रखतेको अनुपोदे नहीं एवं १० मनसों, वचनसों और कायासों एवम् एष प्रकारसें सर्वथा परिग्रह त्याग करे; अर्थात् परिग्रह चतुष्कमेंसें जघन्यसें प्रथम जेद और उत्कृष्टसें चतुर्थ जेद ग्रहण करे शेष जेद सर्वथा त्याग करे.

(परिग्रह चतुष्क)

१ डव्यसें परिग्रह है और ज्ञावसें नहीं.

विवेचन:—जैसे मुनिराजके पुस्तक पत्रादि ज्ञानोपगरण तथा जिनेश्वर देव और गुरु महाराजके चित्रादि दर्शनोपगरण एवम् वस्त्र, रजोहरण, (ओषा) पात्रादि चारित्रोपगरण होते है; किन्तु ममत्त्व रहित होनेसे डव्य परिग्रह जानना यानी स्वरूप परिग्रह है बन्व नहीं इसही प्रकार जगत चक्रवर्ति बगैराका उदाहरण जानना

२ ज्ञावसें परिग्रह है डव्यसें नहीं.

विवेचन:—जैसे कोई प्राणी विचार करके मुझे क्रोड रूपेकी प्राप्ति हो जाय, श्रेष्ठ साहुकारपन एवम् राजा महाराजा चक्रवर्तीदिका सिंहासन मिल जाय बहुतेसे पुत्र, पौत्र, नौकर, चाकर अथवा दिव्यप्रासाद एवम् हाथी, घोड़े, बग्गी सिगरामादि वाहनोकी प्राप्ति हो जाय जोगोपजोगके उत्तमोत्तम पंदार्थ सेवन करनेको मिले इसही प्रकार बहु मूल्य वस्त्राजूपण प्राप्त हों इसादि नाना प्रकारके परिग्रहोंका चिन्तवन करता है किन्तु प्राप्त नहीं होते यह ज्ञाव परिग्रह जानना अर्थात् बन्धनका हेतु है

३ डव्य और ज्ञाव दोनो प्रकारसें परिग्रह.

विवेचन:—दिलमें यह विचार करता है कि मुझे हाट, हवेली, जमीन, ज़ायदाद, पुत्र, कलत्र, कुटुम्ब, परिवार, वस्त्राजूपणादि प्राप्त हों और

इसही माफिक सर्व मनोरथ सफल हो जाँय यह दोनो प्रकारका परिग्रहका दाता जानना

४ ङ्घ्य और ज्ञाव दोनो प्रकारसे परिग्रह नहीं.

विवेचनः—यह शून्य ज्ञागा है; अर्थात् उत्तम और ग्रहण करने योग्य है

निश्चयसेः—यह चेतन राग, द्वेष, ज्ञानावर्णिय प्रमुख अष्टकर्मों में निमग्न हो रहा है उन्हे विध्वंसकर आत्मस्वरूपमें रमण करे.

यदि कोई प्राणी इन ज्ञातारक पंच महाव्रतोंको व्यवहार और निश्चय करके अखिल स्वरूपसे प्रतिपालन करे तो निम्न लिखित पञ्च दिव्य प्राप्त होते है

प्रथम महाव्रतके पालन करनेसे दृष्टिगोचर जीव आपुसमे वैर ज्ञाव नहीं ले सकते; अर्थात् लम्बाइ उगमा और माण रहित नहीं कर सकते है यह अलौकिक प्रथम सिद्धि जानना

२ दूसरे महाव्रतके पालन करनेसे वचन सिद्धि हो जाती है; अर्थात् किसीको यह कह दे कि तेरा यह कार्य अमुक दिन सफल हो जायगा वह अवश्य ही हो जाता है, यह द्वितीयालौकिक सिद्धि जानना

३ तृतीय महाव्रतके पालन करनेसे जिस २ स्थल पर चरण रखें उस २ स्थानपर नवनिधान प्रकट होते हैं नीतिकारका कथन है "निस्पृहे निधानानि" यह हेतु अनुभव सिद्ध है यह अलौकिक तृतीयासिद्धि जानना

४ चौथे महाव्रतके पालन करनेसे अनन्त वीर्य प्राप्त होता है; इसहीसे कर्मोंका विध्वंसकर प्राणि अचिरात् मोक्षपदकों प्राप्त होता है यह अलौकिक चतुर्थी सिद्धि जानना

५ पञ्चम महाव्रतके पालनेसे जब ज्ञमण नष्ट हो जाता है वस्तु संसर्गसे ज्ञवदृष्टि होती है और इस महाव्रतसे दिनत्रदिन वस्तु संसर्ग निरुन्दन होता जाता है, यह अलौकिक पञ्चम सिद्धि जानना

इन कर्मध्वंसक महान् पवित्र पञ्चमहाव्रतोंका जघन्यसे रक्षिया सदृश और उत्कृष्टसे रोहिणी सदृश शुद्धाचरण करना चाहिये. महानुजावों ! अब-सरकों पाकर एक दृष्टान्त लिख दिखाता हूँ.

(पञ्च महावृत्तोंपर दृष्टान्त)

किसी एक अनुपम शहरमें धन्नासार्थवाह नामक एक श्रेष्ठ निवास करता था उसके उत्तमशील नामक एक सुपुत्र था इसके उत्तम कुल धारका ध स्त्रिये थी नोकर, चाकर, हाट, हवेली और लक्ष्मीकरके पूरित था जोगोपजोग पदार्थोंका आनन्द लूटता हुआ मुखपूर्वक अपना काल निर्गमन करता था

एक दिन वह श्रेष्ठ ब्रह्म मुहूर्त्तके अन्दर उठकर यह विचार करने लगा कि देखें मैं अपने लक्ष्मीकी चारों चार्याओंकी परीक्षा करूँ कि गृह कार्य कौन उत्तम रीतसे चला सकती है, प्रातःकाल होतेही अपनी निख क्रियासे निवृत्त होकर अपने मुनीम तथा गुमास्ताओंको यह आज्ञा दी कि जिस १ स्थलपर अपने रिस्तहदार निवास करते हैं उस १ जगह यह सूचना दी कि यहापर एक महत् उत्सव होनेवाला है इसलिये कृपयाशीघ्र ही पधारकर इस जलशेकों सुशोभित कीजिये गा

श्रेष्ठकी आज्ञानुसार दिन मुक़र्रर करके सर्व स्थानपर प्रार्थनापत्र जेज दिये नियमित दिनपर सर्व सज्जन लोक एकत्रित हुवे उसही समय श्रेष्ठने अपने पुत्रकी चारों स्त्रियोंको उस जलसेमें निमन्त्रित की उन्होने महत् विनयसे अपने श्वसुरके चरणोंमें प्रवेश किया, अर्थात् उस जलशेमें हाजिर हुई

श्रेष्ठने सर्व महिमानो (प्राहुणों)का यथोचित सन्मान किया तत्पश्चात् इन चारों स्त्रियोंको सर्वके समक्ष पाच १ शालिके दाने दिये और यह कहाकि जिस वरुत्त मैं चापिस मागुं उस वरुत्त यही पाच दाने मुझे अर्पण करना तत्पश्चात् वह जलसा विसर्जन हुआ. उन चारों स्त्रियोंने मकान पहुंचकर पृथक् १ १ इस प्रकार विचार किया:—

१ प्रथमा स्त्रीने यह विचारा कि उसके अन्दर मनोमन्द शाली रक्ती हुई है जिस वस्तु सुसराजी कहेंगे उस ही वस्तु इसमें पाच दाने लेकर अर्पण करडंगी, उन्हें सम्झालकर रखनेसे क्या प्रयोजन है यह सोच बाहर उकरने पर फैक दिये

२ द्वितीया स्त्रीने यह विचारा कि सुसराजीने अनुग्रहपूर्वक यह उत्तम वस्तु दी है इसे मैं जहण कर लूं तो मुझे बहुत ही लाभ होगा यह विचार वे शालिके दाने जहण कर गई

तृतीया स्त्रीने यह विचारा कि सुसराजीकी अहङ्गा. प्राज्ञा पाटना मेरा मुख्य कर्त्तव्य है इसके बराबर कोइ उत्कृष्ट धर्म नहीं जेन सिद्धान्तोमें यह प्रसिद्ध है विज्ञान, दर्शन और चारित्र एतम् तिनय, पैयायच्च और तपश्चर्या इत्यादि उत्तमोत्तम सर्व धर्म आज्ञामे ही समावेश है; यही जिनायमका सार है ऐसा दीर्घ विचार करवेशालीके दाने अपने रत्नोंकी पेटोमे रख दिये

४ चतुर्थी स्त्रीने यह विचारा कि सुसराजीने यह दाने कोइ गुन मुहूर्त्तमे दिये है इसलिये मेरा यह धर्म है कि उन्हें वृद्धि रूपमें आपिस अर्पण करू जेसे पुत्रको इव्य देता है और यह व्यापारादि प्रयोगोंमें इव्यको बढ़ाता है इसही प्रकार मेरा त्री कर्त्तव्य है यह सोच वे पाचों दाने अपने चाईके पास जेज दिये और यह लिख दिया कि इनका कृपी व्यापार करके हर सात कमशः बढ़ाते रहना इसमें जितना खर्च होगा उतना मे अर्पण कर दूगी इस प्रकार चारों स्त्रियोंने अपनी २ मति अनुसार काररवाई की

कितनेक वर्ष व्यतीत होने पर शेरको एकवार स्मरण हुआ कि मैंने जो परीक्षा की है उसका क्या नतीजा हुआ उसे प्रसङ्ग अनुभव करना चाहिये यह विचार पूर्वानुसार सर्व रिस्तहदारोंको एकत्रित किये और उसही प्रकार उन चारों स्त्रियोंको अपनी दी हुई वस्तुको लेकर दाजिर होनेकी निमन्त्रण की

प्रथमा स्त्री अपने कोठार (धान्यगृह) मेंसे पाचे दाने लेकर राना हुई, द्वितीयाने त्री इसही प्रकार किया, तृतीयाने अपने जवाहिरातका डिव्या लेकर प्रस्थान किया, चतुर्थाने कितनेक दिन प्रथमसे ही अपने पाच दानेकी परपरा

नुगत पैदानारीके पाचसौ शालिकी गाम्भिये मंगवा रक्की थीं और यह हुकम दे दियाया कि अमुक दिनकी अमुरुक टाड्म पर अमुक स्थान पर हाजिर हो जाना; इस प्रकार सर्व स्त्रियें अपनी १ तैयारी कर मुसराजीके चरणसरोजमें प्रवेश हुईं

शेठजीने उन चारों स्त्रियोंको यह आझा दी कि वेशालीके दाने वापिस अर्पण करो; आझा पातेही वे चारों क्रमशः प्रवृत्त हुईं

प्रथमा स्त्रीने जब वेशालीके दाने अर्पण किये तब शेठजीने कहा कि ये वे खास दाने नहीं है कि किन्तु अन्य है? सच्च वतलाउ! वे कहा गये? इसही प्रकार द्वितीया स्त्रीका जी सम्बन्ध जानना उन्होंने अपनी १ कारवाई प्रकट रूपसे निवेदन कर दी

तृतीया स्त्रीने जवाहिरातके मिन्वेमे सें वे दाने निकाल कर नजर (जेट) किये और अपना पूर्व कृत विचार निवेदन किया, सुनते ही शेठजी प्रसन्न हुवे चतुर्थ्या स्त्रीने वेशाली की पाचसे गाडियें समर्पण की और अपना पूर्व कृत सर्व प्रकट किया यह सुन शेठजी अगाव प्रसन्न हुवे और उसही समय इन चारों स्त्रियोंको पृथक् पृथक् पदसे नियुक्त की

प्रथमा स्त्रीको फूस (काजा) निकालने का काम सिपुर्द किया और यह कहा कि तूने जैसे शालीके दानेकी परवाह नहीं की इस प्रकार इन्व्य को जी बरवाद कर देगी इस लिये तुजे यही कार्य योग्य है यह कहकर "उज्जिया" नाम बह्नीस किया

द्वितीया स्त्रीको जोजन बनानेका कार्य बह्नीस किया और यह कहा कि जैसे तूने शालीके दाने जड़ण कर लिये तेसे हीं हरेक चीज खानेमे तेरी अधिक प्रीति है इसलिये तुजे जोजन बनानेका तथा प्राहुणे आदि जिमानेका कार्य सोंपा जाता है यह कहकर "जरकिया" नाम प्रदान किया

तृतीया स्त्रीको जंमारका कार्य सिपुर्द किया और यह आझा दी कि जिस

प्रकार होने शालीके दाने सजाल कर रके थे उसही प्रकार घरकी सर्व वस्तुओं सावधानीसे रखना यह कहकर "रक्षिया" ऐसा नाम बह्नीस किया

चतुर्था स्त्रीको स्वामिनी पद बह्नीस किया और अति प्रसन्न होकर यह कहा कि तू बड़ी बुद्धिमती है, लघु वयमें इतने चातुर्य और साहसिकादिगुणों से अलङ्कृत है इसलिये गृह सवधि सर्व कार्य तेरे सिपुर्द किये जाते है तेरी आङ्काके भगैर कोई कार्य नही हो सकेगा इत्यादि कहकर "रोहिणी" ऐसा नाम प्रदान किया

कहनेका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार रोहिणीने शालीकी वृद्धि की इस ही प्रकार मुनिराजको पञ्च महाव्रत उज्वल रूपसे पालन करनेमें कटिबद्ध होना चाहिये कदाचित् वृद्धि करनेकी सामर्थ्य न हो ता मूलकी अवश्य ही रक्षा करना चाहिये इस प्रकार संयमका प्राप्त होना अति डफ्कर है; यदि संयम प्राप्त हो गया और वीर्य (शक्ति) मकट न हुवा तो जी ययेष्टा प्राप्त नही हो सकती कारण की वीर्यका पाना जी अति डर्लज है देखिये:—

॥ प्रार्थनारूप उपदेश ॥

कई महानुजाय श्रमण पद प्राप्त होनेके पश्चात् सामर्थ्य होनेपर जी विनय, वैयावच्च, तप, जप, ध्यान, पठनपाठनादि क्रियाओंमें अपनी शक्तिका यथोचित उपयोग नही करते है वे आराम तलमी लोग शारीरिक मुखमें निमग्न हो कर सदाचारोंसे पतित हो जाते है यहा तककि आपसुदका जी अन्य पर निर्भर रहता है वे महानुजाय इतना जी नही सोच सकते कि पंकी आशा अवश्य धोका देनेवाली है सङ्गनो / किसी ज्ञानी गुरुने ठीक कहा है:—

(गाथा)

परकी आशा नदा निराशा । ये जग जनका फाँसा ॥

य काटनकाकरो अज्यासा । लहो सदा सुखवासा ॥ आप स्वजावा ॥१॥

सज्जन शुभ्रेडकों ! ये कायर लोग अपने शिष्यसमुदायमें ग्रस्त होकर सूरवीरतासे विमुख हो जाते हैं, जो महानुभाव अपने जुजा बलसे 'सर्व कार्य करते हैं अथवा करनेकों समर्थ है वे ज्ञव्यात्मा अपनी यथेष्टाकों प्राप्त कर सकते हैं

दीक्षा लेनेके समय बुद्धि जन यह विचार करते हैं कि अपने समस्त कार्य के अतिरिक्त गुरु महाराज तथा अन्य रत्नादि मुनिवरोंकी सेवा करना हमारा मुख्य धर्म होगा इस ज्ञ और परज्ञवमें सच्चा साहाय्यकारी हमारे जुजा बलमें क्रिये हुवे कार्य ही हो सकेंगे अन्य सर्वाश्रय व्यावहारिक लहरोंमें वह जाँयगे इस प्रकार उत्तम विचारोंसे जो ज्ञव्यात्मा निर्मल चारित्रको ग्रहण करता है वह सूरवीरता पूर्णक इम रिपम ससारमें विजयका रुंढ्ठा वजा मकता है अपनी आत्मा और परमात्माका उद्धार करनेको समर्थ हो सकता है किन्तु ऐसा शुभ कर्म उदय आना अति दुर्लभ है इस प्रकार धर्म देशना होनेके बाद जय १ शब्दोंमें दशों दिशाओं पूरित की गई

ये महानुभाव कितनेक दिन तक इस शहरमें ठहरे और धर्मकी अत्युन्नतिकी चातुर्मास संपूर्ण होनेके पश्चात् ग्रामानुग्राम विहार करते हुवे मरुस्थल देशके सुप्रसिद्ध शहर योधपुरमें प्रवेश किया वहापर आत्म कल्याण तथा ज्ञव्यात्माओंका उद्धार करते हुये सानन्द निवास करते रहै

॥ चारित्र रक्षा तथा ज्ञव्योपकार ॥

इम स्थलपर कितनेक दिन निवास करनेके बाद ग्रामानु ग्राम विहार करके ज्ञव्यात्माओंका उद्धार करते रहै इपम कालके महात्म्यसे उष्ट कर्मोंने गुरुवर्ग्य श्री राजसागरजी, रुद्धिसागरजीको आनघेरा जिससे आपको चारित्रसे शिथिल होना पड़ा* इस अवस्थाको देख परम वैरागी पूज्यपाद श्रीमान् सुख-

* ॥ विधिरहो बलवानितिमेमतिः ॥

अहाहा ! कर्मकी गति विचित्र हैं इमने बडे २ नीयंकर, गणधर और महानाचार्य एवम् चक्रवर्ति, वासुदेव प्रनिकासुदेव और बलदेव तथा उदे २ राजा महाराजा और शैठ माहकारोंको अपनी फौममें दवा लिय

सागरजी महाराजकी तवियत उन लोगोंसे दिन वदिन हठती रही अन्तमें अपकों निर्मल चारित्रकी रक्षा करनेके हेतुसिरोही (गोमवाह) राज्यमें वीर संवत् ३३७७ विक्रम संवत् १९१७ में पृथक् हो ना पना इस समय मुनिराजश्री पद्मसागरजी और गुणवन्तसागरजी आप महानुजाव के सहचारी हुवे

मर्वङ्ग जक्तों ! आपको यह ज्ञात हो गया होगा कि यह महानुजाव कैसी निर्मल बुद्धिको धारण करनेवाले तथा किस प्रकार उत्तम चारित्र पालन करने वाले थे; मैं इस बातको दावेके साथ कह सकता हूँ कि जिन जन्वात्माओंने इन जब तारकके दर्शन किये है उन्होने अपनी पवित्र जिह्वा द्वारा मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की है तथा करते हैं धन्य हो, मुनि रत्न हों तो ऐसे ही हों

आप महानुजावने अपने निर्मल चारित्रकी आराधना करते हुवे उपरोक्त दोनो मुनिराजोंके साथ सिंहके सदृश मारवाम्, मेवारु, गुजरात, काठियावाम्,

आपकों यह बखूबी रोशन होगा कि इस ही दुष्टने कइ एक श्रुतकेवलियों (चतुर्विंश पूर्वधारी) कों नरक निगोटमें पकड़गे रे क्या यह कम आश्चर्य है ? इमही प्रकार बडे २ योगीश्वर, यानी महात्मा और ऋषीश्वरोंको चतुराष्ट लक्ष जीवा योनीके सन्मुख कर दिये सज्जनो ! क्रोडो उपाय क्यों न किये जँय किन्तु निद्वत और निकाचित बगैर भोगे हरागेन नहीं छूट सकते देखिये किसी ज्ञानी महात्माका कथन है —

(श्लोक)

कृतः कर्मद्वयोनास्ति । कल्पकोटी शतैरपि ।

अवश्य मेव जोगतव्य । कृतः कर्म शुजाशुजम् ॥ १ ॥

जावार्थः—कोटाऽनुकोटी कल्प पर्यन्त क्यों न उपाय किया जाय किन्तु बधन क्रिया हुवा कर्म कदापि नष्ट नहीं हो सकता, शुभाशुभ जो कुछ कि कर्म बधन कर चुके है उसे अवश्य ही भोगना पडेगा यह निर्विवाद विषय है

आपकों उपरोक्त व्याख्यासे यह विज्ञात हो गया होगा कि दुर्जय कर्मराज किना बलीष्ट है बस इसहीके प्रचण्ड प्रकोपसे आपको भी गस (मूर्छा) खाना पडा.

कञ्जादि देशोंमें विचरकर सराहनीय धर्मोच्चार किया एवम् परम पवित्रश्री शत्रु-
जय तीर्थराजकी जियारत (यात्रा) कर अपना मानव जव सफल किया तत्प-
श्चात् ग्रामानुग्राम विहाहकर क्रमशः फलवर्धि (फलोदी) जिला योधपुर-मरु-
स्थलमें पदार्पण किया वहाके श्री संघपर अगाध उपगार कर कृतकृत्य किये;
जहा तक मेरा खयाल है मैं कह सकता हू कि सबसे अधिक उपगार आपका इस
ही क्षेत्रमें हुआ है मगर तदपि कितनेक कृतघ्न लोग आपके उपगारकों विस्मृत
हो रहे है तथा बहुतसे महानुजाव उनके पवित्र नामको वारंवार स्मरण कर
अपनी आत्माका कल्याण करते है गत वर्षमे मैंने जी उस स्थलपर चातुर्मास
किया है मैं अपने अनुभवसे कह सकता हूं कि कइएक जन्वात्मा उनके नाम
कों छुरते हुवे अपनी अलौकिक जक्तिका दृश्य दिखलाते थे

इधरसे रूपश्रीजीकी शिष्या उद्योतश्रीजी अपने अखण्ड चारित्र्य प्रति-
पालनके हेतु अपनी शिथिल संप्रदायसे पृथक् होकर वीर संवत् १३६१ विक्रम
संवत् १९११ में फलोदी आयें और पूज्यपाद गुरुवर्य श्रीमान् सुखसागरजी
महाराज से वासङ्केप लेकर अपना जन्मपवित्र किया; यद्यपिराजसागरजी महा-
राजकों गुरु मान चुके थे तदपि उनसे पृथक् होनेसे तथा उन्हकी शिथिलाव-
स्था ममस्वरु तरणतारण गुरु इनही महानुजावोंको माने इसही लिये पुनरपि
शुद्ध वा सङ्केप ग्रहण किया

पूज्यपाद गुरुवर्यने तीन वर्षोंके बाद यानी वीर संवत् १३६४ विक्रम संवत्
१९१४ में जगवन्दासकों दीक्षा देकर अपने निज शिष्य वनाये नाम जगवान्
सागरजी रखवा गया उधर उद्योतश्रीजीने दो वर्ष रहनेके बाद वीर संवत्
१३६३ विक्रम संवत् १९१४ में श्राविका लक्ष्मीबाईकों दीक्षा देकर अपनी निज
शिष्या वनाई नाम लक्ष्मीश्रीजी रखवा गया उस वख्त इस समुदायमें केवल
तीन मुनिराज व तीन साध्वियोंजी निवास करते थे

(नोट)

गुरुवर्यके फलोदी पदार्पणके पहिले ही पद्मसागरजी पृथक् हो गए थे तथा वीरानेर
निवासिनी आप साहबकी हस्त दीक्षिता धनश्रीजी उद्योश्रीजीसे मिल गए लिहाजान मुनि-
राजवन साधियोंजी विद्यमान थे

उमड़ी समयसे श्रीमान् "सुखसागरजी महाराजके नामसे सिंघाम्ना" मशहूर हुवा उसके पेस्तर श्रीमान् कृमाकल्याणकजीणी महाराजका सिंघाम्ना इस नामसे जाहिरिया बीचमें कितनेक लोग राजसागरजी महाराजका जी सिंघाम्ना कहा करते थे मगर जबसे यह महानुजाव सिधिलावस्थाको पहुचे और जवतारक पूज्य गुरुवर्य श्रीमान् सुखसागरजी महाराजने पृथक् होकर अपना व गुणवन्तसागरजी वगेराका एवम् उग्रोतश्रीजी आदिका उधार किया तबसे कृमाकल्याणजी महाराजके नामसे वासङ्केपनाला जाता है और सुखसागरजी महाराजके नामसे सिंघाम्ना कहा जाता है

अहाहा ! वन्य हो ऐमे नररत्नकों कि जिसने झूबती हुई जहाजको तिरा दी मै इस बातको प्रकट रूपमें कह सकता हू कि हमारे समुदायमें इनके बराबर अतक इस प्रकार कोई अनुल उपगारी नहीं हुवा नहीं ! नहीं ! ! इतनाही नहीं ! ! ! किन्तु सर्व जैन सप्रदायमें निकट वसोंमें आसपास इन महानुजावके तुल्य इस प्रकार अवर्णाय उपगार करनेवाला नहीं हुवा होगा यद्यपि उपगारी कइएक प्रकारके होते है मगर तदपि अवसर उपगारी तबसे बना होता है और आप महानुजावने इसही वृद्धत् उपगारको किया है

मोहा! जिलापियों! आपके अन्दर ऐसे ही अलौकिक गुण जरे हुवे थे कि जिसका पार पाना मुश्किल है आप अपनी आत्माकों सुखरूपी सागरमें निमग्न करते हुवे अनेक जन्म जीवोंको सुखी करते थे देखिये:—

॥ यथा नामस्तथा गुणाः ॥

सुखयतिजनान्तत् सुखं-सुखानासागरः इति सुखसागरः इस पद्यीतत्पुरुष समामसे आपको विदित हो गया होगा कि वे महानुजाव कैसे गुण करके सुशोभित थे, सुख एक ऐसी चीज है कि जिसमें सर्वोत्तम पदार्थोंका समावेश हो जाता है

सकल पाठकवरों ! सपूर्ण नामके अंदर गुण होना कुछ आश्चर्य नहीं है किन्तु आपका एक २ अक्षर अगण्य दिव्य गुणोंसे इस प्रकार जरा हुवा है

कि जिसका लिखना हमारी लेखनीसे बाहिर रहै तदपि अपनी अल्प बुद्ध्या-
नुसार किञ्चित् लिख दिखाते हैः--

॥ गुरु ज्ञक्तिपर दोहरे ॥

सुखसागर गुरुरायके ॥ गुण गाजं चित लाय ॥
अक्षर अक्षरके प्रति ॥ बहु गुण रह्या समाय ॥ १ ॥

सुः- सुमति सदा गुरु चितवसे ॥ कुमति जगे अति दूर ॥
त्रिकरण शुद्धि करते ॥ दिव्य ज्ञान ज्ञरपूर ॥ १ ॥

खः- खलके मित्र गुरुथे सदा ॥ करुणारस जंकार ॥
पर नपगारमें मग्नथे ॥ दर्शन निर्मल धार ॥ २ ॥

साः- सायरसम गंज्नीर गुरु ॥ चारित्र रत्न जंकार ॥
ब्रह्मचर्य गुरु धारते ॥ महिमा अपरंपार ॥ ३ ॥

गः- गगनसमा गुरु निर्मला ॥ रवि सम तेज प्रताप ॥
शशिसमान श्री सौम्यता ॥ मणि सम शोभे आप ॥४॥

रः- रहस्य रङ्गमे जीलते ॥ आत्मध्यानमें लीन ॥
कर्म वृन्दोंको तोरते ॥ होके मोक्षाधीन ॥ ५ ॥

जीः- जीवाजीव विचारमें ॥ निपुण रहे गुरु राज ॥
पट् डव्यमें लीनथे ॥ बुद्धिवन्त महाराज ॥ ६ ॥

मः- महा डष्ट रिपु कामकों ॥ विनमे दिया हटाय ॥
रतिकी मती विगारु दी ॥ सूरवीर महाराय ॥ ७ ॥

हा:- हानीकारक कार्यकों ॥ नष्ट किये तत्काल ॥
दूर हटाया डुष्टकों ॥ मोह महा विकराल ॥ ८ ॥

रा - रागरहित वैराग्यमें ॥ रमण कियाथा नाथ ॥
मनवच काया दमन करी ॥ सुमति सखीके साथ ॥ ९ ॥

ज.- जस कीर्ति गुरु राजकी ॥ सकल विश्व विख्यात ॥
बाल शिष्य आनन्दकों ॥ दर्शन दो साक्षात् ॥ १० ॥

आप वेही महानुभाव है कि जो बृहत्खरतर गङ्गाधिपति महा महोपा-
ध्याय श्रीमान् कृमाकल्याणकजी महाराजके पंचम पद (पीढ़ी) पर होते हैं
जिसका कि किञ्चित् विवरण ग्रन्थके अन्तिम भागमें लिखेंगे

मैं इस बातकों अति खेदके साथ प्रकट करता हू कि आप महानुभावका
फोटो (तसवीर-तवी-चित्र) मौजूद नहीं है वरना हम अपने दयासे नेत्रोंको
तृप्त कर अपनी आत्म विभूति करते मगर सच है ! जाग्य हीनोंको ऐसे सत्पु-
रुषोंके दर्शनोका सौजाग्य कैसे प्राप्त हो सकता है सज्जनों ! इस अवसरमें उनकी
सौम्य मूर्तिको भ्यानमें लानेके लिये आपके शान्त स्वरूपके किननेक चिन्ह
लिख दिखाता हूँ--

॥ शान्तमुद्रा ॥

आप महानुभाव गन्धूमीरङ्ग, गोल चहरा और मज्जोलेकदसें तथा माध्य-
स्थ शारीरिक स्थिति करके मुशोजित थे; एवम् ललाटाकृति अतुला पुण्याईसें
जलकती हुई अपनी अजीव शोभाकों प्रकट करती थी; शान्त रससे जरी हुई
आपके मुखकमलकी ठीकी भव्य जनोंके चित्तोंको मोहित करती थी आपके
दर्शनोका यहां तक प्रभाव था कि जो प्राणी एक वस्तु कर लेता था वह वहांसे
अलग होनेकी इच्छा ही नहीं करता कहां तक कहा जाय आपके अर्वाण्य
गुण अपरम्पार है

॥ अपूर्व गुणोंका दिग्दर्शन ॥

सुझ जनो ! आपने ३६ वर्ष पर्यन्त अखण्ड चारित्र्य पालन कर शासनकी सेवा की इस अवसरमें आप महोदधिने अनेकानेक उत्तम कार्य किये जिसकी कि व्याख्या हमारी बुद्धिसे बहार है तदपि यत्किञ्चित् उद्धृत कर पाठकोंकी सेवामें लिख दिखाते हैं:—

(सम्यग् ज्ञानकी महिमा,)

(श्लोक)

यथाऽवस्थित तत्वाना । संक्षेपादि विस्मरेणवा ॥
योऽवबोधस्तमत्राहुः । सम्यग्ज्ञान मनोपिणः ॥ १ ॥

जावार्थः—सक्षेपसे या विस्तार पूर्वक तत्वोंका यथार्थ बोध होना उसमें विद्वान् लोग सम्यग् ज्ञान कहते हैं

विवेचनः—यद्यपि ज्ञान शब्दका अर्थ जानना मात्र होता है तदपि सामान्य जानने और तात्त्विक जाननेमें जमीन आसमानका अन्तर है यह प्रकटत विख्यात है—जहाँ तक प्राणी तात्त्विक विषयोंसे वञ्चित है वहाँ तक आत्माका उद्धार हरगिज नहीं हो सकता इस ही लिये तात्त्विक बोधके यथार्थ जानपनेको सम्यग् ज्ञान कहते हैं

आप महानुभाव ज्ञानके ऐसे उत्तम रसिक थे कि प्रायः हमेशा सूत्र सिद्धान्त अवलोकन किया करते थे और उनके क्लिष्ट विषयोंको मनन कर अपनी आत्माको ज्ञान रसमें मग्न किया करते थे निर्मल ज्ञानके यहातक उत्सुक थे कि यदि कोई विषय समझमें नहीं आता तो इतना अगाध प्रयत्न करते कि जो प्रायः अवश्य सफलीज्जुत होता, देखिये:—

(दिव्य पुरुषार्थ.)

एक दिनका जिक्र है कि आप पञ्चमाङ्ग “ श्री जगवती सूत्र ” पढ़ रहे थे उसमें गाङ्गेय मुनिके क्लिष्ट जांगे समझमें नहीं आये तब आपने फलो-

धीमें रहे हुवे यतिवर्य रावत सुन्दरजी (जो कि आपके गाढ़ परिचित थे) को दरियाफत् किया किन्तु बहुत प्रयत्न करने पर जी-उत्त समय उन्हें ययार्थ समझमें नहीं आ सके इस अवस्थाको देख गुरुवर्यको गहरी चिन्तामें निसग्न होना पडा तदपि प्रयत्नसे पराञ्छुख नहीं हुवे सच है ! उत्तम जनोका यही धर्म है देखिये नीतिकारने ठीक कहा है:—

(श्लोक)

प्रारज्यतेन खलुविघ्नज्ञयेन नीचैः ।

प्रारज्य विघ्नविदता विरमतिमध्या ॥

विघ्नैपुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः ।

प्रारज्य मुत्तमजना. न परित्यजन्ति ॥१॥

जावार्थः—अधम पुरुष विघ्नके जमसें कोईकार्य आरंज नहीं करते तथा मध्यम पुरुष आरंज करने पर यदि कोई विघ्न उपस्थित हो तो उसे परित्याग कर देते है; किन्तु उत्तम पुरुष आरंज करनेके बाद वार ५ उपमर्गसें छुःखित होने पर जी कजी नहीं ठोमते

अब आपको रातदिन इस विषय कि चिन्ता होने लगी अखीर कितनेक दिनके पश्चात् एक दिन आप शान्तता पूर्वक धर्मशालामें विराजमान थे उस समय अचानक उन क्लिष्ट जागोंकी श्रेणी आपके खयालमें प्राप्त हो गई फिर क्या पृष्ठिये चिन्ता देवीने प्रस्थान किया आप आनन्द रसमें जीलने लग गये उसही वख्त उपरोक्त यतिवर्यको बुलाकर अपने विचार प्रकृत किये आपके भयोगके पहिले ही यतिवर्यको कुछ ५ समयमें आ चुके थे किन्तु इस अवसरमें दोनोकी एक सम्माने दोरु विजयको प्राप्त हुवे कहनेका तात्पर्य यही है कि आप तत्वज्ञानमें असाधारण मयत्रशील पुरुष थे सङ्गो आपने इस उत्तम अनुज्ञमसें जन्म जीवोंके उपगारके हेतु अनेक योत्सवालादि सिद्धान्तोंमेंसे उद्धृत किये देखिये:—

पञ्चवणा सूत्रके प्रथम पदसे जीवाजीव राशीका विस्तार उद्धृत किया जो कि “श्रो ज्ञानवर्धक जैन मित्र मण्डल” सैलाना-मालवाकी तर्फसे “जीवाजीव राशि प्रकाश” नामक ग्रन्थ वीर संवत् १४३७ विक्रम संवत् १८६७ ईस्वीसन् १९१० में प्रकाशित हो चुका है जापाके कल्पसूत्रमे नवकार वगेराकी कथाओंका समावेश कर सरस ग्रन्थ बनाया मुनिराजोंके लाजकारी अनेक सूत्रोंसे उद्धृतकर १०८ बोलोंकी रचना की ६१ मार्गणाओंका जीवोंके ५६३ जेदोंके साथ वासठिया यन्त्र एवम् गुणस्थान, गत्यागति, समुच्चय, मूल हेतु, अल्प बहुत्व इत्यादि बहुतसे यन्त्रोंकी रचना की एवम् अनेक दशक, अष्टक, सतक इत्यादि नाना प्रकारके गहन बोलाचालादि उद्धृत किये इतना ही नहीं किन्तु ज्ञव्यात्माओंके आप यहा तक हितेन्तु ये कि शास्त्रमें अति आवश्यकीय पदार्थ जो देखते उनका शीघ्र ही नोट कर लेते थे आपके हस्त-लिखित कई एक ठोटे १ अमूल्य परचे इस बख्त जी दृष्टिगोचर होते है मै कह सकुना हू कि आपके समुदायमें रहे हुवे कई एक साधु बहुतसे गहन बोलचा-लादिसें परिचित है यह आप महानुजावका ही विशाल प्रजाव है कहीं तक कहा जाय इस विषयमें आपका अकथनीय उपगार श्लाघनीय है

(पाठन शैली)

आप महानुजाव ज्ञव्यात्माको पढानेके अन्दर जी अगाध प्रयत्न करते थे, इस समुदायमें रहे हुवे कितनेक साधु, साध्वी जो कि आपके पढ़ाए हुवे है जैन शासनका निम्न विजय कर रहे है; तथा कई एक श्रावक, श्राविकाओंको उत्तम धर्म शिक्षा प्रदान की आप हरएक चीजको समझानेके वास्ते असाधारण प्रयत्न करते थे, यदि किसीको एकवार कहनेसे समझमें नही आता तो दो बार, चार बार, दश बार समझाते किन्तु दिल पर कच्ची ग्लानी नहीं लाते थे जिन १ महानुजावोंने आपके चरणों की सेवा की है वे वेशक किसी कदर तत्त्वज्ञानसे परिचित हुवे हैं; आपकी पाठन शैली जगज्जनको मोहित करती थी हरएक चीज इस क्रमसे पढाते थे कि बहुत दिन आवृत्ति न करने पर जी यकायक मनोमन्दिरसे पृथक् नही हो सकती थी आप अनेक ज्ञव्यात्माओंको

उत्तम ज्ञान देकर रत्नचिन्तामणि अपने मानव जवको सफल कर गये कहां तक कहा जाय आपका असाधारण उपगार जगत प्रशंनीय है

(अमृत रसका आस्वादन)

आप जिस वख्त व्याख्यान देते थे उस वख्त वचनामृतसें श्रोतागणोंके चित्तोंमें ऐसा ज्ञान पड़ता था कि मानो साक्षात् बृहस्पति ही व्याख्यान देते हों; जिस वख्त आदिमें नमस्कार मन्त्रका उच्चारण करते थे उस वख्त सिंहरूप नादसें व्याख्यानगृहगूंज उठता था और समस्त श्रोता जन शान्तरसमें निमग्न हो जाते थे गाथा या श्लोक इस प्रकार स्पष्ट फरमाते थे कि साधारण पुरुषको जी बहुतसा अर्थ प्रतीत हो जाता था आप जिस वख्त किसी विषयकी व्याख्या फरमाते उसे ऐसे अपूर्व सरस शब्दोंकी लतामें ग्रथित करते थे कि श्रोता जन एकाग्र चित्त होकर श्रवण करते; तथा अपनी अनिमेप दृष्टिसे गुरुवर्य के मुखकमलको अवलोकन करते थे आपका सुस्वर नामक कर्म अपनी अपूर्व शोभाको प्रकाशित करता था व्याख्यानमें प्रायः विशेषतः वैराग्यरस, शान्तरस और करुणारस अपनी अजीब शोभाका अलौकिक दृश्य दिखलाते थे; शेष रस जी आवश्यकता पर अपनी योग्य स्थिति प्रदर्शित करते थे आपकी अमृतमय देशनासें जव्यात्माओंके हृदय कमल इस प्रकार प्रफुल्लित हो जाते थे कि जैसे सूर्यके दिव्य प्रकाशसें कपल विकशित हो जाते हैं आपकी अमृतमय देशनाका पान कर जव्यात्मा आनन्द समुद्रमें गोता लगाने लग जाते थे; कहा तरु कहा जाय आपकी व्याख्यान शैली जगज्जन प्रिय थी

आप महानुभाव निर्मल ज्ञानकी उत्तम उपासना कर उष्ट ज्ञानावर्णाय कर्मकों निरुन्दन करते थे और ज्ञानी पुरुषके प्रति बने ही पूज्यभावसे अरलोकन कर उत्तम सत्कार करते थे, कोई जी माणी शत्रुता या ईर्ष्या वश होकर यदि किसी ज्ञानी पुरुषको निन्दा करते तो वे शूल शदश शद आपको असंग डखसें दग्धन करते थे सच है ! उत्तम पुरुषोंका ऐसा ही स्वभाव होता है

सज्जनो ! ज्ञान बराबर जगत्रयमें कोई पदार्थ नहीं है ज्ञान कहां चाहे विद्या कहां एक ही अर्थ होता है जेमें धनको पाकर माणी खानपानादिके

(५४)

सुखोंमें आनंदित होता है तैसे ही इस विद्याका विषय समझ लेना मगर इतना अवश्य अन्तर है कि धनवाला तो इस ही जवमे साधारण सुखोंको प्राप्त करता है, जिसमें जी अनेक मुसीबतें उपस्थित रहती हैं; मगर ज्ञानवानकी तो विचित्र ही लीला है यह धन जोवन जितना है सब विद्या रत्नके बगैर निस्सार है जव्य प्राणीके विद्या समान कोई उत्तम अलंकार नहीं है जोगोपजोगका सरस पन जी इस हीसे प्राप्त होता है किसी नीतिकारने ठीक कहा है:—

(श्लोक)

विद्यानाम नरस्यरूपमधिक पृच्छन्न गुप्तधनं ।

विद्याज्ञोग करीयशः सुखकरो विद्यागुरुणा गुरु ॥

विद्याबंधुजनो विदेशगमने विद्यापर देवतं ।

विद्याराजसु पूज्यतेनतुधनं विद्याविद्भिः पशुः ॥ १ ॥

जावार्थः—मनुष्योंका विशेष मुख्य एक विद्या ही है जो कि अन्तरात्मामें रहा हुवा गुप्त धन है यह महा गुरुरूप विद्या, जोग, यश और सुखको करनेवाली होती है यही विद्या विदेश गमनमे जातृवत् साह्यकारी होती है और यही विद्या उत्कृष्ट देवपनेको कारण की हुई है; अन्य वन राजा, महाराजा और चक्रवर्तिसें उसें विनय, बहु मानसैं नहीं पूजे जाते किंजितनीविद्या महाराणी पूजी जाती है और इस ही लिये विद्याके बगर प्राणी पशु तुल्य समझा जाता है इस प्रकार इस जवमें साधारण सुखोंके अतिरिक्त परजमें अचिरात् मोक्षपदको प्राप्त कर सकता है देखिये कितने १ गुण प्राप्त होते हैं:—

॥ दोहरे ॥

जगके सबहो धननमें । विद्या धन शिर मोर ॥

यह तो व्यय कीने बढे । घटत जात धन और ॥ १ ॥

याते तुमको उचित है । मानो गुरुकी शीख ॥

गुणीजननपै माँगिये । विद्या धनकी जोख ॥ २ ॥

विनय बढ़ाई देत है । जगमे आदरमान ॥

विद्या ही परलोकमे । देत मुक्तिको स्थान ॥ ३ ॥'

केवल नीतिकार ही उसकी प्रशंसा करते हों ऐसा नहीं समझियेगा किन्तु तीर्थंकर, गणधर, श्रुत केवली और माहन आचार्योंने इसकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की है देखिये महा मन्त्रोपाध्याय श्रीमद्यशोविजयजी महाराज अपने नव पद पूजाके सप्तम ज्ञानपद पूजामें इस प्रकार फरमाते हैं:—

॥ गाथा ॥

प्रथम ज्ञानने पीठे अहिंसा । श्रो सिद्धते ज्ञाख्युं ॥

ज्ञानने वदो ज्ञान मनिन्दो ज्ञानोये शिव सुख चाख्युं. ज्ञ०सि०॥३॥

सकल क्रियानुं मूल जे श्रद्धा तेहनु मूल जे कहिये ॥

तेह ज्ञान नित २ वन्दिजे॥ते विष्ण कहो केम रहिये. ज्ञ०सि०॥३॥

इससे आपको प्रिज्ञात हो गया होगा कि ज्ञान एक केसी उत्तम पदार्थ है वे महानुभाव इस मोहदाता सम्यक् ज्ञानकी असाधारण आराधना करते थे तथा इसही प्रकार प्रयत्न कर अनेक जन्वात्माओंको आराधन करवाते थे तथा अनुमोदन तो एक अद्वितीय गुणोंसे ही विजूपितथी आपको उस निर्मल ज्ञानका ऐसा सुहृद व्यसन था कि जैसे मनुष्योंको जोजनका व्यसन होता है कहा कत कहा जाय आप ज्ञानके एक अपूर्व जक्त थे आपकी अवर्ण्य महिमा विश्व प्रशंसनीय है पाठकवरों! अब मैं आपके दर्शन पदकी कुछ महिमा लिख दिखता हूँ:—

॥ सम्यग् दर्शनका विवेचन ॥

होर्चिंजनोक्त तत्त्वेषु । सम्यक् श्रद्धान् मुच्यते ॥

जायतेतन्निर्गमैण । गुरोरधि गमेनवा ॥ २ ॥

जाचार्य —स्वाभाविक यानी स्वकीय मतीसे अथवा गुरु सकाशान् यानी परमोप-

कारी गुरु महाराजकी अतुल कृपासँ जिन भगवान् प्रणीत तत्वों पर सुदृढ रुचि होना उसँ सम्यक् श्रद्धा (दर्शन) कहते हैं.

विवेचनः—हमे रूपभेद प्रणीत या महानीर कथित शब्दों पर आग्रह हो ऐसा नहीं किन्तु जिन भगवान्के फरमानका ही हमारा मन्तव्य है आपको यह भलीव प्रकार विज्ञात होगा की जिन किसँ कहते हैं देखिये —

य रागद्वेषादि शत्रुन् जयनिसजिन —जिस महानुभावने रागद्वेषादि अशेष शत्रुओंको विजय कर डाला है उसे जिन कहते हे—जो केवलज्ञान, केवलदर्शन और यथा ख्यात चारित्र्य गुण करके सुशोभित है तथा अनेक लब्धियों करके विभूषित हैं जो एक समय (कालका सबसे छोटा हिस्सा) में लोकालोकको हस्त रेखावत् देखते हे देखिये किसी महाऽनुभावका कथन है —

“त्रैलोक्य युगपत्कराम्बुज भुवन्मुक्तावटा लोकेन” यानीवे जिन भगवान् करकमलमे लुप्तते हुवे मोतीके सदृश ऊर्ध्व, अग्ने और तिर्यग इन तीनों लोकोंको एक काला वच्छिन्न सँ अवलोकन करते है

चाहे वे किसी नाममे मशहूर हो किन्तु एतावन, गुण विषिष्ट जो जिन भगवान् है उनहीके प्रणीत तत्वोंपर रुचीका होना उसे सम्यक् दर्शन कहते है

आप महानुभाव सम्यक् दर्शन (श्रद्धा) में ऐसे सुदृढ थे कि यदि इन्द्र जी आकर क्षोभित करता तो आप किञ्चिदपि चलायमान नहीं हो सकते थे कदाचित् सूर्य अपनी पूर्व दिशाको ठोम दैव प्रयोगसँ पश्चिम दिशामें उदय होने लग जाय, मेरु पर्वत कोई उपसर्गसँ कम्पायमान हो जाय, समुद्र वायु प्रकोपसँ अपनी मर्यादाको परित्याग कर दे, पृथ्वी किसी कारणसँ अपनी सहनशीलताको ठोम रसातलमें चली जाय, अग्नि शीतलता धारण कर ले, जल उष्ण प्रकृति स्वीकृत कर ले, आकाशमे पुष्प खिलने लग जाय, खर सिंगको धारण करने लग जाय, बन्ध्याके पुत्र प्रसूत हो जाय, महिला ढाढी, मूठसे सुशोभित हो जाय, करतल पर बाल पैदा होने लग जाय, ऊसर ज़मिमे नाज उत्पन्न हो जाय, सर्प अमृततरस देने लग जाय, जहर जीवन दशाको प्राप्त करा दे, स्त्री तीर्थकर गौत्र बाधने लग जाय किन्तु वे महानुभाव अपने निर्मल दर्शनसँ कजी चलायमान नहीं हो सकते थे रुढ़नेका तात्पर्य यह है कि उपरोक्त

वस्तुएँ विपरीत दशामें प्रवृत्त नहीं हो सकती हैं किन्तु कदाचित् देव-प्रयोग या अन्य किसी कारणसे ऐसा हो जाय तदपि वे महानुभाव मनागपि चलायमान नहीं हो सकते ये; अर्थात् ऐसे सुदृढ थे कि जिसका विवरण हमारी लेखनीसे बहार है।

श्रद्धा एक ऐसी पदार्थ है कि जिसमें मनुष्य अवश्य अपनी इष्टताओं प्राप्त करता है यावत्प्राणी सम्यग् दर्शन प्राप्त न कर ले तावत् अन्य धार्मिक क्रियाओंसे केवल निरस पुण्य प्रकृतिका बन्धन कर कृणिक सुख प्राप्त करता है किन्तु मोक्ष मार्गसे सदैव विमुख रहता है देखिये अज्ञव्य जीव अपने कष्ट क्रिया कर यावत् नवग्रहिक देवलोकमें पहुँचता है; किन्तु सम्यग् दर्शन न होनेसे चतुराष्ट लक्ष जीवा योनीके पाशसे पृथक् नहीं हो सकता, अर्थात् शिव-सुखसे हमेशा पराङ्मुख रहता है दर्शनसे भ्रष्ट हुवा मनुष्य मोक्षको कर्त्तौ प्राप्त नहीं कर सकता देखिये पूर्वाचार्य श्रीमान् रत्नशेखर सूरीश्वर अपनी बनाई हुई सम्बोध सत्तरीके १७-वे, गाथे में फरमाते हैं

॥ गाथा ॥

दंशणज्जो ज्जो दंशण ज्जस्स नञ्चिनिव्वाण ॥

सिज्जन्ति चरणरहिआ दंशणरहिआ न सिज्जन्ति ॥१॥

भावार्थः--दर्शन (सम्यक्त) से भ्रष्ट हुवा प्राणी भ्रष्ट समझा जाता है इसही लिये दर्शन भ्रष्टकों निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त नहीं हो सकता चारित्र रहित प्राणी तो सिद्ध पदकों प्राप्त कर जी सकता है किन्तु दर्शन रहित प्राणी कर्त्तौ शिव पद नहीं पासकता

उपरोक्त गाथासे आपको विज्ञात हो गया होगा कि दर्शन एक कैसी उत्तम पदार्थ है और इस ही पवित्र पदको आप गुरुवर्य असाधारण रूपसे आराधन करते थे बोध सम्यक्त ग्रहण करनेके हेतु शुद्ध देव, शुद्धगुरु और शुद्ध धर्मकी उपासना करते थे तथा निश्चय सम्यक्तम्के हेतु कर्मचैतन्यके स्वरूपको जानकर अज्ञानतर तप, जप, ध्यान तथो योगाभ्यास एवम् शुद्ध

जावनाद्वारा कर्म मलको पृथक् कर आत्मीय अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और वीर्यको प्रकट (उज्वल) करनेका अगाध प्रयत्न करते थे जिस प्रकार आप इस सम्यग् दर्शनकी आराधना करते थे उसही प्रकार जन्वात्माओंको जी उपदेश देकर आराधन करवाते थे तथा जो प्राणी कि सम्यग् दर्शनको धारण करनेवाले थे उनकी तर्फ पूज्य दृष्टि रखते हुवे अत्यन्त प्रशंसा करते थे. कहाँ तक कहा जाय सम्यग् दर्शन पर आपका श्लाघनीय प्रेम या प्रिय धर्माऽजि-लापियों ! अब मैं आपको चारित्र्यकी कुछ महिमा लिख दिखाता हूँ—

॥ सम्यग् चारित्र्यका विवरण ॥

(श्लोक)

सर्व सावद्य योगाना । सांगश्चारित्र्य मित्यते ।

कीर्त्तित तदाह सादि । वृत्तजेदेन पञ्चधाः ॥ १ ॥

जावार्थः—समस्त पापोत्पादक योगोंके परित्यागको सम्यग् चारित्र्य कहते हैं वह अहिंसादि वृत्त भेद करके पान प्रकारका फरमाया है

विवेचनः—किसी मर्यादामें रहना या किसी क्रियामें गमन करना उसे चारित्र्य कहते हैं किन्तु मन, वचन और काया जितने ही सावद्य व्योपार हैं उन्हे सर्वथा त्याग कर अहिंसादि पञ्च महा व्रत जिनकी व्याख्या हम पूर्वमें कर चुके हैं उसमें रमण करना उसे सम्यक् चारित्र्य कहते हैं

आप महानुभाव ऐसे उच्चम प्रकारसे चारित्र्य पालन करते थे कि उनके मुअॉफिक वर्त्तमानमें साधारण मुनिसे पलना अति दुष्कर है

शिष्य समुदाय होनेके पहिले आप जिस व्रत वस्त्रादिकोंकी प्रति लेहना करते थे, अपने उपयोगको स्थिरकर प्रत्येक वस्त्रोंको जलीजाति अवलोकन करते थे वर्त्तमानमें कई एक साधु, साध्वी बिलखे हुवे वस्त्रको साफ कर जमा लेना ही प्रति लेहना कर्त्तव्य करते हैं; किन्तु महाशयो ! यदि वास्तविक विचारा

जाय तो जीव दयाके हेतु ही प्रतिलेखनका फरमान है दांतव्य इस ही प्रतिलेखनसे एक मुनिराजको अवधि ज्ञान पैदा हो गया था:—

एक किसी नगरके अन्दर एक विद्वान आचार्य महाराज अपने बहुतसे मुनिराजकी सभदायसे विराजमान थे उनमेंसे एक सङ्गयोगी महात्मा जिनेश्वर कथित नियमानुसार जयणा पूर्वक प्रतिलेखना कर रहे थे; वाद जिस वस्तुकी काजे (कचरा) को यत्नापूर्वक ले रहे थे उस वस्तु कंगुरे बगैरा कुछ एक ठोटे ५ जानवर दृष्टिगोचर हुवे, देखते ही यह विचार किया कि अहा धन्य है ! जिनेश्वरके धर्मको और धन्य है उनके दिव्य ज्ञानको तथा धन्य है उनकी पवित्र वाणीको और धन्य है उनकी असाधारण उपगार बुद्धिको ! कि जिसने हम अधम जनको वास्ते ऐसे उत्तम नियम बनाये बगैरा नाना प्रकारसे अनुमोदना करते हुये दृढ़ श्रद्धासक्त हुये इस अवशरमे अवधि ज्ञानावर्णियपटल दूर होकर आत्मोच्चारक अत्रधिज्ञान प्राप्त हो गया इससे आपको प्रथम देव लोक की ध्वजातक जलीजात निज्ञात होता था; नाना प्रकारकी चित्र विचित्र लीलाको देखते ये कहनेका तात्पर्य यह है कि जयणा युक्त प्रतिलेखनका इस प्रकार फल होता है

आप महानुभाव हरएक ठोटे बने जन्तुओंकी ययार्थ जयणा करते हुवे दोनो टाङ्ग नियमानुक्ता दृष्टि प्रमार्जन तथा पूजन प्रमार्जन उत्तम प्रकारसे कर जिनेश्वरकी शुद्ध आज्ञाको शिरोधार करते थे 'इमही प्रकार चारित्रकी रक्षा करनेवाली अष्ट प्रवचन माताको अत्युत्तम प्रकारसे पालन करते थे देखिये:—

(अष्ट प्रवचन माताका स्वरूप)

१ ईर्यासमिति:—आप जिस वस्तु विहार करते थे या अन्य गमनागमनकी आवश्यकता होती थी उस वस्तु अन्य सर्व डाब्बिक और मानसिक विषयोंको परिसागर ३। हाथ अर्थात् शरीर प्रमाण जमीनको एकाग्र दृष्टि द्वारा अत्रलोकन कर गमन करते थे सङ्गनो । नीचे देखकर चलनेके अन्दर धार्मिक फलके अतिरिक्त बहुतसे शारीरिकादि गुण जी प्राप्त होते हैं देखिये किसी कबिने ठीक कहा है:—

(दोहरा)

नीचे देखया गुण घणा । जीव जंतु टल जाय ॥

गोकर की लागे नहीं । पत्नी वस्तु दिख जाय ॥ १ ॥

इसके सिवाय कङ्कर, पत्थर, काँटे, शूल, जुहूट, गद्दो, सर्प, बिच्छु आदि जो की शरीरको वधा पहुँचानेवाले है उन सबसे रक्षा हो जाती है

१ जापासमिति:—आप महानुजाव क्रोधसे, मानसे, मायासे, लोभसे, रागसे, द्वेषसे, भयसे और हास्यमें इन आठ कारणोंसे कर्कश, कठोर, ठेदकारी, जेदकारी, मर्मकारी, मोषाकारी, सावय, और निश्चय इन आठ प्रकारकी जापाओंको अर्थात्-पापकर्मोत्पादक सर्व अशुभ जापाओंको परित्यागकर भियकारी, हितकारी, आझाकारी सत्य वचन बोलते थे

बुद्धि विचक्षणों! जिस वखत आप किसी जन्व्यात्मासे संज्ञापण करते थे ऐसी सुकोमल मधुर वाणी फरमाते थे कि जिससे सन्मुखी अमृतरस पानकर आनन्दित हो-जागया वाली एक ऐसी अमृत्य वस्तु है कि जिससे प्राणीके जातिकी, कुलकी, पटुताकी, गुणकी और स्वजावकी परीक्षा करवा देती है इस लिये जो कुछ बोलना हो बहुत ही विचार कर बोलना चाहिये-देखिये किसी बुद्धिवान्ने ठीक कहा है:—

(दोहरा)

वचन मोल अमोल है जो कतु बोले बोल ॥

पहिले हृदय विचार कर । पीठे बाहिर खोल ॥ १ ॥

जन्व्यज्ञान रसिको ! सद्वचन एक ऐसी उच्चम पदार्थ है कि डःखसे दग्धित हुवे प्राणीको शान्तरामें निमग्न कर देता है और रुठ्ठू शब्द सुखी

-भाणीकों भी वज्रके घाव-सदृश डःखकों प्राप्त कर-देता है-देखिये किसी महा-
त्माका कथन है:—

(दोहरा)

वचन वचनके आतरे । वचनके हाथ न पांव ॥

वही वचन है औपधी । वही वचन है घाव ॥ १ ॥

पाठकरों! उसही जिह्वामें अमृत और इसही जिह्वामें जहर है जगज्जन
इसही जिह्वासे ईश्वर जननकर अपनी आत्माका कल्याण करते है और इसही
जिह्वासे ऋकलाम बोलकर डर्गतिका बन्धन करते है; तब तो यह वही नजीर
समझना चाहिये कि जिस जिह्वासे पद्मम जोजन किया जाता है उसही
जिह्वासे गोयाजिष्टा खाना है

धर्मचुस्न सज्जनो ! आपको योद्धे में ही विज्ञात हो गया होगा कि जापा-
समिति एक कैसी दिव्य गुणधारी माता है इसही लिये वे महानुभाव इसकी
आज्ञा शिरोधारकर तनमनसे सेवा करते थे

३ पर्पणासमिति:—आप ४२ दोप ढालकर अरसविरस आहारपानी किया
करते थे रसनेडियको इम प्रकार कब्जमें कर रक्की थी कि वह अपनी लोलुप्य
दशाको कज्जी भकट नहीं कर सकती थी शरीरकी पुष्टिके हेतु तो सरस जोज-
नका जह् सर्वयाही असंजव था किन्तु व्याधि बगेरा अन्य अवश्यकीय अव
स्थामें जी जहातक बन सकता इस मदोत्पादक शत्रुसे पृथक् रहते थे आप
वैसे ही सतोपी मुनि थे कि जैसे दशवैकालिकके भयम अध्ययनकी सज्ञायमें
फरमाया है तद्वया:—

(गाथा)

मुनिवर मधुकर समकह्या । नहीं हे राग नहीं द्वेष ॥

लाधो ज्ञानो देवे देहने । अणलाधे संतोष ॥ धर्म० ॥ १ ॥

॥४॥ आदानजंमच निक्षेपणासमितिः—आप महानुजाव किसी जांडोप-
गरणकों जब ग्रहण करते थे अथवा रखते थे तब वडेही उपयोगके साथ तय
जयणा पूर्वक काममें लाते थे दिनको दृष्टि प्रमार्जन व रातको पूजन प्रमार्जन
कर हरएक पदार्थ उपयोगमें लाते थे अपनी समस्त उपधी जिस धर्मशालामें
निवास करते उसही स्थानमें रखते थे किन्तु अन्य स्थानपर कुठ जी न
रखते थे; अर्थात् हरएक कार्य सत्प्रयोग व सजयणा करते थे.

५ पारिष्ठापनिकासमितिः—कोई जी पदार्थ जो कि परठने योग्य होती
उसमें शास्त्रोक्त रीतिसमें निर्वध स्थानमें परठते थे

॥ घोर शत्रु मनकी दुर्जयता ॥

६ मनोगुप्तिः—सम, समारंज और आरंज करके मनकों स्वाधीन करते
थे सज्जनो ! मन एक वगेर लगामका ऐसा अश्व है कि जिसका वेग पवनसे
जी बहुत तेज है देखियेः—क्षणमें मनुष्य, क्षणमें तिर्यच, क्षणमें नरक, क्षणमें
स्वर्ग, क्षणमें मोक्षादि चो तर्फ घूमा करता है किन्तु किसी जगद स्थिर रहकर
आत्म ऋद्ध्याण नहीं करता वके १ ज्ञानी ध्यानी, तपस्वी, चारित्री योगीश्वर
और महापियोंको अपने आचरणोंसे पतित कर क्षणमें नरक निगादके सन्मुख
कर देता है देखिये योगिराज श्री आनन्दघनजी महाराज अपन बनाये हुवे
चतुर्विंशति जिन स्तवन संग्रहके सत्तरे स्तवनमें फरमाने है किः—

(गाथा)

मुगति तणा अज्जिलापी तपिया । ज्ञानने ध्यान अज्यासे ॥
वयरीमुकाइ एहवुं चिते । नाखे अवले पासे हो ॥ कुं० ॥३॥

जावार्थः—यह मन महा डष्ट शत्रु है कारण कि मोक्षजिलापी तपस्वी
जो कि इसकों साधन करनेके हेतु निज गुण जाननेके वास्ते ज्ञानाज्यास कर
रहे हैं तथा निज गुण प्रकट कर उसमें रमण करनेके वास्ते ध्यानाज्यास कर

रहे हैं उन महान् मुनिराजोंको कर्मरूपी फासमें गेर देता है देखिये प्रश्नचन्द्र राजर्षिको कृष्णजरमें सप्तम नरकके दलियोंका संग्रह करवा दिया और थोड़ी ही देर बाद जब सीधी गतिकों अवधारण किया तब शीघ्र ही केवल ज्ञान प्राप्त करवा दिया इस लिये वीर पुत्रों ! इस डष्ट शत्रुको किसी प्रकार शनैः शनैः अपने कब्जमें करनेका प्रयास करना चाहिये; जब तक यह मन पराजय न होगा सर्व क्रियाएँ केवल निरस पुण्य प्रकृतिये (जो कि कृष्णिक सुखको देनेवाली है) का संग्रह करवाती है; इस एकको साधनेके वास्ते हजारों उपचार करने पड़ते हैं देखिये:—

ज्ञान, दर्शन और चारित्र्याराधन, दान, शिखल, तप, जापना, योगाभ्यास और यान क्रिया वगैरा जो कि अनेक कष्ट सहनकर साधु, सा-वी, श्रावक, श्राविका करते हैं वे केवल एक इसही गोर शत्रुको वशमें करनेका हेतु है एक इस मनके ही न सवनेसें ठार परलीपनरूप सर्व निष्फल है और यदि यह स्वाधीन कर लिया जाय तो सर्व क्रियाएँ समुद्रके जलके मुआफिक सार्थक हैं देखिये वेही पूर्वोक्त महानुभाव अपने उसही स्तवनके आठमें गाथाके अन्दर फरमाते हैं:—

॥ गाथा ॥

मन साध्युं तेषां सघलुं साध्युं । एह वात नहीं खोटी ॥
 एम कहे साध्युं ते नवी मानु । एकही वात ठे मोटी हो ॥ कुण॥७॥

जाचार्य:—हे जिनेश्वर देव ! चञ्चलताको परित्याग करके एकाग्रतासें जिस मनुष्यने मनको वशीकृत किया है उसने तप, जप, ध्यान, संयमादि सर्व कार्य साधन कर लिये कारण कि साधनका अन्तिम ज्ञान नहीं है इस लिये जिसने मन वशमें कर लिया; उसने आत्मिक ठगुराईका मल सिद्ध कर लिया है यह बात सर्वथा सत्य है, कदाचित्त कोई निरर्थक अपनी जिह्वासें कह देवे कि मेने मनको साधन कर लिया तो यह बात बिलकुल अमान्य है, क्योंकि मन एक अति ही डर्जय शत्रु है

मान्यवरों ! आपको उपरोक्त महानुभावके दो गायान्तोंसे प्रतीत हो गया होगा कि मन एक कैसा डर्जय शत्रु है इसको साधन करनेके वास्ते अनेक प्रयोग हैं उनमेंसे एक सहज प्रयोग यह जी है कि जिस वख्त आदमी कोई जी कार्य करे उस वख्त यह अवश्य शोचे कि "Whether it is right or wrong " अर्थात् क्या यह सही है या गलत ! ऐसा विचारनेसे अवश्य बहुतसे हानिकारक-कार्य दूर हो जाते हैं प्रत्येक कार्यका यह धर्म है कि विचारनेसे अति शीघ्र, सहज और निराबाध पूर्वक हो जाता है और वगैरे विचारनेसे " घरहाण जगत हाँसी " होती है देखिये कहाः—

॥ दोहरा ॥

विना विचारे जो करे । सो पीठे पठताय ॥

काम विगारे आपनो ॥ जगमें होत हैसाय ॥ १ ॥

द्वितीय-बौगिक क्रियानुसार यह जी प्रयोग है कि जिस प्रकार एक साहूकारने बन्दरको बशीजूत कियाया उसही प्रकार मनको स्वाधीन करना चाहिये, जानवरोंमें सबसे अधिक चंचल वशेतान बन्दर ही माना जाता है उसमें जी यदि वह सुरा पानकर ले तो फिर चंचलताका ज्या ठिकाना और इस अवस्थामें यदि उसको विच्छु काट खाय तब तो एक अद्वितीय ही चंचलता प्रकट हो जाती है कहनेका तात्पर्य यह है कि मदिराका पान किया हुवा और विच्छु काटा हुवा जिस प्रकार बन्दर चंचल होता है इसही प्रकार इससे-कई गुने अधिक मनरूपी मर्कट चंचल व शेतान होता है; देखिये उस सेठने इस प्रकार वानरको स्वाधीन किया थाः—

॥ अनुत दृष्टान्त ॥

किसी एक ग्रामके अन्दर एक गरीब ब्राह्मण रहता था उसके एक स्त्री व एक पुत्री थी वह इस प्रकार निर्धन था कि सुनहको मागकर लाता और सुबह अपगा गुजरान करता एवम् शामको मागकर लाता और शामका गुजरान करता; इस प्रकार अपना काल निर्गमन करता था

उसने एक ऐसा बतीरा अखितयार कर रक्का था कि जिस बख्त स्थ-
 एम्ल जूमि जाता उम बख्त अपनी शौच क्रिया करनेके पश्चात् जलपात्रमें
 जो कुच्छ जल शेष रह जाता वह हमेशा एक बटवृद्धमे गेर दिया करता था
 इस प्रकार कितनाक काल निर्गमन हुवा अब उसकी लम्की युवावस्याकों
 प्राप्त हुई, इस हालतमें उस ब्राह्मणकों उसके विवाहकी चिन्ता होने लगी
 किन्तु निर्धन होनेसे शिवाय दिलगिरीके कुच्छ जी नहीं सूझता था ऐसे डःख
 की हालतमें एक दिन उम दरख्तमें पानी डालना जूल गया उसही बख्त
 उसमेंसे एक पिशाच प्रकट हुवा और उस ब्राह्मणपर क्रोधित होकर कहने
 लगाकि अरे डष्ट ब्रह्मण ! तूने मुज्को आज जल क्यों न पिलाया ? मै आज
 तुजे मारे वगेरे हरगिज नहीं ठोमूंगा यह जयकर शब्द सुन वह ब्राह्मण बोला
 रे अधम ! कृतघ्न ! ! डराचारी ! ! ! तू बडाही डष्ट है कि अपनेही स्वार्थमें
 समझता है किन्तु मेरी लड़कीके विवाह सबधि असीम डःखका कुछ जी
 विचार नहीं करता

यह सुन वह प्रेत अपने डष्ट शब्दोंका पश्चात्ताप कर उस ब्राह्मण पर
 अत्यन्त प्रसन्न हुवा और कहने लगा कि हे जड ! तू किसी प्रकारकी चिन्ता
 मत कर मै तेरे सर्व कार्यकों उत्तम प्रकारसे कर दूंगा तथा तेरे दरिद्रताकों
 दूर कर श्रीमन्त बना दूंगा देख मै वानर रूप हो जाता हूं मेरे गलेमें यह सु-
 वर्ण जंजीर माल किसी एक वने शहरमें ले चल वहा पर किसी धनवान्को
 सवालक रूपे में मुझको बेच देना, यह सुन वह ब्राह्मण हर्षित होकर उस
 वानर रूप पिशाचको लेकर मकानपर पहुंचा और अपनी स्त्रीकों सर्व विषय
 समझाकर वहामें रवाना हुवा; दरऊंचदर मुकाम करता हुवा क्रमशः कलकत्ते
 सदृश एक विशाल शहरमें पहुंचा, वहां पर घूमता एक किसी क्रौरुपतिके
 यहापर जा पहुंचा वहा पर श्रेष्ठी, ब्राह्मण और वानर के इस प्रकार प्रश्नो-
 चर हुवेः--

ब्राह्मणः—हे श्रेष्ठीवर्य ! मैं इस कपिकों बेचना चाहता हू दया कर योग्य
 मूल्य प्रदान कीजियेगा

श्रेष्ठीः—जाई ब्राह्मण ! इसका क्या मूल्य लेगा ?

ब्राह्मणः—दयानिधे ! सवालक मुद्रिका लेऊंगा

श्रेष्ठीः—सद्गुणी ब्राह्मण ! इसमें ऐसा क्या अद्भुत गुण है कि जिसमें इतनी अधिक किम्मत लेना चाहता है ?

ब्राह्मणः—हे परोपकारी ! तुम अपनी डकानका जो कुछ काम बतला उंगे उसमें तार (Telegraph) से जो अति शीघ्र कर देगा तुमारे सैकड़ों नोकरोका खर्च बचा देगा; अर्थात् सालभरमें लाखों रुपोंका काम करेगा

श्रेष्ठीः—चिन्ती देकर—अठा तो जाऊ खजानेसे रुपये लेलो और वानरका यहा बाँध दो

वानरः—अजी शेर साहब ! जरा मेरी जी प्रार्थना सुनियेः—

श्रेष्ठीः—जाई कपि सानन्द कह सुनाऊ

वानरः—श्रेष्ठी शिरोमणे ! इसमें शर्त यह है कि मैं एक मिनट जी बेकार नहीं रहूँगा, अगर मुझे कोई कार्य न बतलाउंगे तो उमही बहुत तुमें जकण कर जाऊँगा

श्रेष्ठीः—दिलमें सोचकर “ अपने सैकड़ों डकाने है एक कपि कितनाक काम कर सकेगा, ” जाई वानर ! मुझको तेरा कथन सहर्ष स्वीकार है

इस प्रकार वार्त्तालाप हुई और उस वानरको सवालख रूपमें खरीद कर अनेकानेक काम करवात है, उधर वह ब्राह्मण खजानचीसे रुपये लेकर सहर्ष अपने मकान पर पहुँचा और अपनी कन्याकी खूब जलुशसे शादी कर सानन्द निवास करने लगा

इधर वह कपि हजारों कोसोंका काम मिएटोंके अन्दर करने लगा करीब एक वर्षमें लाखों रूपेका नफा कर दिया वह श्रेष्ठी इस प्रकार वानरको कार्य करते हुवे देखकर दिलमें विचार करने लगाकि यह तो वर्षोंके कार्यको

मिण्टोके अन्दर कर देता है न मालुम कोई देव है या राक्षस है या विद्या-घर है या अन्य कोई लब्धीवंत है कि जिससें इस प्रकार कार्य करता है, अत्र मैं इसको क्या कार्य बतलाऊंगा और किस प्रकार यह जीवन पूरा होगा एसी चिन्ता करही रहाया कि इतनेमें वह बानर आकर बोला कि श्रेष्ठ साहब ! मैं सर्व कार्य कर चुका हूँ अब कोई नूतन कार्य मुझे बतलाईयेगा वरना मैं आपको अवश्य जहण कर जाऊंगा

यह सुन वह श्रेष्ठी अधिक डःखी हो गया और नाना प्रकारसें सकल्प विकल्प करता हुआ उपाय सोचता है किन्तु कुछ जी योग्य व्यवस्था न विचार सका, अत्र दिन-दिन शारीरिक अवस्था गिरती जाती है जोजन जी सम्यक् प्रकारसें नहीं करता; इस उपमावस्याको देखकर उसकी सुखशीला पुत्रीने प्रथा कि हे पिताजी ! आज कल आपकी व्यवस्था इस प्रकार क्यों कर हो रही है यह मुन पिता बोला कि पुत्रि मैं कुछ जी नहीं कह सकता हूँ मेरा किया हुआ सुझको ही जगतना पमेगा इस समय पिताके गदप् नेन जर आपसे अश्रुपात बहने लगे खेदरसमें जरा हुआ यह कहता है:-

(दोहरा)

कौन सुने किसको कहूँ । सुने तो समझे नाँय ॥

कहेवो सुनवो समझवो । मनहीको मनमॉय ॥१॥

ऐसे दिलगिरीके शब्द सुनकर वह लम्की पुनरपि प्रार्थना करने लगी कि हे तात ! आप अपने डःखको स्पष्टतया कयन कीजियेगा मैं अवश्य उसका उपाय बतलाऊंगी ऐसे साहसिक शब्द सुन उस पिताने अपने सर्व उत्तान्त कह सुनाया तनुजाने यह सुने १४ घण्टेके बाद उत्तर देनेकी प्रार्थना की अब वह श्रेष्ठ सत्तर्प ग्वानपान करने लगा इधर वह लढकी अपने इष्ट-देवके स्मरणमें तल्लीन हुई स्वप्नमें इष्टदेव और लढकीके आपुसमें इस प्रकार प्रश्नोत्तर हुवे:-

इष्टदेवः—हे सुपुत्रि ! सोती है या जगती है ?

पुत्री:—हे स्वामिन् ! जगतमें कौन ऐसा है कि जो डःखमें निडाव होता हो.

शृदेव:—अच्छा तो कह तूने मुझे क्यों स्मरण किया है ?

पुत्री:—क्या नाथ ! आपसें जी ठिपी हुई बात है ? आप अपने पवित्र अवधि ज्ञानसें जान सकते है

शृदेव:—उस वानरका संपूर्ण वृत्तान्त सुनाकर कहा ले सुता ! इसका यही उपाय है कि जिम वखत कोई कार्य हो उससें करवा लेना और शेष टाइममें ऐसा करना कि मैदानमे एक लम्बा स्तम्भ आरोपण कर उसपर उसे चढ़ने उतरनेका कार्य बतला देना

जब कि दूसरा दिन हुआ उस लम्बीने अपने पिताको सादर नमस्कार कर गत रात्रिके स्वप्नकी सर्व व्याख्या कह सुनाई और शृदेवका बतलाया हुआ वह उत्तम प्रयत्न जी निवेदन किया यह सुन उसका पिता अति हर्षित होकर नाना प्रकारकी उत्तमोत्तम आशिर्वादे देने लगा और उसही दिन अपनी डकान पर जाकर उस स्थंजकी व्यवस्था करवाई उसही अवसरमें वह वानर आकर शेरसें बोलाकि रे अमलवादी ! तूने मुझसें क्या वायदा किया था आज दो दिवस हुवे है जिसमें मुझको बिलकुल बराबर काम नहीं बतलाया जाता है तू मुझको अति शीघ्र कोई कार्य बतला वरना तूजे इसही वखत जकण कर जाऊंगा

यह सुन वह श्रेष्ठी पराक्रम पूर्वक बोला रे छष्ट वानर ! क्या तू कोई प्रकारका मगधर करता होगा जातुं उस सन्मुखी स्तम्भके ऊपर चढ़कर उतरो वानर इस कर्त्तव्यों कर पुनरपि कहने लगाकि अब मैं क्या काम करूं ? तब शेरने वही कार्य करनेका हुकुम दिया इस प्रकार कई एकवार चढ़ने उतरनेका कार्य किया अखीरमें शेरने य हुकुम दिया कि जब हम कोई कार्य बतलावें उसें करना चाहिये और शेष टाइममें इस स्थंज पर चढ़ने उतरनेका काम हमेशा करते रहना इस प्रकार कितनेक दिन तक यह कार्य किया

अन्तिममें हेरान होकर उस वानरने अपना निज स्वरूप प्रकटकर शेरोंको सर्व वृत्तान्त कह सुनाया शेरने अति प्रसन्न होकर उससे विमुक्त किया।

तत्त्वाऽज्जिलापियों ! आपको इस दृष्टान्तसे विदित हो गया होगा कि उस बुद्धिमती लकड़ीके प्रभावसे शेरने उस छष्ट वानरको किस प्रकार वशी-जृत किया. कहनेका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार उस मर्कटसे बहुत जरूरत कार्य लेते थे बाद हमेशा चढ़ने उतरनेकाही कार्य करवाते थे उसही प्रकार इस मनरूपी मर्कटमें उच्चम व्यावहारिक कार्य तथा धार्मिक क्रियाओं करवाना चाहिये और शेष शर्षपमें श्वासोश्वासके नियमानुसूल समान्यतया "अरिहन्त" के जापमें तथा विशेषतया "सोऽद्ग" पदके जापमें सलग्न करना चाहिये. विशेष स्वरूप गुरु गम्यतासे जानना सङ्गनो ! वे महानुभाव इस प्रकार मनो-गुप्तमें गमन करते थे

(मौनानन्द)

१ वचनगुप्तिः—आपनी सम, समारम्भ और आरम्भ करके वचनोंको स्वाधीन करते थे; हमेशा मौनप्रतको अस्तिपार करते थे मौनसे केवल यह मत समझियेगा कि ज्ञापा वर्गणाको सर्वथा रोकते थे किन्तु "मुनेर्जाय कर्मवा इति मौनम्" ऐसा अर्थ समझियेगा आप जिस बहुत प्राग्विलास करते थे वनी ही गम्भीरतासे तथा सदाचारपूर्वक किया करते थे और आवश्यकीय अवसरपर सर्वथा मौन जी रखते थे

अनुजयी महाशयो ! मौन एक ऐसी उत्तम पदार्थ है कि जो हमारे आत्मस्वरूपको प्रकट कर देती है देखिये तप, जप, ध्यान और यौगिक क्रियाओंमें जी इसको परिपूर्ण सत्कार मिला है इसको स्वीकार किये विडन मोक्ष मार्ग उपाय है नीतिकारने भी लिखा है कि "मौनसर्वार्थ साधनम्" इस अमूल्य पदसे यह स्पष्टतया प्रकट है कि उच्च शिखरपर पहुँचानेवाला मौन एक उत्कृष्ट साधन है

महानुभावों ! जगद्गुरु श्रीतीर्थकर देव जी दीक्षा लेनेके बाद यह अजि-

ग्रहधारण करते हैं कि जब तक मुझे केवलज्ञान न हो-मौनमें रहकर ध्यानादि उत्तम क्रियाओंका आचरण करूँगा इतनाही नहीं किन्तु केवलज्ञान प्राप्त होनेके पश्चात् जी मौनके बगैरे परमपद (मोक्ष) को प्राप्त नहीं कर सकते देखिये मोक्षगामी चौदहवें गुणस्थानपर जाकर शैलेसीकरण करते हैं; अर्थात् मन, वचन और कायाको मेरु पर्वतके सदृश अचल करते हैं पश्चात् शिवपुरमें प्राप्त हो जाते हैं

कई एक जन्व्यात्मा ऐसी मौन रखते हैं कि सावध जापाको परिखाग कर निर्वच वचन बोलते हैं यह जघन्य मौन कही जाती है तथा कई एक लोग वचन कलापको रोककर हूँकारादि शब्दोंसे तथा हस्त, चरण, मुख, नेत्र और मस्तक बगैरासे अङ्ग चेष्टा करते हैं एवम् पत्रादिको पर लिखकर अपने अङ्ग-प्रायको सूचित करते हैं यह मध्यम मौन कही जाती है और कई एक आत्मार्यो जन्व्यात्मा उपरोक्त समस्त कर्तव्योंको परिखाग कर आत्मीय गुणोंमें निमग्न हो जाते हैं यह उत्कृष्ट मौन कही जाती है

पाठकवरों! वे पूज्य गुरुवर्य जघन्य मौन तो प्रायः हमेशाही पालन करते थे और उत्कृष्ट मौन समयानुसार ध्यानावस्थामें किया करते थे इस प्रकार वचन गुप्तिकी सादर सेवा कर अपने मानव जन्मको सफल करते थे

(कायोत्सर्गकी सनिष्टता)

३ कायगुप्तिः—सम, समारम्भ और आरम्भ करके कायाको वशीकृत करते थे; अर्थात् कायोत्सर्ग ऐसी उत्तम रीतिसँ करते थे कि कैसा जी उत्सर्ग क्यों न हो जाय किन्तु विलकुल चलायमान नहीं हो सकते थे जिस वस्तु आप पर्यङ्गासन (पद्मासन) करते थे उस समय दोनो हथियोंको योग्य स्थितिमें रख तुम्हीको बहस्यलपर लगा देते थे तथा जिह्वाको तल्लि स्थान पर लगाकर दृष्टिको नासिकाके अग्र जाग पर स्थिर करके ध्यानाच्छ हो जाते थे और कायासे इस प्रकार विमुक्त होते थे कि उस नासिकाके अग्र जाग पर सर्व शरीरको ध्यानमें लाकर प्रथम ही प्रथम चरणोंकी तर्फसे तत्पश्चात्

जानुसैं, जड्हासैं, कटिसैं, करकमलसैं, जुजाओसैं, हृदयसैं, वहस्यलसैं, कण्ठसे, मुखसैं, नेत्रोंमें, ललाटसैं, मस्तकसैं और शिरासैं इस प्रकार अङ्गके प्रत्येक अणवोसे क्रमशः दृष्टि हटाते हुवे अन्तमें मै अशरीरी हू ऐसा विचार आत्मध्यानमें लीन हो जाते थे उस समय कितनाही जयङ्कर उपसर्ग क्यों न आक्रमण करता हो किन्तु आप महानुभाव विलकुल ह्योजित नहीं होते थे

वर्त्तमानमें कितनेक आत्मध्यानियोंको ठोमकर काउसग ध्यानकी एक विलक्षण ही दशा प्रतीत होती है कइ एक पेरोको हिलाते है, कइ एक अपने हायोंको चचलता वश कर देते है, कइ एक दृष्टि विपर्यास करते हुवे नजर आते है, कइ एक मस्नकको हस्तिकी घूमत चालपर घृमाते है, कइ एक ओष्ठ फुराते हुवे पिङ्गात होते है और कइ एक जोरश से नमस्कार मन्त्रका जाप करते हुवे निकट वर्त्ति ज्ञव्यात्माओंको बाध्ना पहुचाते है; यहा तक कि शरीरके प्रत्येक अवयवका नियम ऋष्ट कर क्रियामें मवृत्त होते है सङ्गनों ! इस हास्यावस्थामें उपसर्ग सहनका तो विचार ही क्या ? किन्तु वे वेठरूप क्रियाकों करनेवाले लोग एक साधारण जन्तु मञ्जरसैं जी चलायमान हो जाते है; मगर जव्य आत्मार्थी लोग प्राणान्त कष्ट होनेपर जी काउसग ध्यानसे कदापि चलायमान नहीं होते थे देखिये:-

परम परमात्मा श्री पार्श्वनाथ स्वामी जिस उल्लत काउसग ध्यानमें खड़े थे उस समय कमठ तापसका जीव मेघमाली देवताने घोर अन्धकार कर मूसलधार वृष्टि की यहा तककी चारहण कोश पर्यन्त सर्व अटवी जलमय कर दी और उन तीर्थकर देवके नासिका पर्यन्त जल पहुंच गया था मगर तो जी वे मनागपि ह्योजित न हुवे इधर शासनाधीश्वर श्रीमन्महावीर परमात्मा कों कायोत्सर्गमें शय्यापालक के जीउने कणों में लोहके तीक्ष्ण कीलेपिरो दिये, गवालियेने पेरों पर खीर पकाई, चण्णकोशिया नागने अपने फणका ऊपट मारा और जी सगमादि देवोंने नाना प्रकारके जयङ्कर उपसर्ग किये लेकिन वे जगद्गुरु किञ्चिदपि चलायमान न हुवे इस प्रकार अनेक तीर्थकर गणधर, आचार्य, उपाध्याय और साधुजनोंने कायोत्सर्गमें स्थित रहकर अपनी आत्माका कष्ट्याण किया प्रिय सङ्गनों ! उपरोक्त रीखानुसार वे पूज्य

गुरुवर्य जी यथाशक्ति पूर्वाचार्योंका अनुकरण करते हुये इस प्रकार काय-गुप्ति, मातेश्वरीकी यथार्थ सेवा बजाकर स्वकीय आत्माको निर्मल करते थे

आत्माऽज्जिलापियो । चारित्र एक ऐसी उत्तम पदार्थ है कि जिसके समान अन्य साध्यकारी कोई वस्तु प्रतीत नहीं होती; सर्व रत्नोंमें यह शिरो मणि रत्न है; इसे ग्रहण करनेसे ज्योत्स्ना अपनी मनोकामनाकी साफल्यता करता है; देखिये किसी कवीश्वरने ठीक कहा है:—

(श्लोक)

चारित्र रत्नान्न परं हि रत्नं । चारित्रवित्तान्न परं हिवित्तम् ॥

चारित्र लाजान्नपरो हि लाज—श्चारित्र योगान्नपरो हियोगः ॥१॥

ज्ञानार्थः—इस जगत्में चारित्रके बराबर कोई अन्य रत्न नहीं है चारित्रके बराबर कोई इव्य नहीं है तथा चारित्रके समान कोई अन्य लाज नहीं है एवम् चारित्रके तुल्य कोई योग नहीं है यह वही चारित्र है कि जो यदि एक जी दिन उदयमें आजाय तो इस प्रकार उत्तम फल प्राप्त करा देता है:

(श्लोक)

दीक्षा गृहीता दिनमेकमेव । येनोग्रचित्तेन शिवं सयाति ॥

नतत्कदाचिदवश्यमेव । वैमानिकः स्यान्निदशः प्रधान ॥ १ ॥

ज्ञानार्थः—यदि प्राणी एक दिन ही दीक्षा ग्रहण कर ले और उग्र चित्तसे उसे पालन करे तो अचिरात् मोक्षपदको प्राप्त करता है कदाचित् वैसा उत्कृष्ट आचरण न कर सके तो जी साधारण क्रियाओंसे अवश्य वैमानिक देवलोकमें प्रधान पद प्राप्त करता है

नहीं इतनाही नहीं किन्तु यह चारित्र रत्न सम्यग्ज्ञान, दर्शनको सफल करता है आप यह खूब समझ सकते है कि मर्यादा बगैर जितने क-

र्च्य है वे सर्व निष्फल है और इसही लिये ज्ञान, दर्शनका सारजुत चारित्र्य वतलाया है देखिये खरतरगञ्ज गगनाम्बरमणि नवाङ्गी, टीकाकार श्रीअज्ञयदेव सूरेश्वर अपनी बनाई हुई आगम अष्टोत्तरीके ८९-वें गायेमे इस प्रकार फरमाते हैं:—

(गाथा-)

नाणं नरस्तसारं । सारं नाणस्त शुद्ध सम्मत्तं ॥

सम्मत्तसार चरणं । सारं चरणस्त निव्वाणं ॥८९॥

जावार्थः—मनुष्य जबका सार ज्ञान है और ज्ञानका सार शुद्ध सम्पत्त है तथा शुद्ध सम्पत्तका सार चारित्र्य है एव चारित्र्यका सार मोक्ष समझना इन उपरोक्त गायत्रियोंसे आपको विज्ञात होगया होगाकि चारित्र्य रत्न एक कैसी उच्च पदार्थ है.

सज्जनो ! आप लोगोंको ज्ञान, दर्शन और चारित्र्यकी महिमा पढ़कर यह सदेह पेदा होता होगा कि ज्ञानकी व्याख्यामें दर्शन और चारित्र्यसे ज्ञान को मुख्य वतलाया और दर्शनके विवेचनमे सबसे ज्यादा दर्शन पद वतलाया तथा चारित्र्यके विवरणमें ज्ञान और दर्शनसे चारित्र्यको अधिक वतलाया इसका क्या कारण है ? उत्तरमें निवेदन है कि जहा तक सोचा जाता है प्रायः यही ज्ञात होता है कि जिसका विषय कथन किया जाय उसकी महिमा अधिक वतलाई जाती है लेकिन यदि वस्तुतः देखा जाय तो ये तीनोंही अनुपम रत्न समान है, पूर्वाचार्योंका जी यही कथन है कि: "सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र्याणि मोक्षमार्गः" बुद्धिजनेपुं कि विशेषम्

वर्तमानमे कइ एक साधुसाध्वी सयमी नाम धराते हुवे जी अपने आचारोसे अनेक विपरीत कर्त्तव्य करते हुवे दृष्टिगोचर हो रहे हैं, इव्य चारित्र्य जी जब ययार्थ पालन नहीं कर सकते तो जावचारित्र्यकी आशाही क्या ? पूर्वोक्त अष्टमवचन, माताका पालना अति उपकार दिख पड़ता है वे चारित्र्यकी

सत्ताका मौलर रखनेवाले चारित्र रहक एक जी मातेश्वरीकी जब ययार्थ सेना नही वजा सकते तो आत्मोधारका तो कथनही क्या ? मालुम नही होताकि वे महानुजाव इस प्रकार संयमकों अखितयार कर दिलमें क्या हर्ष मनाते होंगे ? जोकि गृहस्थके तथा अन्य सामुदायिक प्रपञ्चोंके गाढ बन्धनसें जखने हुवे है साथका साथ यह जी कह देना समुचित समझता हूँ कि जगके समस्त साधु साध्वी इस ढङ्गके हों ऐसा न समझियेगा किन्तु कइ एक आत्माथी पूज्य मुनिराज अपने चारित्रमें कुशल होकर उच्च श्रेणीमें पहुंचनेका दृढ प्रयत्न करते है इसही प्रकार वे पूज्य गुरुवर्य जी चारित्र क्रियामें ऐसे निपुण थे कि जिसकी व्याख्या हमारी लेखनीसे बाहर है धन्य है ! आपकी चारित्र महिमा जगज्जन भिय थी सज्जनो ! अब मै आपकी दान महिमाका किञ्चित् विवेचन लिख दिखता हू

(दानगुणपर व्याख्या)

किसी वस्तुकों कृपापूर्वक सर्प देना उसे दान कहते है ये दान पाच प्रकारके होते है तद्यथाः—

(गाथा)

अज्ञयं सुपत्तदाणं । अणुकम्पा उचिय कित्तिदाणाइं ॥

उन्निहि मुस्को जणिउ । तिन्निउ जोगाइथं वित्ति ॥१॥

अर्थः—अज्ञय, सुपात्र, अनुकम्पा, उचित और कीर्ति इन पांच दानोंमेंसे आदिके दो दानमोहके दाता है तथा शेष ३ सम्यग् जोगकी भाप्तिके हेतु है इन्हही पांच दानोंकी किञ्चित् व्याख्या लिख दिखता हूँः—

(१) अज्ञयदानः—प्राणीमात्रकों जय रहित करना उसे अज्ञयदान कहते है इसके दो जेद हैः—प्रथम इव्य अज्ञयदान द्वितीयजाव अज्ञयदान.

इव्य अज्ञयदान—उसें कहते है कि किसी जीवकी हिंसा होतीहो तो

उमें तन, मन और धन करके रक्षा करे. तनसे रक्षा, उसे कहते हैं कि उप-
देश देकर अथवा शारीरिक बलद्वारा किसी प्राणीके प्राणोंको रक्षा करे म-
नसे रक्षा उसे कहना चाहिये कि दिलमें यह जाचना जावे कि हे प्रजो !
किसी प्रकार यह प्राणी बच जाय तो उत्तम हो धनसे रक्षा वह कही जाती
है कि इन्व्य दकर उसे बचा लेना

कइ एक महानुजाव यहापर यह प्रश्न करते है कि अगर किसी एक
हिंसकको दश रूपे देकर एक बकरेको या अन्य किसी जानवरको बचाया तो
वह प्राणघातक उन रूपके दो चार जानवर लाकर बध करेगा तो ऐसे अज्ञ-
यदानसे क्या नतीजा हुवा इससे तो बहेतर है कि ऐसी अवस्थाओंमें मौन
अखसार करना समुचित है

प्रश्नकर्त्ताका प्रश्न अवश्य विचारणीय है किन्तु वे महानुजाव यदि तट-
स्थ होकर स्थिर बुद्धिद्वारा विचार करते तो ऐसे महदान गुणसे पराङ्मुख
न रहते देखिये जिनेश्वर देवता यह फरमान हैकिः--परिणामें बंध, क्रियाए
कर्म, और उपयोगे धर्म ये तीनों पद प्रायः सचही जैन धर्मावलधियोंको मा-
ननीय है तो अब खयाल कीजिये कि उस प्राणी रक्षकका मानसिक विचार
क्या था ? विचारशील सज्जनों ! अगर आप बुद्धि विचक्षण जिज्ञासु है तो
अवश्यही यह स्वीकार करेंगे-कि उसके जाव केवल जीव दया करना मात्रही
थे तो क्यों साहेब ! शुद्ध विचारोंसे शुद्ध बंध व अशुद्धसे अशुद्ध बंध तो
क्यों कर वह नियम विपरीत समजा जावे देखिये करुणालय महानुजारोका
कथन हैः—

(श्लोक)

योदद्यात्काञ्चनमेरु । कृत्स्नामपिवसुन्धराम् ॥

एकस्यजीवनदधा न्नागित तुल्यतयो. फलम् ॥१॥

जावार्थः—जो प्राणी सुवर्णमय मेरु पर्वत तथा समस्त पृथ्वीका दान

दे देवे तो जी-जीवितदान (अप्रयदान) देनेवालेके बराबर। इष्ट फल प्रा
नहीं कर सकता बुद्धिजनेपु किंवित्रोपम्

जाव अप्रयदान—उसमें कहते हैं कि कोई प्राणी किसी डर्व्यसनमें
किसी अशुभ प्रवृत्तिमें या कुदेव, कुगुरु और कुधर्मकी मान्यतामें ग्रस्त हो
रहा हो तो उसमें उपदेशादि प्रयोगोंसे सुमार्गबाधक प्रवृत्तियोंको पराजय कर
वाकर सुमार्गमें प्रवृत्त कर अथवा गृहस्थाश्रमके अनेक डःखोंसे विमुक्त करा
कर जवतारक चारित्र्य अङ्गीकार करवाता हुआ उसके मानवजन्मको कृतार्थ का
यह सर्वसे शिरोमणी व आत्मिक अनुभव सुखको देनेवाला है

(१) सुपात्रदानः—सम्यक् प्राणीको दान देना उसमें सुपात्र दान कहते
हैं यह प्राय सर्व त्यागी मुनिराजके वास्तेही संघटित है और किसी तौरपर
देशविरती शुद्ध आचर्यके जी घटित हो सकता है देखिये पवित्र मुनिराजके
दान देनेसे इस प्रकार लाज होते हैं—

(श्लोक)

दारिद्र्यं न तमीकृते न जजते दौर्गत्यं मालम्बते ।
नाकीर्तिर्न पराजवोऽज्जिलषते न व्याधिरास्कन्दति ॥
दैन्यं नाजीयते डनोति न दरः क्लिशन्ति नैवा पदः ॥
पात्रे यो वितरत्यनर्थं दलन दानं निदानं श्रियाम् ॥१॥

जावार्थः—जो जव्यात्मा अनर्थोंको दलन करनेवाले कल्याणकोष रूप
सुपात्र दान देते हैं उन्हें दरिद्रता गिरफ्तार करनेकी इच्छा नहीं कर सकती
अर्थात् सदैव लक्ष्मीवन्त होते हैं तथा डर्गतिके सेवासे पृथक् रहते हैं यानी
सदैव सन्नति प्राप्त करते हैं एवम् अपकीर्ति उन्हें आश्रयण नहीं कर सकती
यानी सदैव यशस्वी होते हैं और क्लिती उन्हें स्वाधीन करनेकी अजिलाषा
नहीं कर सकती है अर्थात् सदैव अलज्य लाजकी प्राप्ति होती है तथा व्याधि
उन्हे बाधित नहीं कर सकती यानी सदैव कुशलतामें निवास करते हैं एवम्

दीनता उन्हें पंकेट नहीं सकती अर्थात् सदैव 'अमीरात' जोगते हैं और रोग उन्हें पीड़ित नहीं कर सकता यानी हमेशा निरोगाऽवस्थाको धारण करते हैं तथा आपदा उन्हें क्लेशित नहीं कर सकती अर्थात् हमेशा निराबाध आनंद करते हैं; यहाँ तक वे दानेश्वरी सुखी होते हैं कि अन्तमें क्रमशः अचिरात् परमपद (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं

इस विश्वज्जरमें अगर निष्पयोजन उपगारी हो तो प्रायः आधिभ्यतासे एक पवित्र जैमुनिराजही हो सकते हैं—इन्हे वस्त्र, पात्र, आहार उपाश्रय और जेपजादि दान देनेसे इतना तांत्र पुण्य सचय होता है कि जिससे शीघ्रही निर्जराकी सजावना है

३ अनुकम्पादानः—किसी जीवपर करुणा लाना उसे अनुकम्पादान कहते हैं—यथाः—किसी अतिथी, निराश्रय गरीबको आहारपानी देकर उसकी आत्माको सतोष करना अथवा बस्त्रादि देकर धूप, ठण्डसे बचाना एवम् अन्य जीवको दुःखी देखकर दिलमें दिलगिरी लाना कि हे प्रजो! किसी प्रकार यह जी सुखी हो जाय तो उत्तम है

४ उचितदानः—इनियार्थी नियमाऽनुकूल देना उसे उचित दान कहते हैं यथाः—ग्रहिन, पुत्री, जन्मीजी, जानेजी वगैराको देना

५ कीर्तिदानः—अपने यश निमित्त देना उसे कीर्तिदान कहते हैं यथाः सदा व्रत खोलना जहाँ चाहे गरीब चाहे 'अमीर' कोई आल मिलती हुई वस्तुको निराश्रय ले जा सकता है अथवा चारण जाठको दान देना एव अपनी नामवरीके लिये 'दीप' वगैरामें 'बहुतसा' इव्य दे देना 'वगैरा' सर्व कीर्तिदानमें समावेश है

उन उपरोक्त पाँच दानोंमेंसे आप, पूज्य गुरुवर्य अजयदानमें असाधारण प्रयत्नशील थे आप परमोपकारी अपने-अतुल उपदेशद्वारा जिन्हके लोलुपी मासहारियोंका मास खाना तुम्बाकर जीवोंकी रक्षा करवाते थे तथा बध होते हुवे माणिकी ब्रह्मके हेतु बनता-हुवा उत्तम-उपचार करते थे तथा ज्ञात्र अजय दानमें तो आपका एक अलौकिकही दृश्य था; किसीको इव्य-

सनोंसे अलग हटाकर सद्मार्गमें प्रवृत्त करनेके लिये तथा गृहस्थाश्रमके अ-
सह्य डःखसें बुझा लेनेके वास्ते आपत्रीका प्रशसनीय प्रेम थाः—

वर्तमानमें कइ एक साधु, साध्वी मौल लेकर अथवा इर्पाद्वारा अपनी
समुदायकों बढानेके हेतु एवम् अपनी सेवा करवानेके खातिर वा जगतमें नाम
वरीविस्तीर्ण करनेके लिये शिष्य समुदायका संग्रह करते हुवे पतीत होते है
वे हमारे महाऽनुज्ञाव इतनाजी नही सोच सकते कि ऐसी कर्तूतोंसे क्या हमारा
या शिष्य समुदायका वा शामनका जला हो सकता है ? किन्तु सच है !
अबोध जङ्गलका स्वजावही ऐसा होता है

हमारे वे पूज्य दयानिधि किसी प्राणीके परमोपकारके निमत्तही गृहस्था-
श्रमके गहरे डःखसें मुक्त कर अपने पवित्र चरणाऽनुज्ञोंका शरण देते थे अ-
र्थात् पवित्र समय प्रदान करते थे और उसकी उम्र पर्यन्त मात पिनासें जी
अधिक लालना पालना करते थे और सम्पद् ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य का आ-
राधन करवा कर कृत कृत्य कर देते थे

प्यारे ज्ञान रसिकों ! आपको यह बखुबी रोशन होगा कि ज्ञान दानसें
बढकर इस जगद्वयम कोई दान नही है चूँके इस दानसे सवे दानोकी साफ-
व्यता होती है

आप पूज्य गुरुवर्य इस विषयसें जलीव प्रकार सुपरिचित थे कि ज्ञानके
बगेर सर्व शून्य है इसलिये प्राथमिकाऽवस्था ज्ञान दानसेंही विज्ञूषित
करना चाहिये ताके अन्तिमाऽवस्था पर्यन्त निराबाध अलज्य दानकों
हासिल कर सके

आप सामान्य ज्ञान दानसें सत्क्रियामें प्रवृत्त कराकर शुद्ध, देव, गुरु
और धर्मके निर्मल स्वरूपकों उसके हृदयाऽङ्कित करते थे पश्चात् विशेष ज्ञान
दानसें आगम रसपान कराकर ध्याता, ध्येय और ध्यान इन तीन वस्तुओंका
पवित्र स्वरूप बतलाते थे उसका किञ्चिद् विवरण इस स्थल पर पाठकोंके
अग्निमुख करता हूँ

(१) ध्याताः—ध्याने वाले (ध्यान करने वाले) महानुभावकों
याता कहते हैं

ध्याताओं मुख्य तीन विषयोंमें सदैव पृथक् होना चाहिये जिससे कि
उर्जय मन चल विचल होकर निगमग्रन्थके फॉसमें गेर देता है वे ये हैं:—१
२ श्रुत ३ अनुज्जृत ये प्रायः वगेर चिन्तन कियेही स्मृति पयमें आ
जाते हैं यथाः—

कोई एक प्राणी हवा खोरी करता हुआ जा रहा था उसने नगराधिप-
तेकों वड़ेही जुलुगके साथ शहरके पीछे बीच किसी गुलजार बाजारमें नि-
कलते हुये देखे आगे बढ़कर क्या देखता है कि उसका एक असीम प्रेमी
सम्पत्तके किनारे पर खड़ा हुआ राह देख रहा है यह तत्काल स्थानाऽऽपन्न
हुवा दोनोकी चो नज़र होतेही हर्षित नेत्र गद २ ज़र आए और स्नेहलतासें
गुंथी हुइ शब्द श्रेणी खिल उठी इस प्रकार वार्त्तालापसें दोनोके हृदय प्रेम
रससें आपूरित (धवायब) होगये अत्र वे दोनो बाजारसें अनेक जोगोपजो-
गीय पदार्थ खरीद कर एक मनोहर वाटिकाके अन्दर जा पहुचे वहापर अ-
नेक सुन्दर पुष्पाञ्चित वृक्ष अपनी अजीब शौजाको झलका रहे थे वें दोनो
प्रेमी एक पवित्र स्थानपर विश्रामित हुवे और उन जोगोपजोगीय पदार्थोंको
उत्कट इच्छा द्वारा सेवनकर आनंद रसमें निमग्न हुवे यान्हेही समय पश्चात् वे
दोनो महानुभाव अपने २ मकानपर सानद पहुच गए

अत्र वह महानुभाव (जिसका क्रिजिक हम ऊपर कर चुके हैं) ध्यानाऽ
वस्थामें सलग्न हुवा इस समय वगेर विचारेही वह राजाकी सवारी (बरघोड़ा)
और मित्रकी मनमोहन वाणी एव इन्डियोंको सुखदाई स्वाय पदार्थोंदि स्मरण
हुवे, मनकों बहुत दवाता है किन्तु बारंबार वे विषय सन्मुख हंते हैं इस प्रकार
कइ बार हटाने पर जी वे अपनी कटिबद्धतामें पराजय न हुवे और अन्तमें
उसे व्यान ऋष्ट कर दिया इस लिये मेरे प्यारे ध्यान रसिकों! इन प्रबल
बाधक निमित्तोंसें सदैव पराङ्मुख होना चाहिये

(५) ध्येयः—जिसका ध्यान किया जाय उसे ध्येय कहते हैं

हमको वैसेही ध्येयकी आवश्यकता है कि जिससे बढ़कर जगद्वयमें नहो, राग देपके फाँसमें जख्मे हुवे ध्येयके ध्यानेसे आत्मिक अनुभव निरंतर दूर रहता है चूँके जो खुद अनेक प्रपञ्चोंमें ग्रसित हो रहा है और अपना जला करनेकी वाज्ठा कर रहा है, वह हमारा जला हरमीज नहीं कर सकता, हमें ऐसे ध्येयका ध्यान करना चाहिये कि जो अक्रोधी, अमानी, आमयी और अलोत्ती हो तथा अरागी, अदेषी, अक्रामी और अक्षरी हो एवम् अकपी, अक्षय, अधिनाशी और अगोचर हो तथैव अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र और अनंत वीर्यमाही जोक्ता हो अर्थात् निरंजन, निराकार और ज्योति स्वरूप हो ऐसे सिद्ध जगवान् जोकि अनंत गुणगणाऽलङ्कृत है वेही उत्तम ध्येय होना चाहिये

३ ध्यानः—सम्यक् विचार या सम्यक् चिन्तनको ध्यान कहते हैं जैसे—

हे नाथ ! आप इस प्रकार समस्त डःखोंको निरासेन (नष्ट) कर अनंत सुखोंमें जील रहे हो मैं अनादि कालसे चतुराष्ट लक्ष जीवा योनीमें जमण करता हुवा अनेक डःखोंसे डःखित हो रहा हूँ मैंने अनेक वस्तु सुपात्रादि दान दिये, शील व्रतमें सर्वथा निमग्न रहा, उग्रतपस्याकी, शुभ्र जावनाजी जाइ किन्तु वे सर्व क्रियाएं अनुपयोग्य दारा अज्ञान कष्ट क्रियाकी श्रेणी प्रतिपन्न हुई प्रतीत होती है

हे प्रजो ! किसी दिन तुमकी ऐसी दशामें थे तो क्या वज्रह है कि मैं यही रखू रहा हूँ और आप शिवपद (मोक्ष) को प्राप्त होगए इस तरह नाना प्रकारकी आशङ्काए करता हुवा विचारता है कि हे जगदाधार ! आप उन अष्ट कर्माँके, व चेतनके निज स्वरूपों से जलीव प्रकार, परिचित होगए थे जिससे शीघ्रही उन घोर अष्ट ङ्गोंको दूर हटाकर आत्मीय स्वरूपमें लीन हुवे

मुझकोही इसही प्रकार इन विषयोंसे ज्ञात होना चाहिये कि कर्म और चेतनका संयोग कबसे है इन्होंने इस आत्माको कैसे गिरफ्तार किया, कर्मबंधनके क्या प्र निमित्त हैं उन्हें रोकनेमें कौन-सी सम्यक् क्रियाओंको सिवन करना चाहिये यानी आश्रवकों निरुद्ध कर संवर किस प्रकार करना चाहिये संवर होनेके पश्चात् सत्ता (खजाना) में रहे हुवे कर्माँकी किस प्रकार निर्जरा

नष्ट) करना चाहिये इतमें विषयोंको जत्र तक सम्यक् प्रकारसे न जाने, न
 रहे और आचरण न करें तब तक आत्माका निज स्वरूप प्रकट होना
 विथा डःसा-य है यह निर्विवाद पक्ष विद्वयोंकी बुद्धिमें प्रकट सिद्ध है इस
 कार उत्तमोत्तम ध्यान करना चाहिये

गुणानुरागियों ! उपरोक्त ध्याता, येय और ध्यान स्वरूपसे आपको
 वतः सिद्ध हो गया होगा कि वे कैसे दानवीर मुनिराज थे

इतनाही नहीं किन्तु कालानुसार निरालंबन ध्यानकी जी सम्यग् विप्र
 तलाते थे इतने विवरणसे आपको यह निराशय विज्ञात हो गया होगा कि
 किस प्रकार विशाल ज्ञानी व दानेश्वरी महात्मा थे मै इस बातको जाहिरा
 ह सकता हूँ कि जो तटस्थ अनुजवी महात्मा है वे इस विषयको श्रवण कर
 पने मुक्त कण्ठसे प्रशंसा किये बगेर हरगिज न रह सकेगे अहाहा अन्यहो!
 आपकी दान महिमा जगदाधार है सज्जनो ! अत्र मै आपके शील प्रजावका
 कीचरणन पाठकोंकी सेवामे पेश करता हूँ

॥ शीलका महा प्रजाव ॥

स्त्रीके समस्त विकारी अद्रोपाङ्गीय सेवनके त्याग स्वजायको शील
 हते है

आप पूज्य गुरुवर्य आवाल ब्रह्मचारी थे यानी 'वाल्याऽऽस्थासेही स-
 यक् प्रकारसे शील व्रत पालन करते थे वृक्षा स्त्रीको अपने माता तुल्य, यु-
 रको बहिन सदृश और बालिकाको अपनी पुत्रीवत् शान्त दृष्टिसे अवलोकन
 करते थे काम रससे पूरित स्त्रीकथासे तो आपको स्वाभाविक ही घृणा थी
 हि अपमरा जी अपने विकारी अवयवोंको हाव जाव पूर्वक दिखलाकर
 शीज्जत करनेका क्यों न सहास रखती हो किन्तु वे हरगिज चलायमान नहीं
 सकेते थे काम विकारके जितनेही निमित्त हैं उनसे आप सदैव सर्पतः तट-

स्य रहते थे आप पूज्य ब्रह्मचारी निम्न लिखित नव वामों (किला-नियम)
को वही पवित्रतासे पालन करते थे

॥ पवित्र नववडोका विचार ॥

(गार्था)

वसही कहानिसिद्धि दिय । कुम्भितर पुत्र कीलिए पणिए ॥
अइ मायाहार विज्ञूपणाई ॥ नवचंनचेर गुत्तिओ ॥ १ ॥

अर्थः—१ वस्ती २ कथा ३ निसिद्धा ४ दृष्टि ५ कुम्भितर ६ पूर्वक्रीडित
७ परिणती ८ अतिमात्राऽहार ९ विज्ञूपण ब्रह्मचर्यकी इन नौ वामोंको गोप
कर रखना अर्थात् इन नौ विषयोंको सर्वथा साग करना

१ वस्तीः—वे पूज्य ब्रह्मचारी ऐसे स्थानपर मुकाम नहीं करते थे कि
जहाँ पशु, पंरुक (नपुसक) और स्त्री निवास करती हो, कारणकी “मार्जर
मृपकवत्” दोषकी प्राप्ति होनेका अनुमान है देखिये जैसे मार्जार (बिल्ली)
मृपक (चूहा) को देखते ही शीघ्र उसे ग्रहण करनेको उपदती है तैसे ही
तिर्थचोंको संजोग करते हुवे देख मनोवृत्ति कामवश हो जाती है—इसही प्रकार
स्त्रीके विकारी अवयव देखनेसे प्राणी कामातुर हो जाता है तथैव पुरुष, स्त्रीसे
प्रथम कामाग्निसे वारण करनेवाले नपुसकके आचरणोंसे दिल चलविचल हो
जाता है; लिहाजा ऐसे कामोत्पादक स्थानको वे महातुजाव सर्वथा साग करतेये

२ कथाः—वे अविकारी ऋषीश्वर स्त्रीके प्रति हास्य कथा व काम कथा
कजी नहीं करते अथवा अन्यके साथजी ऐसी कथाओंको सर्वथा निवारण
कर ररकी थी, चूँके ऐसी प्रवृत्तिमें “नीवृवदनवत्” दोषकी सजावना है—जैसे
प्राणीको नीरू देखते ही वदन (मुख) में आम्र रस व्याप्त हो जाता है य-
द्यपि उसे देखा मात्र ही है खाया नहीं है तदपि उसकी स्वाभाविक प्रकृती
ऐसी ही है तसे ही स्त्रीको सेवन नहीं की है किन्तु कथा मात्रसे ही उसके

हृदयमें विकार व्याप्त हो जाता है इस ही लिये वे बढजागी इस विकारी विषयसे हमेशा पृथक् रहते थे

३ निःसिद्धाः—वे मुनीश्वर जिस स्थलपर स्त्री बैठी होती उस स्थान पर दो घटिका (अफ़तालीश मिनिट्स्) पर्यन्त नहीं विराजते क्यों की वहाँ पर “अग्नि घृतवत्” दोषका अनुमान है जैसे अग्नि पर घी रखनेसे तत्काल पिघल जाता है वैसे ही स्त्रीके स्थानकी उष्णता लगनेसे रुका हुआ काष्ठवत् विकृशित हो जाता है अर्थात् जिस स्थान पर स्त्री बैठी हो वह स्थल उसके शरीरकी गर्मासे तप्त हो जाता है वह आतप लगनेसे मनुष्योंके खयाल होता है की यहाँ पर अमुक स्त्री बैठी थी इस तरह शृंगारोंसे अलङ्कृत थी, इस प्रकार शारीरिक मनोङ्क अवयवोंसे मुशोन्नित थी इत्यादि चिन्तनसे कामाग्नि उठल पडती है कारण वे सौजागी ऐसे स्थानका कटापी आश्रय नहीं करते थे

४ दृष्टिः—वे योगेश्वर स्त्रीके प्रति कजी चोनजर (विकार दृष्टि) नहीं करते थे मतलब की ऐसा करने पर “सूर्य नयनवत्” दोषकी प्राप्तिकी सजावना है जैसे सूर्यको देखनेसे शीघ्र ही नेत्रोंसे जल बहने लग जाता है इसही तरह स्त्रीसे चो नजर करने पर वह अपने कटाक़ वाणोंसे ऐसा विचल करती है कि काम रस उसके हृदयमें बहने लग जाता है इस वास्ते वे सागी आत्मार्याँ ऐसे उग्रचरणसे निरतर जुदा रहने थे

५ कुट्यन्तरः—वे हृदयत धारो जैसे स्थानपर निवास नहीं करते कि जहा स्त्री पुरुषके शयनगृहसे केवल एक टट्टी (कच्ची जीत वा घास बगेरासे बुनी हुई टाटी) का ही व्याघात हो; कारण की ऐसी व्यवस्थामे “मेघ मयूरवत्” दोष का शोका है जैसे मेघकी गर्जाहृदय मुनकर मयूर अति आनन्दित होता हुआ उत्साह पूर्वक वचन कलाप करता है तैसे ही उस शयन गृहमें रहे हुवे स्त्री पुरुषके काम क्रिया विषयिक वार्त्तालाप श्रवण कर काम रसमें ऊलिते लग जाता है और अपनी तीत्राऽजिलापादारा वैसे अनर्थोंमें मशगूल हो जाता है इस वजहसे वे आत्माऽन्धुयाई ऐसे आवास का ससर्ग तक नहीं करते थे

६ पूर्वक्रान्तः—उन निर्मल धर्मावतारकों इस विषयके विचारमात्रकी

आवश्यकता नयी कारणी की आप स्त्री संसर्गसे सर्वथा तटस्थ थे. तदपि इस वाक्का खुलाशा करना जरूरी है:—ब्रह्मचारी पुरुष पूर्वकृत स्त्रीकी संजोग क्रीड़ाकों स्मरण नही करे यानी ऐसा न विचारे कि अहाहा ! मैं पहिले स्त्रीके अमुक अवयवसे इस प्रकार आनदित होता था, अमुक अवयवसे उस तरह रसाऽऽस्वादन करता था और अमुक अङ्गसे गाढ़ सुखमे लीन हो जाता था वगैरा १ गरजकी जितने ही अङ्गनाके साथ विकारी जाव है उन्हे स्मृतिपथसे सर्वथा निकन्दन कर दे; कारण की ऐसा न करनेसे “पंथी तक्रवत्” दोषका सदेह है जैसे:—

दो मुसाफिर अपने रोजगार निमित्त देशान्तर जा रहे थे रास्तेमें किसी एक ग्राममें एक वृक्षाके मकान पर ठहर गए, गृष्म ऋतुके हेतु मार्गश्रमसे पीड़ित हो गए थे उन दोनोने शिवलोपचारके निमित्त तक्र (ठाच) पान करली कुठ टाश्म ठहर कर अपने इष्ट शहरकों चले गए पीठसे मांकरी क्या देखती है कि उस तक्रमें सर्प का गरल पमा हुंवा था यह व्यवस्था देख उसके दिल मे सदेह हुवा कि अवश्य वे दोनो घटाउ मर गए होंगे

कितनाक काल बीत जानेपर वे मुसाफिर लौटते हुवे उसही के यहाँ ठहरे मोकरीने देखकर कहा अरे मेरे वीराओं ! क्या तुम अब तक जिन्दे हो ! यह अजुन वचन सुन उन दोनोने निज हकीकत जाननेकी विज्ञप्ति की उसने नाग गरलके सर्व हाल सुनाए सुने ही वे मुसाफिर हिचकने लगे और वार १ यह कहने लगे कि अरे वापरे ! इस्में क्या विषधाका गरल था हमारे रोम १ में जहर व्याप्त हो जाता अरे मज्जो ! हम अवश्य मर जाते इस प्रकार असद्यःखके शब्द कहते १ धडाकसे दोनोके दम निकल पमे, तैसे ही पूर्वके कामजोग याद करनेसे कामाग्नि तत्काल प्रज्वलित हो जाती है लिहाजा शीलवान्कों ऐसे विकारी विषयोंकों देश निकाला दे देना चाहिये

१ परिणती—रसविकार:—वे शान्त गुणधारी अकारण कृत्री ग्लिष्ट जोजन नर्त्री करते थे; क्योंकि ऐसे स्वाद्यमें “घृत ज्वरवत्” दोषका जय है जैसे किसीकों बुखार चला हो उस समय यदि सरस जोजन दिया जाय तो ज्वर

दृग्गित हो जाता है इसही तरह मिष्टानादि ग्लिष्ट आहार करनेसे कायश्चर्य
 देदिप्य हो जाता है इस लिये वे धैर्यवन्त ऐसे विकारी जोजनसे सर्वथा
 पृथक् रहते थे

सेङ्गनो ! यहाँ पर कोई भ्रम करता है कि यदि अहारमें ही यह सामर्थ्य
 है तो क्योंकर श्री स्थूलिज्ज स्वामीकों चलविचल न किये क्यों की वैश्यागृह
 के चातुर्मासमें आप हमेशा पदरस जोजन करते थे

उत्तरमें विज्ञात हो कि नियम सार्वजनिक होता है किसी एक व्यक्तिके
 वास्ते नहीं हो सकता वे महानुभाव दिव्य ज्ञानको धारण करनेवाले एक जि-
 तेन्डीय वीर पुरुष थे जहाँतक प्राणी उच्च श्रेणीकों प्राप्त न हो तहाँ तक मन
 कों स्थिरकरनेके हेतु इन नवों वान्मोंको पालन करना चाहिये; इससे यह न
 समझियेगा कि मन वशमें होनेके पश्चात् विकारी निमित्त सेवन कर सकता है;
 किन्तु वैराग्य रसमें मनोवृत्ति स्थिर होनेके बाद कदाचित् कारणवश या स्वा-
 जायिक विकारी निमित्त समाप्त हो जी जाँय तो वे सर्व वैराग्याऽवस्थामें ही
 समिलित हो जाँयगे प्रायः तो वैराग्य रसमें झीलने पर विकारी निमित्तों की
 प्राप्ति ही असंभवित है

७ अति मात्राऽहारः—वे संतोषी धर्मात्मा रुचिसे अधिक अहार नहीं
 करते थे किन्तु प्रायः उणोदरी ही किया करते थे जिसका कि सुलाशा हम
 तप प्रकरणमें करेंगे वजह कि “जोजन अमनवत्” दोषकी देशत है जैसे सेर
 जरके वरतनमें सवासेर असन (नाज़) माल दिया जायतो उसमें नहीं ठहर
 सकता, वैसीही आघातेर अहार करनेवाला यदि पौन सेर कर लेतो उनप-
 तता अपने भवत स्वल्पको प्रकट कर देती है जिमसे कामाग्नि उठलने लग
 जाती है इसही लिये वे दयालु मामूली आहार करते थे अर्थात् अधिक अ-
 हारसे सदैव आपको घृणा थी

८ विज्ञप्ताः—वे परम वैरागी आत्मा अनुजयी शारीरिक शोभा कदापि
 नहीं करते थे कारण की “मृत्तिका रत्नयत्” दोषकी सजायना है जैसे रत्न
 जय तक मिट्टिसँ लिपटा हुआ रहता है तब तक उसे ग्रहण करनेकी कोई इच्छा

नहीं करता और जब वह मसाले द्वारा स्वच्छ कर दिया जाता है तब हर एक उससे लेनेकी दिली इच्छा करते है तथैव जबतक शरीर व वस्त्रादि साधारण स्थितिमें रहे हुवे है तब तक कोई बुरी निगाह नहीं भाल सकता नखुदकी इच्छा विकारी होनेकी संज्ञावना है और यदि शरीर चकाचक है, अंतर फुले लसें मर्दित है, वक्षिया वस्त्राद्यलङ्कारोंसे अलंकृत है तो उस हालतमें अन्य स्त्री वगेरा जी कटाह् बाण विक्षेप करती है और खुदका जी टिल चलायमान हो जानेका खोफ है इस लिये उन मोक्षाऽजिलापी धर्म धुरंधरने इस उष्ट्र विषय को नासिका मलयत् परित्याग कर दिया था

उपरोक्त नवयामोंसे आप समझ गए होंगे कि ब्रह्मचर्यके रक्षा निमित्त कैसे उत्तम मार्ग है, शील व्रत खण्डन होनेके अनेक निमित्त हैं किन्तु इन नव प्रबल निमित्तोंको जो नष्ट कर देता है वह प्रायः अग्रश्य दृढ शीतवन्त होसकता है यह स्वतः सिद्ध है कि कारण के बिनाशाऽवस्थामें कार्योत्पन्न नहीं होसकता देखिये कहा जी है:—“निमित्ताज्जाये नैमित्तिकस्याप्यज्ञावः” कारणके अज्ञावमें कार्यका जी अज्ञाव होता है यहाँपर वस्यादि नौ विषयोंको सेवन करना यह निमित्त है और मैथुन सेवन नैमित्तिक है वास्ते उन्हेंके दूर करनेसे मैथुन स्वतः नष्ट हो जायगा

हा अलवत्ता ! इतना अवश्य है कि कामदेवको जीतना कुछ सहन नहीं है जिस वरुत वह खींचकर बाण मारता है घडे १ ज्ञानी, ध्यानी और महात्मा नाम धरानेवाले धर १ धूजने लग जाते है देखिये उसके बाणोंके अन्दर किस प्रकार शक्ति है

(श्लोक)

उन्मादनस्तापनश्च । शोषण स्तंजनरतथा ॥

संमोहनश्चकामस्य पञ्चबाणाः प्रकीर्तिताः ॥ १ ॥

ज्ञावार्थः—उन्मत्तता, आतपता, शुष्कता, सन्धता और मोहित दशा; इस प्रकार कामदेवके पञ्च बाणोंसे प्राणी विव्दल दशाको प्राप्त हो जाता है

व्याख्या:—(१) उन्मत्तता:—जिस वरुत कामदेव अपने बाणकों तान कर मारता है उस वरुत प्राणी मदनोन्मत्त हो जाता है । इस वरुत माता, बहिन, पुत्री, स्व स्त्री, पर स्त्री और बेइया चगुराका कुठ जी जान नहीं रहता है जाति मर्यादा, कुल मर्यादा और अपनी अमूल्य इज्जत आवरुसें भ्रष्ट हो जाता है अपने पवित्र गुरुवर्योंकी और लौकिक लज्जासें बिलकुल नहीं मरता जिसने अधोवस्त्र मस्तक पर पहन लिया वे बेशरम कर्त्री नहीं शरमाते कहा है:—

(और)

शरमको जी यहाँपर । शरम आय है ॥
जो बेशरम हो । वे न शरमाय हैं ॥ १ ॥

(२) आतपता:—जिस समय प्रद्युम्न अपना बाण खीचकर मारता है उस समय आदमीके हृदयमें ज्वाला लग जाती है जिस प्रकार एकसो पाँच फ़िरीके बुखार वाला डःखी होता है उससें कितने ही गुणा प्राणी कामज्वरसें पीमित हो जाता है

(३) शुष्कता:—जिस वरुत मदन अपने बाणको खीच कर मारता है उस वरुत मानवका शरीर सूक जाता है क्योंकि चिन्ता क्लान्ति कलेजेमे पैठकर रक्त पीती है यानी उससें रात दिन कामिनीकी प्रबल इच्छा मनी रहती है किन्तु जाग्य हीनतासें स्त्री ससर्ग नहीं होता—अथवा कामदेवसें पीडित होनेके हेतु प्रियतमाको चारंवार सेवन करनेसें शरीर पिंजर हो जाता है जिस प्रकार जलसें जरी हुई पुष्ट मसक पानीके निर्गमन होनेसें सूक जाती है इसही प्रकार वीर्य क्लयसें शरीर पिंजर हो जाता है

(४) स्तब्धता:—जिस अवसरमें मन्मथ अपने बाणकों तार कर मारता है उस वरुत उसका शरीर सुम्प हो जाता है जैसे किसीको अचानक ड ख आ गिरे और वह दिग्भ्रष्ट हो जाता है इन्ही प्रकार उमकों कुठ जी कार्य नहीं सृज पढ़ना एक स्त्री विनासही बाडा में ही सलम रहता है

(५) मोहित दशाः—जिस वरुत अनङ्ग अपने बाणकों झपटकर मारता है उस वरुत प्राणी मोहसे विह्वल हो जाता है जैसे मदिरा (Wine) पान किया हुआ आदमी पागल हो जाता है इसही तरह विलासिनीमें गाढ़ मोहित हो जाता है और इस अवस्थामें स्त्री जिस तौर नाच नचाये उसही तरह नाचता है—धन्य हो ! पुरुषार्थ वारी हों तो ऐसे ही हो

उपरोक्त व्याख्यासे आपको अजी तरह रोशन हो गया होगा कि कामदेवके कैसे तीक्ष्ण बाण हैं अन्य बाणके लग जानेसे तो जीवित रहनेका जरोसा है व शीघ्र आराम होनेका जी सम्भव है किन्तु इस असह्य डकार बाणके लगनेसे आदमी मूर्छित हो जाता है और प्रायः इसके वशीजत होकर इसकी आङ्गामें चलना पड़ता है अर्थात् डष्टाचारकों आचरण करना पड़ता है इन बाणोंके घाव सहन करते हुवे जी युद्धसे न हटनेवाले बहुत ही कम प्रतीत होते हैं इस डनियामें कइ एक अतुल पराक्रमी विद्यमान है किन्तु इस जगह आते ही सबके हाथ परे ठामे पड़ जाते हैं सज्जनो ! कामदेवके अजिमानकों गलन करनेवाले विरले ही वीर रत्न हैं देखिये किसी अनुजवी महात्माका कथन है

(श्लोक)

अत्तेजकुम्भ दलने नुविसन्तिशूराः ।

केचित्प्रचण्ड मृगराजवधेऽपि दक्षाः ॥

किन्तु ब्रवीमिवलिना पुरतः प्रसह्य ।

कंदर्पद्वर्ष दलने विरला मनुष्याः ॥ १ ॥

जावार्थः—हे शूरीरों ! इस विश्वमें कइ एक ऐसे बाहादुर (brave) है कि मदनमत्त हस्तिके कुंज स्थलकों विदारणकर डालते हैं तथा कइ एक ऐसे पराक्रमी हैं कि प्रचण्ड सिंहकों टंग्गो पकड़ कर चीर मालते हैं किन्तु हम यह दावेके साथ कह सकते हैं कि उर्जय कामदेवके मदकों दलन करनेवाले विरले ही पुरुष होंगे

वस्तुतः कामदेव ऐसा ही घोर शत्रु है जब तक प्राणी इसके फॉससैं पृथक् नहो पवीत्र शील व्रतकों हासिल नही कर सकता और इस महाव्रतके न होने पर प्राणी तप, जप, ज्ञान, ध्यानादि कुठ जी सम्यक् प्रकारसैं करनेको समर्थ नही हो सकता देखिये:—

जिस प्रकार बगैर राजाकी रईयत नष्ट ञष्ट होजाती है और कोई जी यथावत् कार्य करनेकों समर्थ नही हो सकती इसही प्रकार वीर्य राजाके न होने सैं देह प्रजा परवाढ हो जाती है और कोई कार्य करनेका हौसिला नही कर सकती शरीरमें प्रधान वस्तु वीर्य ही है इसहीके प्रजावसैं यह वपु रूष्ट पुष्ट, दिव्य कान्तिवान् और निरोग रहता है और इसहीके अतुल कृपासैं स्मरण शक्ति (Memory) विचक्षण बुद्धि और दिव्य ज्ञान प्राप्त होता है तथा इसहीके परम महरसैं प्राणी अनंत शक्तिवान् होता है एवम् इसही के आधारसैं ञव्यात्मा अष्ट कर्मकों विभ्रश कर सिद्धि पदको प्राप्त करता है एक इसके न होनेसैं सर्व आशाएँ निष्फल हो जाती हैं

इस स्थल पर कोई प्रश्न करता है कि अगर वीर्यमें क्तिती होनेसैं ही शरीर बेकार हो जाता हो तो ग्राम गृहस्थों की यह दशा होना चाहिये क्योंकी अघिकाश गृहस्थ (व्याहे हुए) लोग स्त्रीकों नित्य सेवन करते है फिर क्योंकर सर्वका शरीर जर्जरीञ्जत नही दिखाई देता' लिहाजा यह उद्देश खिलाफ है

उत्तरमें विदित हो कि डनियावी यह कहावत है कि "पहिलेके मुद्दे अच्के जवान अब होंगे सो और नकाम" यानी पूर्वके वृद्धोंके मुताबिक जी अच्के युवानोंमें सामर्थ्य नही है और आइन्दा होंगे वह इससैं जी शक्ति विहीन होंगे इसका यही मतलब है कि पूर्वकालके लोग प्रथम तो यथोचित वय में शादी करते थे क्तितीय योग्य अवसरपर स्त्रीसेवन करते थे जिसकी संतान प्राक्रमी और ज्ञानवान् होती थी इस वख्त अघिकाश बाल लग होनेसैं अपरिपक्व वीर्यकों ठेम् दिया जाता है उससैं वही नुकशान है कि जैसे रुच्चे बुखारको सतानेसे होता है आपको वैद्यक नियम विज्ञात होगा कि कितनीरू

व्याधियोंको ठोकर प्रत्येक बीमारीका यह नियम है कि यावत् वह परिपक्वावस्थामें न होजाय तावत् उसका माकुल इलाज नही किया जाता तत्त्वावस्थामें स्त्री संसर्गका फल होता है तिघीय यह जी है कि इस जमानेमें प्रायः निख जोग करते है, इन लोलुपियोंके वनिस्पत तो विचारे कुत्ते और कव्वे ही ठीक समझे जा सकते है कि जो अपनी मौसिम पर मैथुन सेवन करते है. इसही लिये इस वस्तु ऐसे कामी पुरुषों की संताने बहुत कमजोर प्रतीत हो रही है तात्पर्य यह है कि अधिकांश निखजोगी गृहस्थ चलवान् होते है यह बात उपेक्षणीय है अब रहा यह की कितने लोग नित्यजोगी होने पर जी रुष्ट पुष्ट दिख पढते है उसका कारण यह प्रतीत होता है कि वे मैथुन सेवनके पश्चात् ही कुठ तारुतवर वस्तुएँ सेवन करते है अथवा अपने खानपानका पूर्णतः साब रखते है इस लिये वे कुठ १ काम कर सकते है ऐसा होने पर जी यह अवश्य है कि नित्यजोगी जो रुष्ट पुष्ट दिख पढते है उनमेंसे अधिकतर वाह्य शक्ति मात्र ही धारण किये हुवे है अर्थात् अल्पन्तर शक्तिसँवेशक वे वञ्चित है यह अनुभव सिध है माराश यह है कि ब्रह्मचर्य न पालनेसे अवश्य ही हीन दशाको प्राप्त होते है

प्रस्तुत प्रकरणमें कोई प्रश्न करता है कि यदि शीलपर ही सर्वाधार है तो क्योंकर मुनि जनोमें पृथक् १ कृप्यता, उष्कान्ति, व्याधि, अस्मृति, बुद्धि हीनतादि दिख पढते है? चँके मुनिराज तो सदैव अरवण्म शील व्रतको पालन करते है

जवाबमें मालुम हो कि कितनेक मुनिराजमें जो उपरोक्त आपत्तियें गिरती है उसका उपचरित कारण यह प्रतीत होता है कि उनके पथ्यका साधन योग्य नहीं रह सकता और जी अनेक परीसह सहन करना पडते है इससे उनका वीर्य विगड़कर मल, मूत्र, खकार और श्लेष्मादिके जरिये क्य हो जाता है इससे उपरोक्त व्यवस्थाएं प्रतीत होती है; तदपि विशेषतः इतनी जोरदार आपत्तियें नहीं आती कि जितनी गृहस्थको होती है

हम इस डनियामें प्रायः देखते है कि कामी पुरुषका शरीर शीघ्र ही जर्ज-

रीजत हो कर बेकार हो जाता है और अखण्ड शील त्रत धारी अपने इच्छित कार्यों को निरापन्न कर सकता है इस वस्तु में सेन्नों (राममूर्ति) जो कि एक अद्भुत पराक्रमी समजा जाता है वह शील त्रतका ही महा प्रभाव है

कई एक कामी पुरुष यह कहते हैं कि संसारमें आकर जिसने स्त्री विलास न किया उसने अपना जन्म व्यर्थ गुमा दिया इस डुनियामें कामिनेसें बहुरर कोई सुख नहीं है देखिये वह गजगामिनी; चन्द्रमुखी, कमलनयनी, स्वर्ण कलशोपमित पयोधरधारिणी गजशुंभ्रान्त जङ्घा सुशोभित आदि अनेक अलङ्कारोंसें अलङ्कृत है ऐसी सुन्दरीको भुजालताओंसें गाढ आलिङ्गन कर कौन ऐसा होगा कि जा अपूर्व सुखका अनुभव न करे अर्थात् आनन्द रसमें जीलनेकी वाँछा न करे ! जिसकी युवाऽस्याका यौवन ऊर रहा है वह अपने शरीरको यदि अन्य तपादि क्रियाओंमें शोषण करे तो क्या उससें बहुरर कोई मूर्ख शिरोमणि हो सकता है ? इसादि अनेक आक्षेप कर वैराग्य ऋष्ट करनेकी चेष्टा करते हैं

मेरे प्यारे वैरागियों ! क्या उपरोक्त कथन सत्य है ? यदि ऐसा ही हो तो अनर्थोंसे वचन । प्राणियों को सर्वथा असम्भव हो जायगा मैं यह हर-तीज् न्यास नहीं कर सकता कि मेरे प्यारे निरागी महाशय इससें स्वीकार करें तीजिये ज़रा उन कामान्ध पुरुषों के लिये नेत्राञ्जन देखियेः—

सुमुहों ! स्त्रीके समस्त शरीरमें तीन अङ्ग विशेष विकारी हैंः—१ मुख २ जनन ३ जङ्घा स्थान इन तीनोंसें आदमी पागल होकर इसदी में मोहसा सुख मानता है इन तीन अङ्गोंके अन्दर किस प्रकार डुर्गन्धिन मल ज़रा हुवा है यह सुन बुद्धिजन तत्काल तटस्थ हो जाते हैं देखिये किसी वैरागी महा-मा का कथन हैः—

(श्लोक)

स्तनौमास ग्रन्थीकनक कलशावित्युपमितौ ॥

मुखंश्लेष्मागारं तदपि च शशाङ्केन तुलितम् ॥

स्ववन्मूत्रंक्लिन्नं करिवर करस्पर्धिजघन ॥

महोनिद्यं रूपं कविजन विशेषैर्गुरु कृतम् ॥ १ ॥

जावार्थः—स्त्रियों के स्तन मास के लोंदे है उन्हें सुवर्ण कलशकी उपमा सें उपमित करते है; मुख थूक और खकारादिका ग्रह है उसें चन्द्रमाके सदृश बतलाते है और टपकते हुवे मूत्रसैं जीगी जह्वाओंको श्रेष्ठ गजके शुण्मा समान कहते है देखिये स्त्रियोंका पुनः १ निन्दनीय स्वरूप होनेपर जी कवियोंने कैसा बड़ाया है क्या कवि कुशल तुम्हें इस प्रकार अघटित उपमा देते लज्जा प्राप्त नहीं होती ?

व्याख्याः—स्तन जो कि पुष्ट और उत्तंग दिख पड़ते है उनमें केवलमा सजरा हुआ है यदि किसी माणिकों मासके मले हाथोंमें देकर उन्हें मयन करनेके वास्ते कहा जाय तो क्या वह स्वीकार करेगा ? नहीं १ स्वीकार करना तो दूर रहो किन्तु स्पर्श तक न करेगा वस इसही तरह विवेकी पुरुष सहे हुवे डगधित मासके लोंदे, सदृश स्तनोको मर्दन करनेकी कटापी इत्ना नहीं करते

मुख जो कि गोरी, चमकीसैं महा हुआ दिव्य कान्तिकों झलकाता हुआ दिग्गुम्फों फिदा कर लेता है वह केवल पीक और खकारसैं जरा हुआ है अर्थात् समे हुवे वीर्य और जिष्टाके जागोंसे जरा हुआ है यदि किसी पुरुषकों ५म प्रकार सड़े हुवे वीर्य और जिष्टाके जागोंसे जरे हुवे पात्रकों ओष्ठों घारा प्रेम पूर्वक आश्वादन, करनेका कहा जाय तो क्या वह अङ्गीकार करेगा ? अङ्गीकार करना तो दूर ही रहो किन्तु ऐसा घुनने मात्रसैं ही जीमें घबराहट होकर तत्काल वमन हो जाती है वस तो इसही प्रकार ज्ञानवान् पुरुष घृणोत्पादक (कमकमी दिलानेवाला) डगधित खकारादिसे जरे हुवे मुखकों कटापि चुबन करनेकी वाँछा नहीं करते

जङ्घा स्थान जो कि गज शुण्मावत् मतीत होता है वह केवल मूत्र और लोहसैं जरा हुआ है किसी व्यक्तिकों यदि कहा जाय कि मूत्र, लोह और

वीर्यादिसे जरा हुआ कीमे जिस्मे बिलबिला रहे है ऐसे कुण्डमें, स्नान करके अपने शरीरको पवित्र करोगे क्या ? नहीं ? स्नान करना तो दूर रहो किन्तु ऐसी डर्गवनीय घात तक छुननेकी इच्छा नहीं करते, वस इस ही तरह बुद्धिवान् मल मूत्रादिसँ जरे हुवे (जिसको देखने मात्रसे कमकमी बूटती है) जङ्घा स्यानको सेवन करनेकी कदापि अजिलापा नहीं करते”

उपरोक्त व्याख्यासँ आपको मालुम हो गयाहोगा कि स्त्रीके कैसे ? डर्ग-
न्धित स्यान है तो जी हाय हाय ! ठी ठी !! मूर्ख लोग जिष्टामें मुह देनेसे
नहीं शर्माते इन्द्रियजीत पुरुषोके तो डर्जय कामदेव सदैव किरर रहता है
देखिये:—

एक समयका निरु है कि परम परमात्मा श्री पार्श्वनाथ स्वामी किसी
स्यान पर अपने कायोत्सर्गमें सन्निष्ट थे इधरसे कामदेव और रति पर्यटन क
रते हुये आ निकले—उनके आपुसमें इस प्रकार प्रश्नोत्तर हुवे:—

(श्लोक)

कोऽयं नाथ जिनोऽज्ञवेत्तववशी हूँहूँ प्रतापप्रिये ॥
हूँहूँतर्हि विमुञ्च कातरमते शौर्या वलेपक्रियाम् ॥
मोहोनेन विनिर्जित. प्रचुरसौतत्किङ्कराः केवयं ॥
इत्येव रतिकामजल्प विषयेपार्श्वप्रचुरः पातुनः ॥ १ ॥

इस अपूर्व श्लोकरा जावार्य प्रश्नोत्तरमें ही दिखलाना समुचित समजत हूँ:—

रति:—हे नाथ ! यह सन्मुख खडे हुये कौन है ?

कामदेव:—प्रिये ! ये जिन जगवान् हैं

(९४)

रतिः—क्या ये आपके वशीजुत हैं ?

कामदेवः—हे प्रतापशालीप्रिये !

रतिः—हे कायर पुरुष ! यदि हूँ हूँ करता है तो अपना शक्ति वाण क्यों नहीं ठोसता

कामदेव—हे प्राणवल्लभे ! इन महात्माने विषरूप मोहकों सर्वथा साग कर दिया है इसलिये अपन तो इनके सदैव किङ्कर है महानुभावों ! इस प्रकार रति और कामदेवकी वार्त्तालाप विषय वाले श्री पार्थ प्रभु सदैव हमारी रक्षा करो

इस श्लोकसे आपको सुविदित होगया होगा कि जिन महात्माओंने पुनः १ निन्दनीय स्त्री संसर्गकों सर्वथा परिखाग कर अखरु शील व्रत धारण किया है उनके सेवाकी इन्ड, चन्ड, नागेड जी निरन्तर वॉडा करते है एक इस शील व्रतसे अनेकशः गुण प्रकट होते है जिसका वस्तव्य भेरी सामान्य लेखनीसे बाहर है तदपि यत्किञ्चिद् उधृत करता हूँः—

(श्लोक)

हरतिकुलकलङ्कुलुम्पतेपापपङ्क।सुकृतमुपचिनोतिश्छाध्यतामातनोति।
नमयतिसुरवर्गहन्तिडुर्गोपसर्गस्त्वयतिशुचिशीलंस्वर्गमोक्षौसलोलम

जावार्थः—यह शीलव्रत कुलके समस्त कलङ्कों हरण कर लेता है तथा पापरूपी कीचरुकों विनाश कर देता है और सन् कृत्योंको वार्धित करता है तथा प्रशंशा विश्व विस्तरित करता है एवं महा भुद्धिपन्त देवताओं (इन्डादि समस्त) को नमन कर देता है तथा घोर उपसर्गोंको मार जगाता है और अन्तिममें जघन्यसे स्वर्गवास और उत्कृष्टसे अपवर्ग (मोक्ष) की विचित्र लीलाओं रचता है अर्थात् अनत सुखकारी सिद्धि पदकों प्राप्त करवाता है

उपरोक्त समस्त व्याख्यासें आपको सम्यक् प्रकारेण विज्ञात हो गया कि शीलव्रत एक कैसा उत्तम रत्न है इस व्रत रत्नको आप परमपैरागी णाऽधीश्वर अकथनीय कटिपद्मना पूर्वक पालन करते ये धन्य हो! के अखण्ड शीलव्रतका महा प्रभाव विश्व प्रशंसनीय है प्यारे गुण यों! अब मैं आपके दिव्य तपश्चर्याका पाठकोको श्लाघनीय परिचय- ता हूँ:—

॥ दिव्य तपस्या ॥

जिसके जरिये अष्ट कर्मों को तपाना यानी निर्जरना अर्थात् विनाश । उसे तपस्या कहते है जैसे काष्ठके अन्दर अग्नी डालनेसें जलबल खाक हो जाते है; इसही तरह तपस्यारूप अग्नीसें काष्ठरूप कर्म नष्टताकों होते है अर्थात् निर्मूल हो जाते है अथवा इवारोधन करना उसे तप ते है

आप पूज्यगणाऽधीश निम्न लिखित द्वादश तपका सम्यग् आचरण ते ये:—

(गाथा युग्मम्)

अणसणामुणो अरिआ । विनीसंखेवण रसञ्जाओ ।
 कायकिलेसोसंलीण । आयवज्जो तवोहोई ॥ १ ॥
 पायञ्चित विणए । वेयावच्चं तहेवसज्जाओ ॥
 जाण उत्तग्गोविअ । अग्निंतरो तवोहोई ॥ २ ॥

अर्थ:—१ अनसन २ उणोदरी ३ वृत्ति महेप, ४ तप्त्याग ५ कायलेस
 मखीनता ये ठ बाह्य तप होते हैं तथा १ प्रायश्चित्त २ प्रिनय ३ वेयावच्च
 सजाय, ४ ध्यान ५ उत्सर्ग ये ठ अन्त्यन्तर, तप होते हैं

११ इन वारह प्रकारके उग्र तपका आप पूज्य गुरुवर्य किस प्रकार आचरण करते थे उनका किञ्चित् खुलाशा पाठकोंके अजिमुख करता हूँ:—

(१) अनशन:—अहारका सागकना उसमें अनशन तप कहते हैं आप महा तपस्वीने उपवास, बेला, तेला, अछाई, पद्मकमण, मास दूग्धादि पर्यन्त बहुतसी तपस्या कर पुत्रलको निर्विकारी बनाया जिस वख्त आप उपवासादि व्रत करते थे वडे ही संतोष पूर्वक अपने कालकों निर्गमन करते थे

वर्त्तमानमें कइ एक महानुभाव उपवासादि व्रत कर खानपानकी चेष्टा किया करते हैं यानी बाहरसे तो उपवासादि के प्रत्याख्यान (नियम) कर लेते हैं औ मन उनके बाज़ारमें हलवाईयों की डकानो पर घूमा करते हैं और यह विचार किया करते हैं कि हे ईश्वर ! आजका दिन बड़ा लम्बा हो गया आज तो सूर्य जी ऊँघता २ चलता है इस प्रकार रात्रिमें जी घुनघुना हट्ट करते हैं कि कब दिन ऊगे और रूष्ट जोजन महाराणाकों मनावें साथकी साथ उपवासके दिन यह जी चेष्टा करते हैं कि कल पारणोके लिये अमुक २ रसवती जोजनकी तैयारीके लिये आजही सर्व वन्दोयस्त कर लेना चाहिये नहीं तो पारणोमें विलम्ब हो जायगा इसादि अनेक त्रिकल्प कर उपवासके फलकों नष्टकर देते हैं

सच्च है ! ऐसे उपवामादि व्रतसे कुठनी फल नहीं हो सकता इधर जरा जैनेतर लोगोंकी तर्फ फुक कर देखते हैं तो एक विलक्षण ही गम्मत नजर आती है कहावत मशहूर है कि "जैनीयोंका वास और कायाका नाश वैष्णवका वास और पैसोंका नाश"

विरले पुरुषोंको ठोकर जैनेतर लोग जब एकादशी वगेरा का उपवास करते हैं तब लड्डू, पेड़े, कलाकन्द, पेठे और सिंघाडेका हलवा वगेरा अनेक मिष्ठान पदार्थोंका सेवन करते हैं तथा आम, केले, सन्तरा, अनार, जामन, तरबूज, खरबूज, ककनी वगेरा रसाले खाकर मौज उमाते हैं एवम्

।कसमिस, पिस्ते, कालु, नेजे और वादापादि वस्तुओंको सेवन कर उग्र तपके फलकी आशा रखते है तथेव मलाईका बर्फ, कच्चा बर्फ और अमनिया ठण्डा (कच्चा) जल पानकर आनन्द मानते है कइ एक लोग दिनचर जूखे मरकर रात्रीको जोजन करते है और कइ एक ऐसा जी कथन करते है कि यदि फलहार (अन्नको ठोमकर शेष मिष्टान, मेवा, फलादि) न करे तो वह उपवास गिनतीमें नही हो सकता अर्थात् उसमें हमारे मनोवाठित नही मिल सकते है

वहानहा क्या खूब ! एकादशीकी दादी षादशी सदृश मौज उठाने पर जी यथेष्टा फलकी अजिलापा करते है उफ ! भै जूला उपवासमें जो वे फलहार करते है वह ठिक है उस दिनके जोजनका नाम वेशरू गुण निष्पन्न है सुनिये जरा 'ज्यान पूर्वक "फलहीयते इतिफलहारः" जिस जोजनसे सम्यग् इष्टता हरण हो अर्थात् नष्ट हो उसे फलहार कहते है अस्तु कुछ जी हो किसी पर कटाक करना उचित नही भै तो सीर्फ मेरे प्यारे गुणग्राही तदस्य पाठकोंको इतना ही ध्यान दिलाना चहाता हूँ कि एसे व्रतसे अपनी इष्टता हरगोज नही हो सकती उनका व्रत करना गोया दिलकों बढलाना है मुजे पूर्ण आशा है कि विद्वान् पाठकवर्ग अवश्य इस पर लक्ष देकर वास्तविक नियमकों विचारेंगे

कइ एक प्राणी अपने यशकीर्तिके निमित्त, उपवास, बेला, तेला, अठार्ड, पद्मकमण, मामकमणादि करते है कि जिससे लोग मुझे खूब, पूजे, माने, मेरी सेवा, सत्कार करें और मेरी कीर्ति डनियामें चो तर्फ फैल जाय यह जी प्रायः निष्फलरूप ही है

हमारे वे पूज्य महा तपस्वी उपवासादि व्रतके दिन कैसी ७ शुभ जावनाए जाते थे जिसें सुनकर प्राणी बैराग्य रसमें जीलने लग जाते हैं सुनिये उस दिलचस्व अपूर्व जावनाका एक अमृत विन्ड आपको जी आस्नादन कराते हैं:-

हे चेतन ! आजका दिन अहोनाम्य है आज तेरे अनंत पुण्याइका उदय है की उपवासादि व्रत उदय आया अनादि कालसे तेने अनेक योनियों अनेक शरीर धारण किये और नाना प्रकारके जोजनादि जोगकर उदर पूर-

एक, यदि उसकी गिनती करने लगे तो कई मणसे ऋणसे तक जी नहीं उठरती पानीका यदि हिसाब लगाया जाय तो समुद्रके समुद्र तक खाली कर दिये होंगे मगर तुझ अबतक संतोष न हुआ; जवान्तरकों ठोकर यदि इसही जवका हिसाब लगाना चाहें तो कुछ यथावत् पता नहीं लगता देख यह उदर कितना गहरा है सुबुह खाया शामको फिर खाली, शामको खाया सुबुह फिर खाली उपासका नाम मात्र सुननेसे दशश कोश दूर जागता है तू अन्नका कीड़ा सदैव अन्नमें ही प्रसन्न रहता है जिस प्रकार जिष्टाका कीड़ा जिष्टामे ही खुश रहता है कर्जी उसको उच्च स्थान पर पहुँचनेका कहो तो कर्जी नहीं मानता इसही प्रकार तुझे कर्जी व्रतका कहते हैं तो हृदय वज्रसा घाव परता है हे आत्मा! तूझे इतना जी खयाल नहीं होता कि ऋषजदेवादि तीर्थकर, पुण्डरीकादि गणधर श्रुत केवली, दिग्विजय आचार्य और अनेक मुनि महात्माओंने कइ एकप्रकार तपाराधन कर अपनी देहका कल्याण किया है और अन्त में यावत् उन्नत अनशन कर परम पदकों हाँसिल किया है तुझे आज उपवासादिमे इतना कष्ट प्रतीत होता है यह केवल तेरी दिढाई है तू इस वखत सतोषकों अवलम्बन कर पूर्वजोंकी अनुमोदन करके आनंद रसमें जील, तुझकों वाग् यह सौजाग्य प्राप्त नहीं हो सकेगा देख अखीर तूझे इन पौनलिक पदार्थोंसे जुदा हुए बगैर सिद्धि पद कर्जी नहीं मिल सकता तो क्योंकर अज्याससे वचित रहता है यह मानव ज्ञ, पुनः-१ तुझकों हरगीज्ञ प्राप्त नहीं हो सकता यह पौनलिक पदार्थें तेरी नहीं है क्योंकर इसमें रक्त हो रहा है अब तू इनसे तवियत हटा और सतोष समुद्रमें निमग्न हो इत्यादि नाना प्रकारसे ज्ञानना जाते हुवे अपने अमृत्यु टाडमकों निर्गमन करते थे

(१) उणोदरी:—हुदा, पिपासाऽऽपूरित जोजनसे न्यून करना उसे उणोदरी कहते हैं वे धर्मावतार, प्रायः कइ वार इच्छित जोजनसे खास, तोर, पर, (Specially), कम कर आहार, पानीसे तवियत हटाते थे और उच्चमज्ञ जावना जाकर अपने मानवजवकों सफल करते थे

(१३) वृत्ति सक्षेपः—इन्द्र, क्षेत्र, काल और जावसे रही हुई व्यवस्थाकों कम करना उसे वृत्ति सक्षेप कहते हैं

आप जवोद्धारक १ डव्यसँ तो जौगिक यानी खानपानकी वस्तुओंको संक्षेप करते तयैव औप जौगिक यानी उपधी, (उपगरण-चन्द्रादि) वगेराका नियम करते ये १ क्षेत्रमें आज इतने घरसँ ही आहार पानी लाना और न मिलने पर उपवास त्रतकर जाना तथा गमना गमन इतने क्षेत्र प्रमाणसँ अधिक नहीं करना ३ कालसँ अमुक समय पर ही गौचर्यादि लाना न मिलने पर क्षेत्रवत् ४ जावसँ उठलते हुवे क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेषादिकों उपशान्त कर दर्शनः ५ निराश्रय कृपादेना इस प्रकार वृत्तिका संक्षेप करते हुवे यह जानना जाते ये क्रिः—

हे चेतन ! इस डनियाके अन्दर मुख्य दो शत्रु है प्रथम राग द्वितीय द्वेष जिस्में जौ राग बडा ही डर्धर है इस ही घोर शत्रुने तुजे अनन्त जव रुलाया गृहस्याश्रमके अन्दर किमी समय पितासँ, कजौ मातासे, कजौ जाई, बहिनसँ, कजौ जार्यासँ कजौ पुत्र, पुत्रीसँ और कजौ स्नेही मित्रादि अनेक सम्बन्धोंमें मोहित कराकर आसक्त क्रिया इसही लिये तूने उत्कृष्ट सुख उसही में स्वीकार किया और दिन त्रदिन प्रव्रलताकों साथ देनेमें कटिबन्ध रहा डधर श्रमणपदमें स्वार्यी होकर गुरुसँ प्रेम बन्धनेमें उत्कृष्ट इच्छुक हुआ तथा गुरु जाई, शिष्य, शिष्याओंकी व्यापहारिक सेवा जकित देख गाह स्नेहमें चरुचूर हुआ और मोक्षके सुखका अनुभवन यही मानने लगा अशनादि चतुर्विध जोजनके आस्रादनमें लिप्त रहा, कोमल स्पर्शीय वस्त्रादिकोंका सुख अपूर्व रूपसँ मानने लगा, मकानादिकी ठबियों पर बेचेनीसँ विभांग किया अथात् भेमानेड मानने लगा इत्यादि अनेक जौगोपजौगीय पदार्थोंपर ऐसा गाह ममत्त्व रहा कि जो यक्तव्यसँ बाहार है हे अवधु ! तुजे यह आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल, जैनधर्म और श्रमणपदादि उत्तमोत्तम योगवाइये वार १ नहीं मिल सकेगी जरा अपने हृदय पर हाथ बरकर, विचार कर की तू कौन है और त्रे पदार्थ क्या हैं ! हे आत्मा ! तू अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्यमय, अक्षय, अत्रिनाशी, अव्याबाध, निर्भिकार, निराकरादि समस्त उत्कृष्ट गुणोपेत है और ये जितनी पौजलिक पदार्थें है वे सर्व जन्मात्मक है क्या कोई ज्ञानी किसी मूर्खकी मगतीसँ खुश होता है ? नहीं १ कदापि नहीं खुस होना तो दूर रहो किन्तु शब्द मात्र ही कणोंमें गूल सदश डःखदाई होते हैं

तो हे चेतन ! ये जितनी ही जोगोपजोगीय पदार्थ हैं उससे राग प्रणती, दूर कर चिदानंदमय हो जा. तेरे इस ज्ववृद्धि रागके निकंदन होनेसे क्षेप स्वतः ही नष्ट हो जायगा जैमें जम्के काट देनेसे वृक्ष स्तम्भ, शाखाएं, पत्र, फूल, फलादि स्वयं विनाश हो जाते हैं. इत्यादि शुन जावना द्वारा रागक्षेपके आश्रवको निरोधकर संचित रसको पतला करते थे धन्य हों ! मुनि रत्न आप कृत पुण्य हो !

(४) रस त्यागः—रसवती पदार्थोंको परित्याग करना उसे रस त्याग कहते हैं

आप निर्विकारी महानुभाव दूध, दही, घृत, तैल, मिष्ठान और पक्वान्न इन पद विगयको कडवार त्याग कर देते थे और निरंतर एक दो विगयसे प्रायः विशेष सेवन नहीं करते थे किन्तु पद विगय हमेशा ठोसनेकी उत्कृष्ट खप (कोशीस) करते थे

(५) काय क्लेशः—किसी तरह शरीरको कष्ट देकर सहनशीलताको ब्रह्मना उसे काय क्लेश कहते हैं

आप पृथ्वीसम सहनशील नियमित समयपर लोच (बाललुंचन) करवा कर मनके चंचल वेगको स्थिरीज्जत करते थे आप ज्वतारकने ३६ वर्ष ४ माह और १४ दिवस अखण्ड चारित्र्य पाला इसमें रोगादि कष्टावस्थाओं में जी आपने मुएम्न (रासादि प्रयोगसे बाल निकलवाना) कजी न करवाया यह एक उत्कृष्ट चारित्र्यका परिचय है

आपके आतापना तपका अपूर्व गुण मुन प्राणी आश्रय समुद्धमें मोता मारने लग जाते हैं अधीर न होईयेगा लीजिये उस उत्तम गुणको सुनकर अपने उत्सुक कर्ण युगलोंको आनंदित कीजिये और मुक्त कण्ठसे अनुमोदन कर अपनी कर्म राशीको ह्य कीजिये

सर्व परिसहोंमें उष्ण परिसह वन्म तेज है जिसका उपचार जी डःसाव्य है

वैशाख जेष्ठमें सूर्य अपने प्रबल कोप द्वारा ऐसा प्रचण्ड आताप फैलाता हुआ घूमता है कि जिस तेजकों देखनेसे प्राणीके नेत्रोंमेंसे जल बहने लग जाता है और उनमें स्पर्श करनेसे पेर जलने लगते हैं, शिर जुंजने लगता है, शरीरमें ज्वाला पैदा हो जाती है, हृदय फटने लगता है यहाँ तककि मनुष्यके मृत्युक अवयवमें घबराहट होने लगजाती है उस वखत यदि किसी पुरुषको कहा जायकि तुम आध घटा काउसग कर खड़े रहो तो अन्वल तो उसका सहास ही नहीं हो सकता कदाचित् सख्त दिल होकर खड़ा जी रहै तो मिएटोंमें मूर्च्छित हो धरणी वश होना पडता है ऐसे उग्र आतापको सहन करनेमें अगर वीररत्न हो तो आमपाममें यही एक मन्दात्मा हो सकते हैं

सज्जनो ! आप दृढ हृदयी मन्स्यलके सुप्रसिद्ध ग्राम फलवर्धि इलाके योधपुरके पश्चिम नागीय उन्नत धोरे (धूलके ढेर) जो कि वैशाख जेष्ठमें अग्निसे जो जियादे गर्म हो जाते हैं जिनके सामने मामूली आदमी ठहरनेको सर्वथा असमर्थ है ऐसे धग शती हुई (जालोजाल) अग्नि सदृश उन धोरों पर मध्याह्नकालमें तीन २ चार २ घंटे लोट जाया करते थे और कच्ची कायोतसर्ग कर चानाऽऽरूढ हो जाते थे किसी वखत धर्मशालाके चादनी पर ही डःसह उष्ण पापाणाटि पर पूर्ववत् आतापना लेते थे इस वखत दशों दिशाओं की आताप अपनी प्रबल शक्तिद्वारा टूकर मारकर पस्त हिम्मत करनेका सहास करती किन्तु उन वीर पुरुषके सामने उसकी सर्वाऽऽशाए निष्फलताको प्राप्त होती थी अहाहा ! आपने इस प्रकार कइवार आतापना ग्रहण कर अपनी देहका उन्धार किया है इस बातको स्फुट तौरसे कह सकता हूँ कि जैन काम्युनिटी (जैन समाज) में आसपास वर्षोंमें आपके सदृश इस तौर पर उग्र तपस्वी न हुआहोगा आप अपने शरीरकी कुठ जी परवाह नकर इस प्रकार तपानधनमें कटिग्रह रहै धन्य है ! आपका माधुत्व विश्व आदर्शनीय है

(६) सलीनताः—अज्ञोपाङ्गको सकुचित करनेमें सलगतता हो उससे संलीनता कहते हैं

वे जितेन्डीय महानुभाव पञ्चेन्डीयके तेरीस विषयोंसे अनाकाङ्क्षित होकर

अपनी स्पर्शोन्धियादि पापोंका निग्रह करते थे अर्थात् उनकी विकारी दशाको हटाकर उन्हें उच्चमाचरणोंमें संयोज्य करते थे

(७) प्रायश्चित्तः—किसी अतिचार या अनाचारकी आलोचना (शास्त्रानुसार दण्ड) लेना उसे प्रायश्चित्त कहते हैं

महानुभावों ! प्रायश्चित्तका लेना कुछ सहल नहीं है कारण कि अपने दोषोंको स्फुट करना ब्रह्मा ही मुशिकल है वर्तमान जमानेकी गंधीली वायु इस प्रकार ऊपट मार रही है कि सैकड़ों मनुष्योंके खयाल विपरीत कर दोषोंको जाहिर नहीं करने देती और दिलमें यह विकल्प पैदा करती है कि मैं उत्तम कुलमें पैदा हुवा, मेरे घरानेकी कुलीनता जगज्जाहिर है मैं राजा, महाराजा अथवा शेर, साहूकार पदवी को धारण करनेवाला इस प्रकार त्रिपुल वैभवका भोगवनेवाला मैं सर्वत्र सन्मानीय उज्जतको धारण करनेवाला किस प्रकार अपने गुह्य पापोंको प्रकट करू अथवा—

मैं दृढ धर्मो कहलाने वाला, मैं द्वादश व्रतोंको अङ्गीकार करने वाला श्रावक होकर एवम विश्व प्रशंनीय पञ्च महा व्रतोंको धारण करने वाला मुनिराज होकर किस प्रकार अपने गुह्य दोषोंको जाहिर करूँ मेरी शान्तता, मेरे शुद्ध आचरण, मेरी यश, कीर्ति विश्व विस्तीर्ण हो रही है ऐसी अवस्थामें अपने बुधे हुवे पापोंको हरगोज जाहिर नहीं करना चाहिये अगर् लोग सुनेगे तो मुझे बेशरम, धर्मभ्रष्ट, आचार न्युत और पासठ्या (वर्म मार्गमें रहकर क्रियाभ्रष्ट इव्यलिङ्गी अतिचार अनाचार सेवन करने वाला) आदि डःसह अनेक कलङ्कोसे कलङ्कित करेंगे इस प्रकार अनेक उष्ट विचार कर अपने पोशीदे आजावोंको (पापोंको) प्रकट नहीं करता है

जो प्राणी अपने अतिचार, अनाचारोंको गुप्त रखकर बगेर आलोचना मरण शरण हो जाता है वह “रूपी राजाके सदृश” अनेक जन रखता है

मुझे इस स्थलपर इतना अवश्य कहने दीजिये की जमाना बहुत नाजुक है लिहाजा सर्वके समक्ष अपने अप्रकृत दोषोंको जाहिर करना सर्व साधारणक

वास्ते डःसाध्य है ऐसी व्यवस्थामें ऐसे महानुजाओंके सन्मुख अपने अतिचार, अनाचारोंको प्रकट कर आलोचना ग्रहण करना चाहिये कि जो कमसे कम इतने गुणोंसे अवश्य मुशोजित हों

- १ अपने पूर्ण विश्वासी हों
- २ धर्मके दृढ श्रद्धावन्त हों
- ३ कर्मराजकी विचित्रताके सुविद्ध हों
- ४ घृणाके अजाबी हों
- ५ अनादर करनेमें सदैव पराङ्गमुख हों
- ६ उचित आलोचना दाता हों
- ७ सतोष जनक उपदेश देकर आत्माको आनन्द देनेवाले हों

इस प्रकार गुणशील उपकारी पुरुषका योग मिलनेपर जी जो माणी अपने गुप्त पापोंका प्रकटकर आलोचना ग्रहण नहीं करते हैं वे जब २ में असह्य डःखसे डःखित होते हैं

ग्न्य है! उन आत्मार्थियोंको कि जो बिलकुल विचार न कर तत्काल अपने गुरु महाराजसे सजा अखितयार कर अपनी आत्माको निर्मल करते थे क्या ही उत्तम हो की वर्तमानमे जी जन्मजनको वैसा सौजाग्य प्राप्त होजाय

वर्तमानके लिहाजसे जी उपरोक्त कथनानुसार योग मिलनेपर यदि दण्ड अङ्गीकार कर लें तो जी सुद्ध प्रशंसनीय है और यदि पूर्व महानुजाओंकी तरह निर्मल होकर अपने दोषोंको परलिकमें जाहिरकर आलोचना ग्रहण करें तो विश्व प्रशंसनीय व शतशः धन्यवादके पात्र है हमारे गुरुदेव जिनकी कि हम व्याख्या कर रहे हैं उनकी प्रणाली इस प्रकार थी:—

वे विवेकी गुरुवर्य अपने अनुपयोगतासे लगे हुये दोषोंका तत्काल ही शुद्धजाओं द्वारा शास्त्रानुकूल भावश्रित ग्रहण कर पत्र दशकों अवधारण करते थे—मै इस स्थानपर यह बात अग्रहण जाहिर करूंगा कि चारित्र्य रत्न के एक उत्कृष्ट आराधक थे कि जिससे अतिचार या अनाचार उन पर हुमला करनेका सर्वथा सहास नहीं कर सकते थे तदपि नाचम्यिहास्यस्याके कारण उपरोक्त सम्बन्ध दर्शाया है

(८) विनयः—विशिष्ट रूपसे मोक्ष मार्गमें ले जावे उसे विनय कहते हैं

वे शान्त स्वरूप गुरुवर्य अपने गुरु महाराजका तथा रत्नादि मुनिवरोका इस प्रकार विनय करते थे कि जैसे साक्षात् गौतमस्वामी वीर परमात्मका ही न करते हो तथैव सिद्धान्तोंका बहु मानकर अपनी आत्माको विनय गुणमें रमण कराते थे

महानुजावों ! पवित्र आगमोका फरमान है कि “विणयमूलो धम्मो” यानी धर्मका मूल विनय ही है जब तक प्राणी मानरूपी अजगरके मुखसे बाहर न निकल आवे तदा तक विनय गुणकी असिद्धता है. कहा है “माणेविणयं विणासई” मानमें विनय नाश होता है और विनयसे विद्या यावत् मोक्षके अनंत सुखोंसे वञ्चित रहना पन्ता है इस लियेः—

हे चेतन ! तुझे मान करना उचित नहीं क्योंकि अहकारसे नम्रता नहीं हो सकती और नम्रताके वगेर विद्या नहीं पा सकता क्योंकि मुलायमता अगर होगी तो किसी प्रकार गुरु महाराजको खुशकर ज्ञान संपादन कर सकता है और विद्याके विधुन समकित हाँसिल नहीं कर सकता चूँके अगर ज्ञानरूप प्रकाश होगा तो मिथ्यात्वरूप अन्धकार नष्ट कर सकता है एवम् समकितके वगेर यथाख्यात चारित्र नहीं मिल सकता कारण की वीतराग देवके पवित्र वचनो पर दृढ़ श्रद्धा हुए वगेर चारित्र अङ्गीकार नहीं होसकता तथा चारित्रके विना मुक्ति नहीं हो सकती क्यों कि जिनेश्वर भगवान् ने जैसा फरमान किया है वैसा ही आचरण करे तब अष्ट कर्म विध्वंस कर परमद प्राप्त करता है ऐसे मुक्तिके शस्त्र अनंत सुख तू वगेर इन रत्नोंके हाँसिल किये कौन युक्तिसें संप्राप्त कर सकता है ? कहनेका तात्पर्य यह है कि वगेर विनयादि गुणके जीव निर्वाण पदको कदापि संपादन नहीं कर सकता है

पवित्र जैन सिद्धान्तोंमें श्री उत्तराव्ययनके प्रथमाध्ययनमें तथा दशवैकालिकके नौमें अध्ययनादिमें किस प्रकार विनय गुणकी गुणाऽऽवली गई गई है की जिमे सुनने मात्रसे प्राणीके रोम शर्ष रस से उत्तर जाते है तो अनुजवके आस्वादनका कथन ही क्या ? विनयाऽनुजवी महत्त्मा तो सदैव दिव्य आनंद लहरोंमें लदलहति है

मेरे प्यारे पटुतानिलापियो ! शिष्य वर्गकों जवनारक गुरु महाराजके साथ बैठनेमें, ऊठनेमें, चलनेमें, सोनेमें, खाने, पीनेमें, आवागमनमें और सामान्य सजापणमें तथैव प्रत्येक प्रार्थनामें एव पठनादि अवस्थाओंमें और उनके फरमानकों शिरोधार करनादि अनेक क्रियाओंमें विनय मांचवकर अपने मानवजवकों सफल करना सुखकारी है यह विषय बहुत गहरा व उच्च होनेपर जी गुरु महाराजके चरणोंका अवलम्बनकर 'गुरु शिष्यका अपूर्व दृश्य' इस हेमिंगवाले विषयमें विनय पुष्पोंकों उतमोत कर किञ्चित् रूपण पाठकोंके अग्निमुख प्रकाशित करता हूँ

(गुरु शिष्यका अपूर्व दृश्य)

अतीव मनोहर गुर्जर देशमें सिद्धपुरपट्टन नामक एक विशाल शहर है वहाँपर अनेक जिन मन्दिर उन्नत ध्वजा, कलश और तोरणादि करके सुशोभित है कितने ही जैन धर्मानुरागी श्रावक वर्ग निवास करते हैं यह शहर किसी जमानेमें साक्षात् इन्डपुरीसा मनोहर मतीत होता था

एक समयका जिक्र है कि अनेक पवित्र मुनि वर्गमें सुशोभित एक दिव्य ज्ञानधारी आचार्य महाराज निवास करते थे उनके बहुतसे शिष्य सुविनीत होनेपर जी एक विनयशाल नामक विद्वान् शिष्य अत्यन्त नम्र गुणसे विभूषित था; जरा देखिये उसके विनयकी तर्फ लक्ष दीजिये:—

वह महानुभाव अपना आसन ऐसे स्थानपर रखता कि गुरु महाराजसे न तो अति निकट और न अति दूर था किन्तु माध्यस्थानमें गुरुवर्यकी दृष्टिमें निवास करता था

प्रातः कालमें ब्रह्म मुहूर्त्तके अन्दर जाग्रित होते ही मध्यम ही मध्यम गुरु महाराजकी विधि पूर्वक सुखशाता पूठ अपनी आवश्यक क्रियामें प्रवृत्त हो जाता पश्चात् ठीक प्रकाश होनेपर आदेशकों पाकर गुरु महाराजके बख्सादिकों की जयणा युक्त प्रतिलेखन कर अपनी उपधीकी पट्टिलेखण करता तद-

नन्तर गुरुमहाराजके समीपमें आकर नम्रता पूर्वक स्वाध्याय क्रियाकर सविधि वंदना नमस्कार करनेके पीछे यथाशक्ति प्रत्याख्यान अङ्गाकार करता जिस वस्तु वह वंदना करता था शरीरके प्रत्येक अङ्गको इस प्रकार मोड़ता था कि मानो उसमेंसे साक्षात् विनयरस ऊर रहा हो.

पश्चात् दो पात्रोंमें जल भरकर गुरु महाराजके साथ स्थण्डिल भूमि जाता नियमानुसार इस कार्यमें निवृत्त होकर वापिस उपाश्रयमें प्रवेश होते ही गुरु महाराजके समीप हरियावही (गमनागमनकी आलोचनाविधि) प्रतिक्रम कर आज्ञानुसार अपने आसनको ग्रहण करता हुआ स्वाध्यायमें लग्न हो जाता.

अहारपानीके समय गुरु महाराजके निकट आकर दोनो कर जोड़ मस्तक नीचाकर यह प्रार्थना करता कि:-हे स्वाभिन् ! यदि आप सर्व कार्यमें निवृत्त हों अर्थात् कोई कार्यमें बाधा न पहुँचती हो तो ज्ञेयार्थ पधारनेका अनुग्रह फरमाइये गौचरी हाजिर है समय आने पहुँचा सर्व मुनि मण्डल आपकी राह देख रहा है मुनतेही इन मुर वचनोके वे पूज्यआचार्य महा राज तत्काल उस स्थानसे ऊठकर गौचरी गृहमें पहुँचे सर्व मुनिराजोंने मस्कार पूर्वक स्थानाऽऽपन्न किये सर्वसे आदिमें गुरुवर्यके रुचिकर ज्ञेय उनके पात्रमे प्रक्षेप किया तदनन्तर नियमानुसूल सर्व मुनियोंको समर्पण किया अब्वलही अब्वल सर्व मुनिराजोंने गुरुमहाराजकी जावना जाई बाद परस्पर जावना जाकर गुरुवर्य की आज्ञानुसार सानद आहार पानी किया, पश्चात् सर्व महानुभाव अपनेश कार्यमें प्रवृत्त हुवे

मध्याह्नकालमें वह सुविनीत शिष्य पठनार्थ गुरु महाराजके सेवामें समुपस्थित हुवा यथा विधि वंदना नमस्कार कर प्रार्थना की कि हे जवतारक ! यह आपका चरणोपासक सेवक हाजिर है अनुकम्पया वाचना मदान करनेका अनुग्रह फरमावे

मुनतेही इनकोमल वचनोके उपगारी गुरु महाराजने उनेकी
इजाजत वसीस की

इस अवसरमें जैसे चातक अपना मुख पसारकर मेघकी उत्कट झंझा करता है इसही तरह वह शिष्य कच्ची गोडगुधाऽऽसन (दोनों जानु खड़े हुवे) कच्ची जट्टाऽऽसन (दोनों जानु पृथ्वी पर लगे हुवे) और कच्ची हन्धाऽऽसन (बाया घुटना खड़ा हुवा), इत्यादि किसी भी विनय आक्षानको ग्रहणकर दस्त ब दस्त मस्तकको झुकाया हुवा यह ज्ञावना ज्ञाताथा कि कब गुरु महाराजके मुखकमलमें से अमृत वर्षा हो कि मैं उससे पानकर अपने मानव ज्वकों कृतार्थ करूं

इधर गुरु महाराज अपनी अवर्णीय उपकार बुद्धिसे यह विचार रहे थे कि मैं शीघ्र ही जिन आगमका सुधारस पानकराकर इम की तीव्र पिपासा को शमन कर दू—

अहाहा! धन्य हो! गुरु शिष्य हों तो ऐसेही हों ऐसेही परम दयालु गुरु महाराज व ऐसाही सुविनीत शिष्य यह वही मशाल हुई कि मानो मोतियोंके हारमें रत्न जडना है इम स्थलपर यदि हम वीर परमात्मा व गौतमस्वामीकी घटना करें तो असघटित न होगी मैं इस बातको टावेके साथ कह सकता हूँ कि ऐसे अनुमोदनीय सम्बन्धमें अवश्य ही साफल्यता हो सकती है

कृपालु गुरु महाराजने पढ़ाना आरम्भ किया प्रत्येक विषयको इम प्रकार समझाते थे कि उस शिष्यका आनन्द मस्तक घूमने लग जाताथा इस वखतका आनन्द अनुभव लोगही जान सकते है -

पढ़ते श एक स्थलपर ऐसा प्रकरण आया कि जहांतक प्राणी पर्यादा न करले तहां तक चतुर्दश लोकके समस्त पदार्थोंकी आश्रव क्रियाका मायशित लगता है यह बात पढ़ते ही गुरु मुखसे विशेष खुलासेके लिये बड़े ही नम्रता पूर्वक दारियाफ्त करता है

तत्त्वान्निलापियों! उन दोनो महानुभावोंके इस प्रकार परस्पर प्रश्नोत्तर हुवे जरा ध्यान पूर्वक पढियेगा

शिष्यः—हे विशालज्ञानी! जिनेश्वर कथित जितने ही विषय हैं वे

अक्षरशः सत्य है और उनपर मुझे पूर्ण श्रद्धा है तथैव आगमाऽनुयायी पूर्वाचार्योंके पवित्र वचनोपर भी मुझे दृढ़ श्रद्धा है एवं आप जबोद्धारकके वचन मेरे सदैव शिरोधार हैं किन्तु अल्पज्ञता वश मुझे यह ठीक समझमें नहीं आता कि पदार्थोंके बगैर जोगोपजोग किये ही क्रियारूप प्रायश्चित्त अपना वज्र कैसे पटकता है क्या कृपाऽर्णव बगैर चोरी किये चोरकों कज़ी सज़ा मिलनेकी संज्ञावना हो सकती है ? अनुकम्पयां मुझ अज्ञानीके भ्रमकों उन्मूल कर अपनी शीतल छायामें शरण दीजियेगा.

गुरुमहाराजः—जोगुविवेकी ! तुमारा कथन यथार्थ है इसही प्रकार सम्पक् भ्रम करने पर ही माणी बुद्धिवान हो सकता है. देखो यह दृष्टान्त अपने लक्षमें लक्षित करो.

किसी एक आलीसान मकानमें एक क्रोडपति अपने ख्वयकी रक्षा करता हुआ सानंद निवास करता है इस अवस्थामें जबतक उसके मकानके चारों दरवज्जे खुल्ले हुवे है तबतक चौरोंके आनेका धोका है या नहीं ? शिष्यने कहा अवश्य है धसतो इसही प्रकार जबतक प्रत्याख्यान (नियम) नहीं है किसी न किसी दिन वे पदार्थ अवश्य जोगोपजोगमें आ जावेगी वास्ते उसकी क्रियाका आज्ञाब (पाप) लगना मुनासिब है

शिष्यः—मुनते ही इस उचरके मार्यना करता है कि हे कृपावतार ! वाहे चौरोंके आनेकी देशत स्वन्नता पूर्वक क्यों न विहार करे किन्तु जबतक चौर माल न चुरा जाँय उसे कोई प्रकारकी हानि नहीं हो सकती इसही तरह जब तक पदार्थोंको सेवन न की जाय उसे पाप लगना समुचित नहीं अहो स्वामी ! क्याही आश्चर्यका प्रस्ताव है कि जिस पदार्थको कज़ी हाथसे स्पर्श नहीं, नेत्रोंसे देखी नहीं, कणोंसे सुनी नहीं ग्रन्थोंमें पढ़ी नहीं, स्वप्नमें अनुभव नहीं उसके वर्ण, गंध, रस, स्पर्शादिसें सर्वथा अनजिज्ञ होनेपर जो दोषका प्राप्त होना स्वीकृत श्रेणीमें कैसे सम्यदित हो मकेगा दयाकर कोई अन्य दृष्टान्त प्रदर्शित की जियेगा जिससे यह अनुचर सतोप रस पानकर आर्न-दित हो जाय

गुरुमहाराजः—शिष्यके ऐसे मुलायम शब्द श्रवणकर दिलमें विचारते

हैं कि यह दृष्टान्त बेशक मंतोप का मिल है किन्तु कालके प्रज्ञावसे इस वस्त्र इसके समझमें नहीं आता अस्तु बिलफेल द्वितीय दृष्टान्त देकर इसे प्रसू दित करना चाहिये पश्चात् वह दृष्टान्त जी इसके मनोमन्दिरमें संस्थापित कर देंगे, यह सोच आप फरमाते हैं:—हे आज्ञाऽनुयायी ! तू कोई प्रकारका स्वयं मत कर वह दृष्टान्त जी क्रमशः तेरे समझमें आजावेगा ले अज्ञी यह द्वितीय दृष्टान्त ध्यान पूर्वक श्रवण कर

एक पुरुष अपने शरीर पर तैल मर्दन कर वस्त्र वर्जित बैठा हुआ है क्या उसके बदनमें रज सलग्न होगी ?

शिष्यः—कृपानिधे ! निसंदेह लगेगी.

गुरु महाराजः—क्या वह इच्छा करता है कि मुझे रज लगे ?

शिष्यः—दीनबंधो ! हरगीज नहीं

गुरु महाराजः—तो क्योंकर उसमें वह रज लगी !

शिष्यः—हे नाथ ! तैलकी स्निग्धताका ही यह स्वप्नाव है कि स्वतः रज आलगी है

गुरु महाराजः—अगर वह वस्त्र परिधान करले तो शरीरके रज लग सकती है ? या नहीं

शिष्यः—दयानिधे ! कदापि नहीं

गुरु महाराजः—प्यारे विनयशील ! जैसे विना प्रयोगही तैलकी चिकट रजको आकर्षित कर लेती है इसही तरह कपायोंका स्वप्नाव सविक्रण है हमसे बगेर इच्छाही अव्रत (आश्रव) क्रियारूप रज आकर लिपट जाती है और व्रत (प्रत्यारूपान-निषम) रूप वस्त्र पहननेसे क्रियारूप रजका निरोध

हो जाता है हां ! इतना अवश्य है की संजोगके सदृश तीव्र बधन नहीं हो सकता. सुगुणी वत्स ! क्या कुछ समझा ?

शिष्य—हे धर्मावतार ! आपकी भतुल महरसें बखूबी समझ गया.

गुरुमहाराजः—देख अब पूर्व कथित वही दृष्टान्त तुझे हम यथावत् प्रकृत कर तेरे हृदयाऽङ्कित कर देते हैं

शिष्यः—हे दयासागर ! कृपाकर फरमाईयेगा

गुरुमहाराजः—जबतक दरवज्जे खुल्ले थे शेरके दिलमें क्या था !

शिष्यः—स्वामिन् ! चिन्ता.

गुरुमहाराजः—अगर चौर छव्य ले जाते तो क्या होता ?

शिष्यः—करुणाऽऽलय ! विशेष चिन्ता.

गुरुमहाराजः—मालके न जानेपर केवल देसतसें ही रात्रीजर निद्रा न आती और हरदम बेचेनी बनी रहती है तथा छव्य ले जानेके बाद बड़े काल तक विशेष बेचेनी रहती है इसही तरह वस्तुओंके सेवन करनेसे तब वंधके हेतु अधिक जव रखडना पडते है और आश्रवकी क्रियासें क्षिप्र छुटकारा होनेकी सजावना है

शिष्यः—हे तरणतारण ! आपकी विचक्षण बुद्धिके सन्मुख पृथ्वी गश खाकर क्षिति तल हो जाता है धन्य है ! आपकी अनंत पुण्याई और शुक्रियादा है आपके निर्मल कृपोपशमकों एवं कोटिशः धन्य है आश्रमणाऽवतारकों कि इस प्रकार वाल जावोंपर उपकारक कृतकृत्य कर रहे यह पृथ्वी आप सदृश मुनि रत्नोमें ही रत्नवती कहलाती है हे जगदाध आप हमेशा जयवन्ता बतों ताके यह वीर शासनरूपी मार्तण्ड अपने दि प्रकाशसें समस्त पृथ्वीतलको प्रकाशित करता है इत्यादि अनेक स्तवना अपने जन्मकों कृतार्थ किया

तत्पश्चात् दोनो हस्त जोड़ यह विज्ञप्ति करता है कि हे दीननाथ ! बहुत समय हो गया है पिपासा पीड़ित कर रही होगी यदि आज्ञाहो तो जलपात्र जाहिर करू ? गुरुमहाराजने फरमाया “यथासुखं तथैवकुरु” यानी जैसा ख हो वैसाही करो अर्थात् सानद लेआओ आज्ञा पाते ही तत्काल उस पानसे ऊठकर निर्मल अचित्त जल जहाँ पर रख्वा है वहा पर पहुँचा और उचम वखसे उीनकर एक स्वच्छ पात्र जलसे आपूरित कर लिया अब वह व-से ढका हुवा (उड़ता हुआ धूळ या कोई जन्तु उसमें न गिर जाय इमलिये वखसे आज्ञादन कियाया) जलपात्र हस्तकमलमें स्थापनकर गुरुमहाराजकी सेवामे हाजिर हुवा और कुठ नीचा थुककर दोनो करकमल गुरुमहाराजके अग्निमुख करता हुवा यह प्रार्थना करता है कि दयानिधे ! लीजिये जलपान (वावरना) कीजिये गुरुवर्षने चटसे पात्र ग्रहण किया और जल वावरकर अपनी प्यामकों शान्त की; और वह पात्र वापिस शिष्यकों वक्षीस कर दिया

तदनन्तर कुछ टाइम औ पढकर गुरुमहाराजसे प्रार्थना की कि हे करुणा-रस जन्मार ! पाठन समयने अपनी अन्तिमाऽवस्थाकों ग्रहण कर लिया है इसलिये दयाकर मुझे अपने आसनपर जानेकी आज्ञा वक्षीस करें गुरुमहा-राजने फरमाया “अहासुह देवाण्युपपया मा पन्निवध्करेह” अर्थात् देवताओंको ली वल्लन ऐसे हे शिष्य ! जैसा तुमें सुलहो, अविलम्बतया सानद करो गुरु आज्ञाकों शिरोधार कर शिष्य अपने आसनकों ग्रहण करता हुवा अन्यपठन गठनादि क्रियाओंमे संप्राप्त हुवा

थोड़ीही देर बाद क्या देखता है कि गुरुमहाराज मात्रा (लघुशङ्का)के स्ते जानेका विचार कर रहे है अङ्गिताकारसे मानसिक परिणामोंको समझ के कार्य अलग रख शीघ्रही टोपसीमें जल लेकर गुरुमहाराजके पीठे हो-तया मात्रागृहमें पहुँचते ही मात्रिये (पालसिया) कों पूजनीसे पूज जयणा के रख दिया व पासमें ही टोपसी ली धरदी-गुरुमहाराज अपनी बाधाकों तवृत्त कर अपने स्थानपर पधार गये-शिष्य एक हस्तमें मात्रियाँ और द्वितीय हस्तमें जलकी टोपसी लेकर बाहिर निकला और जहाँ पर निर्वद्य स्थान है वहाँ पर दृष्टि परमार्जन कर उसे बिबेर दिया और जलसे पालसियाँ साफ

कर जयणा पूर्वक उसही स्थानपर रख दिया और गुरुमहाराजके सन्मुख इरियावही (पाप अलोचन क्रिया) कर पुनरपि अपने कार्यमें प्रवृत्त हुवा

अहाहा! सदुपयोगी शिष्य हो तो ऐसाही हो जिसे अङ्गुली निर्देश तक करने की आवश्यकता नहीं हुई तो बैखरी ज्ञाषा (जिन्हासे प्रकट तथा बोलना) घ्रा कहनेका तो कयन ही क्या ? जो बुद्धिमान व कुलवान है और जिसने गुरुकुल सेवन किया हुवा है वे बाह्य चेष्टाओंसे ही मानसिक परिणामोंका अनुमान कर लेते है नीतीकारने जी हृदयस्थ परिणाम जाननेके इसप्रकार लक्षण दिखाए हैं:-

(श्लोक.)

आकारै रिङ्गितै गत्या । चेष्टया ज्ञाषणेन च ॥

नेत्र चक्षुविकारेण । लक्ष्यते स्तर्गतं मनः ॥ १ ॥

अर्थ:—आकार, इङ्गित, गति, अङ्ग चेष्टा, वचन, चक्षुविकार, और मुख-विकार. इन सप्त लक्षणोंसे मानसिक परिणाम जाने जाते है

विवेचन:-१आकार:-अङ्गाऽऽकृती यानी जैसे दक्षीण इस्त परमस्त क को नीचा झुकाया हुवा देखकर यह ज्ञात होना कि किसी चिन्तासमुच्चयमें हूब रहे है उसमें आकार कहते है

२ इङ्गित:-मनविकार यानी उपदेश अन्यको देना है और कहते अन्यको है जैसे जार्हने कोई वस्तु गुमा दी उसका उसे न कहते हुवे पुत्रसे कहते है कि तू बडा निरोपयोगी है घरका कुछ जी फिक्र नहीं कर्नी कुछ कर्नी कुछ सुकसान कर देता है ऐसे घरका निजाब किस तरह हो सकेगा इत्यादि उपदेश देकर भ्राताको जताया बंधु जी यह समझ गए कि कहते इसको है किन्तु नाराजगी मुखपर है इस प्रकार विदित होना उसे इङ्गित कहते हैं:-

३ गतिः—चाल यानी किसीको भेद चालसे चलते हुए यह पहिचानना कि इसके शरीरमें कुछ व्याधि है या शारीरिक शक्ति हीन हा रहा है उसे गति कहते है

४ चेष्टाः—अङ्ग विकार यानी जैसे अङ्गुलीसे ओष्ठोंको मलते हुये देखकर प्यासका मालुम होना उसें चेष्टा कहते है

५ ज्ञापणः—वचन यानि शब्दश्रेणी अन्य है और अर्थ कुछ अन्य है यथा अहा ! तुमारे जत्राका व्यसन बन्नाही प्रशंसनीय है सारा जगत तारीफ करता है अन्य है ! तुम्हे बारबार अन्य है ! इस प्रकारके कथनसे शब्दार्थाऽनुसार तो श्लाघनीय ही प्रतीत होता है किन्तु इसमें व्यङ्ग निदाका निकलता है गरजकी सामान्य शब्दोंमें से व्यङ्ग्यया अन्यर्थ जानना उसे भाषण कहते है

६ नेत्रविकार.—चक्षु विकार यानी जिस तरह नेत्रोंको तेज (रक्त) देख यह जानना की इस वस्तु कुपित हो रहे है इसें नेत्र विकार कहते है

७ वक्रविकारः—मुख विकार यानी किसी बातको सुनकर मुख विगाम देना उससे यह जाहीर होना कि इस विषयसे इन्हे पूर्ण खानी है इसें वक्र विकार कहते है

शायकालके प्रतिलेखनका समय आते ही अपने स्वा यायसे फारिक होकर गुरु महाराजकी व अपने वस्त्रोंकी पहिलेहणादि क्रिया प्रातःकालाऽनुसार की पश्चात् पन्नावश्यक सानद आराधन किये

प्रतिक्रमण करनेके पश्चात् गुरु सेवामें तत्पर होकर यह मार्यना करता है कि हे जवतारक ! यह चरणोपासक आपके पदपङ्कजोंकी सेवाकर अपने कायाको पोषे करनेकी तीव्र ऽजिलापा कर रहा है अनुकम्पया आइया बहीस करनेका अनुग्रह फरमावे सुनते ही इन मधुर वचनोंके गुरु महाराजने सानद आइया बहीस की अब वह सुविनीत जिसके हृदयमें उपद्रव लहरों छठल रही है जक्तिमें तत्तीन हुआ

उसके हस्तकमल ऐसे मुलायम थे कि अकतूलकी-रुई जी, शर्माती थी, गुरु महाराजके चरणकमलोंकी इस ढंगसे सेवा करता था कि उनका प्रत्येक अवयव खिल उठता था इस प्रकार सेवामें आसक्त होकर दिव्य इन्द्रानुयोगके गहन विषयकी वार्तालाप करता हुआ सुख पूर्वक काल निर्गमन करता है। अखीरमें गुरु महाराजके पवित्र चरणोंमें मस्तक नमन कर दोनो हाथ जोड़ धिक्कति करता है कि हे नाथ ! बहुत दिनोंसे यह दास एक आवश्यककीय विनती करनेकी अजिष्टता कर रहा है किन्तु जाग्य हीनतामें ऐसा कोई सुअवसर न मिला कि जिससे मैं अपनी इच्छा पूर्ण कर सका। आज अनंत पुण्यार्थका उदय है कि मुझे वह सौजाग्य प्राप्त हुआ यदि आज्ञा हो तो निवेदन करूँ गुरुमहाराजने फरमाया निशंकनया सानंद प्रकाशित करो, ह्रुकुम पातेही "तहत्तस्वामी" कहकर वह परहितैषी विनयशील प्रार्थना करता है—

पूज्यपाद गुरुवर्य ! अपनी पवित्र समुदायमें कितनेक अविवेकी साधु साध्वी ज्ञानध्व्य तथा साधारण इव्य अपनी जिम्मेदारीमें रखते प्रतीत हो रहे हैं और इसही वजहसे कितनेक सेंट साहूकारोंके यहा उनके नामके खाते पड़े हुवे हैं ऐसा जी सुना जाता है इस प्रकार प्रवृत्ती विगड़ते हुवे वे खास परिग्रह वारी होजायेंगे ऐसी सम्झावना है इसलिये हेजबोधारक ! इस उर्गति दाता दुष्ट प्रणालीको शीघ्र ही उन्मूल कीजियेगा

गुरुमहाराजः—हे विनयशील ! तेरी परोपकारी प्रशंसनीय बुद्धिके प्रति-हम सहानुभूती प्रदर्शित करते हुवे यह सूचना करते हैं कि वे साधु, साध्वी किस प्रकार उव्यसे ससर्ग रखते हैं इमें स्फुटतया प्रकाशित कर

शिष्यः—हे दयापूर्ण ! आप सर्व वेचा है आपके सन्मुख विस्तीर्णरूप से कयन करना मेरी नादानी है किन्तु तदपि आपकी आज्ञाको शिरोधार करता हुआ सन्निय किञ्चित् प्रार्थना करता हूँः—

कइ एक ज्ञानके लिये जैसें—पाठशाला, लायब्रेरी, ग्रन्थ उपवना, ग्रन्थ लिखवाना, ग्रन्थ खरीदना वगैरा तथा साधारणके वास्ते उपदेश देकर रूपे स्वष्टे करवाने हैं उनका दिसायादि सर्व अपनी निगमनीमें रखते हैं तथा उनकी

आज्ञा बग़ैर एक पाउ ज़ी इधर उधर नहीं हो सकती और कइ एक लोग जिस बख़्त श्रावक ग्राहिकाओंको ढोका देते हैं उस बख़्त उनका जितना बचा हुआ इव्य हो उसें ज्ञान खाते या साधारण खातेमें किसी मौजूज सद्क़े यहाँ अमानत (Deposit) रखवा देते है उस इव्यकों अपनी इच्छानुकूल खर्चे करवाते है उनके आज्ञा बग़ैर कोई ज़ी किसी स्थानमें नहीं लगा सकता इस प्रकार सैरुमों रूपै रिपाजिट रहे हुवे है जिसका यथावत् सिबूत पहुँचानेकों में सदैव कटिबद्ध हूँ हे नाथ ! मुक़ंपुकिमधिकम्.

यह वज्र घावमा विषय श्रवणकर गुरुमहाराज अति दिलगीर हुवे और पृथक् १ स्थानोंमें निशाम क्रिय हुवे अपने समम्न साधु, साध्वीकों इकत्रित होनेकी आज्ञा प्रकाशित की

शिष्यः—“प्रमाणवचन” कहकर मार्यना करता है कि हे स्वामिन् ! सयारा पोरमी (शयनके टाङ्ककी क्रिया) का समय आन पहुँचा है

गुरुमहाराजः—राई सयारा पोरसी मानद पद्क़ा विश्राम करो

आज्ञा पाते ही शिष्य गुरुमहाराजके साथ सयारा पोरमी पदकर अपनी पयारी (Bedding) पेमे स्थानपर की कि जो गुरुमहाराजसें ऊची और समान न थी किन्तु नीचे स्थानपर शयन करता जहाँ कि गुरुवर्यकी किसी प्रकार आज्ञातना नहीं हा सके अब यह शिष्य अपने आसनपर बैठा हुआ यह राह देख रहा है कि गुरुमहाराज शीघ्रही शयन करें तो मै ज़ी सो जाऊँ गुरुमहाराज कूठ टाङ्कके वाद अपनी ध्यान क्रियासें निरुत्त हाकर निद्रावश हो गए शिष्य गुरु महाराजकों शयन किये देखे शीघ्रही अपनी पयारी पर जाकर विश्रामित हुवा

द्वितीय दिन विनयशील शिष्यने हुकुम पाकर नियमानुकूल सर्व स्थानों पर आमन्त्रण भेज दिय जिमके जरिये समुदायके कुलश्रवण, आर्या उस विशालपट्टन शहरमें समाप्त हुवे

॥ इस अवस्थामें, पूज्य, उपकारी आचार्य महामजने सकल शिष्य, शिष्याओंको मध्याह्नकालमें एक वजे हाजिर होनेका हुकुम बड़ीस किम्बा सर्वलोगोंमें शिरोधार कर नियमित समयपर चरण सरोजमें प्रवेश किया ।

सज्जनों ! यह श्रमण सम्मेलन खानगी (Private) ही था चूँके शुद्ध व्यवहार यह उपदेश करता है कि किसिके सत्कारमें जुटी न पहुँचते हुवे यदि उसका जला हो जाय तो उत्तम है

प्रथम ही प्रथम विनयशीलने सर्व सम्मेलनों यह विज्ञप्ति की:—

आप सर्व महानुभाव दूर २ देशान्तरोसे अनेक कष्ट सहन कर गुरुसेवामें पधारे है इसका मैं शतसः धन्यवाद समर्पण करता हुवा यह निवेदन करता हूँ कि अपने परमोपकारी विशाल ज्ञानी प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद गुरुमहाराजने एक अनुपम लाजके निमित्त आप सर्व सहावानकों उत्तम सौजाग्य प्राप्त करवाया है इससे आप अपना अहोजाग्य समजते हुवे आचार्य श्रीके पवित्रवचन श्रवण कर अपनी आत्माका कल्याण कीजियेगा तदनन्तर—

गुरुमहाराजः—अहो पेरे समस्त गुणानुपासकों ! यह जिनेश्वर प्रजुका पवित्र वश अन्त पुण्यार्थसें संभास हुवा है जो भाणी निर्मलतासें पालन करता है वह अचिरात् मोक्ष पदके अनन्त सुखको अनुभव करता है और जो सह अपने महा व्रतोंमें दोष लगाकर पवित्र चारित्रकों भलीन करता है वह आज्ञा विराधक जव २ में असह्य दुःखसें दग्ध होता है आप महानुभाव इतना फरमाकर शान्तरसमें विश्रामित हुव

यह शब्द सुनते ही सर्व सम्मेलन चौक पडा और दीनमुख होकर दोनो कर जोरु मन्तक नमन करता हुवा यह प्रार्थना करता है:—

सम्मेलनः—हे दयासागर ! हम अज्ञानियोंको आपका अल्पाहारी, बहु-र्योय सदुपदेश स्फुटतया समजमें नही आया, हमारा हृदय जीतरसें, तड़फ रहा है कृपया खुलोशा तौर पर फरमाईयेगा

गुरु महाराजः—महानुभावों ! हमने यह, श्रवण किया है कि पाठशा-
लादि समस्त तथा दीक्षा असुरमें ज्ञान खाते तथा साधारण खाते किमी सा-
हूकारके यहाँ इव्य अमानत रखाते हो पश्चात् अपनी इच्छानुसार खर्च करवाते
हो; यह सख हे क्या ? इत्यादि विनयशील शिष्यने जो कुछ प्रार्थनाकीथी
उसमें खुलाशा तौर पर फरमान किया

सम्मेलनः—“दोन हीन होकर धूजता हुवा यह प्रार्थना करताहै”
हे प्राणाऽऽधार ! धर्मावतार ! ! जषोऽधारक कृपावतार ! ! ! हम मुँह दिखलाने
योग्य नहीं, हम वचन उच्चारण करने लायक नहीं, हमें चुल्चूजर पानीमें डूब
मरना बहेतर है आप हमारे मनोगत जावको जाननेवाले तरण तरण नाय है
वस इतनेमे ही सर्व समऊ लीजियेगा

गुरु महाराजः—अहो देवानुप्रिय ! तुमारे दोन वचनो पर मुँजे बनी ही
दया आती है लेओ जरा दो शब्द सुनकर अपनी आत्माकों पवित्र करो

इस दुनियामे मुख्य दो वस्तु ही महा अनर्थकारी है एक कनक द्वितीय
कामनी जिसने इन दोनोका संसर्ग मात्र ठोर दिया है वे उत्तमोत्तम आचरण
कर सकते है, वीर शासनका विजय करनेमें सामर्थ्य होसकते है तथा सासारिक
जगडोसे तटस्थ होकर अपनी आत्माका कल्याण कर सकते है यद्यपि तुमलो-
ग उसमें अपने पाममें नहीं रखते न अपने खानपानमें लाने हो किन्तु उमका
संसर्ग मात्रही जगत निन्दनीय व विश्व तिरसकरणीय है इसलिये मेरे प्य,ने
आत्मार्थियों ! इस डष्ट रिवाजकों नासिका मलवत् त्यागकर पद्माख द्वार प्र-
त्याख्यान अङ्गीकार अपने मानव जवकों कृतार्थ करो

सम्मेलनः—“इस रिवाजकों आचरण करनेवाले समस्त साधु
साध्वी” दोनो करजोर मस्तक नमन करते हुवे यह प्रार्थना करते हैं—
दीनानाय ! हम सर्व लोग आपकी पवित्र आङ्गाकों शिरोधार कर सहर्ष प्रतिज्ञा
अङ्गीका रनेकों तत्पर हैं

गुरुमहाराजः—अपनी अगाध कृपाद्वारा इस प्रकार प्रत्याख्यान फर-
माने हैंः—

(प्रत्याख्यान)

अरिहन्तसखियं, सिद्धसखियं, साहूतसखियं,
 देवसखियं गुरुसखियं, अप्ससखियं धारणा
 प्रमाणे अन्नधणा जोगेणं, सहरसागारेणं,
 महत्तरागारेणं, सव्वसम्माद्वित्तियागारेणं वोसीरई.

सम्मेलनः—वोसिरामि-

गुरु महाराजः—महानुभावों ! इस प्रत्याख्यानकी प्राणोंसे जी अधिक
 यत्ना करना इन षट् साखोंमें से एक जी साख तौरनेवाला जीव अनेक भव
 चरण करता है तो समस्त उल्लङ्घन करनेवालेका कयन ही क्या ? इसलिये
 दृढ श्रद्धायुक्त पालनकर अपने जीवनको मार्थक करना

सम्मेलनः—हे करुणानिधे ! जो प्राणी अपने गुरुमहाराजने विपरीत च-
 लता है वह जिनेश्वरकी आज्ञाका विराधक समझा जाता है और इस जन्ममें
 डराच रोसे कलङ्कित होकर निन्दनीय श्रेणीमें शुभार किया जात है तथा पर
 जन्ममें डर्गतिमें जाकर डःमह्य डःखोसे दग्ध होता है हे तीर्थस्वरूप ! आ-
 पकी अहंशः अनुज्ञा हमारे सदैव शिरोधार है आपसदृश जवोधारक गुरु-
 महाराजका शरण जवोजव होना यही आन्तरिक जावना है हेअकारण
 वन्द्यो ! ऐमे घोरातिघोर प्रायश्चित्तसे विमुक्त करना आपहीके हस्तगत है

गुरुमहाराजः—ज्ञानियोंका यह फरमान है कि त्रैलोक्यमें गुरुमहाराजके
 सदृश कोई उपकारी नहीं है इसलिये जहाँ तक मुमकीन हा तहा तक उनकी
 जक्तिमें लीन होना चाहिये ज्यों १ तुम लोंगोंकी जक्ति बढ़ती जायगी सों १
 अपूर्व गुण मरुट होते जायगे ज्ञान, तत्व और सकल श्रुता गुरु सेव से ही
 प्राप्त हो सकती है तुमारे जड़िकनाकी तर्फ हम सहानुभूति दिखलाते है कि
 तुम लाग बडे ही सुयोग्यहो कि डर्व्यवहा को नासिका मलत् स गकर गुरु
 आज्ञाको प्रेम पूर्वक शिरोधार किया

सम्प्रेजन—हे गुणी धे ! हम तुझ बुद्धिधर-रौंकी जो आपने पशुमा की यह केवल आपके वरुपनका ही परिचय है; हम किमी प्रकार योग्य नहीं है किन्तु सच है ! गुणी पुरुष गुणके ही ग्राहक होते हैं

गुरुमहाराजः—प्यारे आत्मार्थियों ! गुरुद्वय सदैव तुमारा कल्याण करें

इस प्रकार विश्व प्रशनीय विजयकों प्रप्त हुवे और सर्व साधु, सध्वी आचार्य महाराजकी आज्ञानुसार पृथक २ क्षेत्रोंमें आनन्द पूर्वक विहार कर गए

एक दिनका जिक्र है कि गुरुमहाराज गाचरीकों पधारे उनके माय वह विनयशील शिष्य जो आहारके पात्र लेकर पूज्य आचार्य महाराजके साथ हो गया मार्गमें इस तमीजक साथ चलता है कि नतो आगे, न वरोवर ओरन पीछे अर्थात् पीठे इस प्रकार चलता है कि जिससे किमी प्रकार आशातना न हो यहाँ तक कि उसके परोकी उम्नी हुई रज जी गुरुमहाराजको स्पर्श नहीं कर सकती थी इस प्रकार क्रमशः श्रावकके घरपर पहुँचे

पूज्य आचार्य महाराजने ४१ दोष टालकर उचित अहार ग्रहण किया जिसकी पवित्र विधि ग्रन्थ गौरवके जयसे यहाँ पर उद्धृत करनेको 'मजधूरहें केवल इतना ही निवेदन करते है कि जिस वरुत गृहस्थ बहेराताया (आहार देताया) उस वरुत शिष्य अपनी जोली (पात्र रखनका वस्त्र) से पात्र निकालकर गुरुमहाराजको समर्पण करता ये अपनी उठाऽनुसार जोजन बहेर लेते शिष्यके पास पात्र होने पर जी बहेरती वरुत गुरु महाराजको अर्पण करना यह गुरु मत्कार है

इस प्रकार गौचमी लेकर अपने उपाश्रयमें पधार गए गोचरी करने बगेराकी शेषविधि पूर्ववत्

एक दिनका प्रस्ताव है कि उस विनयशील शिष्यको पुलाकर गुरुमहाराजने आज्ञा करवाई कि हे वरुस ! पाँच सौत साधुओंको लेकर पवित्र मलय देशमें विहार कर जाओ वहाँपर अपनी आत्माका कल्याण करत हुवे श्री मंथका उपकार करो और वीरशासनका उद्यातकर अपने थमण पदको सार्थक करो ।

इस दुःखमर्को मुनते ही शिष्य सचिनय प्रार्थना करता है:—

शिष्य:—हे करुणारस जण्डार ! कौन ऐसा पुण्यहीन है कि जो अपने दिव्य उपकारी गुरुमहाराजसे विरह चहाता हो किन्तु आप नायकी आङ्गुली पालन करना यह मेरा मुख्य कर्तव्य है इसही लिये आपकी आङ्गानुसार विहार करनेको मैं हाजिर हूँ

गुरुमहाराज:—मेरे प्यारे आङ्गानुयायी ! अमुक प साधुओंको साथ लेकर कल विहार कर जाना

शिष्य:—आङ्गा प्रमाण.

द्वितीय दिन ठीक प्रातःकालमें ही तैयार होकर मय अन्य मुनियोंके गुरुचरणोंमें हाजिर हुवा सादर वेदना नमस्कार करनक पश्चात् दोनों करजोड़ यह प्रार्थना करता है:—

हे मम प्राणाधार पूज्य गुरुमहाराज ! आज मुझे आपके चरणोंका विरह होता है जिस असह्य डःखको मैं किसी कदर महन नहीं कर सकता; हे स्वामिन् ! यह मनमोहन शान्त, ठीके मुझे कव दर्शन होंगे; हे प्रजो ! मुझे इन पावन चरण सरोजकी सेवा कर प्राप्त होगी हे नाथ ! मुझे इन पवित्र चरणोंका वारंवार शरण हो आपकी जिस प्रकार अनुपम कृपा है इससे दिन दुगुनी और रात चौगुनी बमानेका अनुग्रह फरमावे, हे दयासागर ! आपकी शुभ दृष्टिसे मेरा सदैव कल्याण है इत्यादि नानाविध जक्तिजाव प्रदर्शित किया

गुरुमहाराज:—प्यारे चरणोंपासक ! यदि तू हजार कोश जी दूर है और तेरा हृदय जक्तिरसमें जरा हुवा है तो तुझे यथावत् फल हासिल हो सकता है यथा:—

(दोहरा)

जलमें वशे कमोदनी । चंदा वशे अकाश ॥

जो जाहूके मन वशे । तो ताहूके पास ॥ १॥

मुनिरवि! आप पूज्य आचार्य महाराज फरमाते हैं:—ये जो तेरे साथ अन्य मुनिजन हैं इनकी जिस तरह हम प्रतिपालन करते हैं उसही तरह तुम विश्वाससे रखना यह खास सूचना है उधर उन मुनियोंको यह फरमाते हैं:—
 प्यारे मुनियों! तुम इस विनयशीलकी उसही प्रकार सेवा करना कि जैसी मेरी करते हो और मुझे जिस पूज्य दृष्टिसे तुम अवलोकन करते हो। इसही प्रकार इसे समझना आदि उपदेश देकर सर्वको यह फरमाया कि:—समय आन पहुँचा है सानद विहार कर जाओ गुरुदेव सदैव तुमारी विजय करे

सुनते ही इस पवित्र आशिर्वादके वे सर्व मुनिराज सहर्ष विहार कर गए.

ग्रामाऽनुग्राम अनेक क्षेत्रोंमें जव्य जीवोंका अनुपम उद्धार करते हुवे क्रमशः अवन्तिकापुरी (उज्जैन) में पदार्पण किया वर्षाकालिक चातुर्मास शाघ्र ही अपने अवस्थानमें प्राप्त होनेकी इच्छा कर रहाया, इस अवशरमें वहाँके निवासी धर्मानुरागी श्रावक, श्राविकाओंने चातुर्मासके लिये अनहद विनती की जिस पर आपने यह फरमाया कि अगर गुरुमहाराजकी आज्ञा होगी और हमारी क्षेत्र स्पर्शना बलवान् है तो हमे कोई उजर नहीं

जैन मुनिराजका इतना कथन ही गोया उनकी मानसिक कबूलात है जो कि वर्त्तमान वचनोसे सम्यग् विज्ञात हो सकता है निश्चय कथन करना यह जैनागमका फरमान नहीं चूँके उन्नस्थ लोग जावि फलका निश्चित स्वरूप नहीं जान सकते

संप्रस्त नाग्रिक जैन जत्कोंने पट्टन शहर जाकर गुरुमहाराजसे अनेकविध प्रार्थना कर चातुर्मासकी आज्ञा हासिल की

गुरुमहाराजने यह फरमाया कि यदि उसकी क्षेत्र स्पर्शना है और सर्व तरह मुजिता हो तो हम सहर्ष इजाजत वक्षीस करते हैं संघ इस अनुज्ञाको हाँसिलकर अपने स्थानपर वापिस लौट गया.

उधर उस विनयशील नामक मुनिराजने चातुर्मासके निमित्त अपने गुरु महाराजसे इस प्रकार प्रार्थना जेजी:—

हे करुणारस जगन्नाथ ! वर्षाकालिक चातुर्मास दौड़ता हुआ निकट आ रहा है और यहांके श्री संघकी-जक्ति लायकतारीफ के है तथा विनति श्री जोरशोरसे कर रहे हैं एवम् शासनोद्योतकी जी पूर्ण संज्ञावना है इसलिये सविनय प्रार्थना है कि इस अवन्तिकापुरीमें चार मास निवास करनेकी आज्ञा बच्चीस फरमावे इस हमारी दीन प्रार्थना पर गोर फरमाकर जो कुछ मुनासिब समझे शीघ्रही सूचितकर आज्ञारी बनाईयेगा ताके-हमें आगामी-व्यवस्थाका अनुज्ञवहो.

इस विनयसे जरी हुई मशानीय प्रार्थनासे विज्ञात होकर उत्तरमें इस प्रकार सानद आज्ञा बच्चीस फरमाते है:—

तुमारी विनयोद्योतक प्रार्थना समाप्त हुई उत्तरमें सूचित करते है कि अगर तुमे वहांपर छत्र पूर्वक निवास करना सम्भव हो तथा पठन, पाठन तथा जप, ध्यानादि निराबाध होसके और आवहवा अनुकूल एवम् शासनोद्योत उत्तम तौरसे होनेका पूर्ण विश्वासहो तो हम सानद आज्ञा बच्चीस करते है और सूचित करते है कि शासनाऽधीश्वर श्री वीर परमात्माके शासनको तथा आसन्नोपकारी गुरुमहाराजके पवित्र नामको देदिप्य करना यह खास सूचना है.

इस प्रकार आज्ञा पानेपर आप मुनि रत्नने चातुर्मास कर श्री संघ पर अगाध उपकार किया जो कि सदैव स्मरणीय है इसही तरह कितनेक वर्ष मालवदेशमें खूब परियटन कर विविध स्थलोंके श्री संघका अनुपम उद्धार करते हुवे क्रमशः मरुस्थलके सुप्रसिद्ध शहर विक्रमपुर (बीकानेर) में अपने पूज्य गुरुमहाराजकी सेवामें प्रवेश हुवे- गुरुजक्तों ! इस वरुतके समागमका आनंद अनुज्ज्वी लोग ही जान सकते है अब आप पूर्ववत् अपने सकल कृत्योंमें संलग्न हुवे

वर्तमानके अधिकांश शिष्य वर्गका विनय गुण एक विचित्रही लीला प्रदर्शित कर रहा है जो कि पबलिकमें जाहिर है तदपि प्रकरणवशात् इतना अवश्य कहूंगा कि आह्वानुसार कार्य करनेका दावा रखनेवाले ऋजुप्राज्ञि वही तक गुरुमहाराजकी आज्ञाको सहर्ष सादर शिरोधार करते हैं कि जहाँ-

तक उनके मनशाके मुताबिक बद्धीस कीजावे यदि किसी समय वास्तविक व हितकारी इस प्रकार आज्ञा बद्धीस कीजावे कि जो उनके रुचिसँ प्रति-कूल है तो घड़ाकसँ मूढ मोड अनेक कुयुक्तियों द्वारा अपनी अपूर्व ज्ञातिका अलौकिक दृश्य दिखलावे है

मेरे प्यारे गुरु जक्तों! आपको इस ठोठेसँ “गुरु शिष्यका अपूर्व दृश्य” दृष्टान्तसे यह सम्पद् विदित होगया होगा कि वह विनयशील एक कैसा अपूर्व गुणधारी या आचार्य महाराजके अन्य अनेक शिष्य थे किन्तु यह सर्वमें अधिक प्राणवल्लज तथा इसही प्रकार शिष्य वर्गकों अपने जवोद्धारक गुरुमहाराजका विनय करके निज अपने मानव जवकों सफल करना चाहिये

जब तक हमारे उन पूज्य गुरुमहाराजने शिष्यावस्थामें निवास किया तब तक विनयशील शिष्यके अनुसार उत्तम विनयका आचरण करते ये नहीं व इतना ही नहीं किन्तु इससँ जी कइ गुणों अधिक विनयरससँ आपका हृदय अपूरित था और जब की आप गुरु पदकों सुशोभित करते थे तब पूर्वोक्त आचार्य महाराजके सदृश दयासागर थे अहाहा! आप गुरुदयालका विनय गुण विश्व प्रशंसनीय व अनुकरणीय है.

९ वैयावच्चः—किसी धर्मात्मा पुरुषकी सेवा करना अर्थात् सुश्रुषा करना उसें वैयावच्च कहते हैं

आप परम जक्त महानुजाव अपने गुरुमहाराजकी, मुनिरत्नोंकी ग्लानियोंकी तपस्वियोंकी और नूतन शिष्य वर्गोंदिकोंकी भ्रहार, पानीसँ, शरीर सुश्रुषासँ तथा प्रतिलेहनादि क्रियाओंसँ दत्तचित्त होकर इस प्रकार जक्ति करतेये कि जिसका अनुकरण करनेसँ प्राणी दृढ जक्तिवन्त हो सकता है

महानुजावो ! शास्त्रकारोंने दस प्रकारकी वैयावच्च फरमाई है तद्यथा—

(गाथा)

आयरिय उवाजाएधेर । तवस्ती गिलाणसेहाण॥

साहम्मी कुलगणसंघ । वैयावच्चं हवईदसहो ॥ १ ॥

आचार्यः—१ आचार्यः—जिससे धर्म प्राप्त हुआ हो उसकी सेवा करना
 २ उपाध्यायः—जिससे विद्या अभ्यास किया हो उसकी ज्ञप्ति करना, इत्य
 विरः—ज्ञानवृद्ध, पर्यायवृद्ध और वयोवृद्ध इन तीनोंकी खिदमत करना ४
 तपस्वीः—तपस्या करनेवाले महात्माकी सुश्रुषा करना ५ ग्लानिः—वीमरोकी
 वैयावच्च करना ६ सेहाणः—नवान दीक्षित मुनिकी यथोचित सेवा कर चा-
 रित्र रङ्गमें गाढ़ रङ्ग देना ७ स्वधर्मीः—अपन जिस प्रणालीसे जिस धर्मको
 पालन करते है उसही नियमाऽनुकूल धर्मको आचरण करनेवालेकी परिचर्या
 करना ८ कुलः—एक कुलका जैसे चन्दादि कुलवालेकी उपसना करना
 ९ गणः—एक गणवाले जैसे कोटिक प्रमुख गणधारीकी ज्ञप्ति करना, १०
 संघः—समुदायकी सुश्रुषा करना.

उपरोक्त दश प्रकारकी वैयावच्चमें जी अनेक सेवाएं है किन्तु ये मुख्य
 और अग्रव्यय आचरणीय है. वैयावच्चके ही अतुल प्रतापसे बाहुबल स्वा-
 मीको इस कदर भुजाबल प्राप्त हुआथा कि जगत चक्रवर्तिको पाञ्चोही युद्धोंमें
 परास्त किये

चक्रवर्तिके अतुल पराक्रमका एक उदाहरण नमुना पाठकोंकी सेवामें दा-
 खिल करता हूँ कि जिससे वैयावच्चका ठीक फल विदित हो जायगा

जब जगत चक्रवर्ति सर्वसे बलवान् मजेछ देशको विजय कर वापिस
 लौटे तब समस्त सेना अपने दिलमें आजिमान करने लगी कि हम बड़े ही
 सूरवीर है कि ऐसे डरपैय मजेछ देशको सर कर लिया इम व्यवस्थाको जान
 जगत महाराजने विचारा कि चक्रवर्ति पदकी अनत पुण्याईको न समझ सर्व
 सेना अहकारमें चक्रचूर होरही है इस लिये अपने पराक्रमका कुछ चमत्कार
 बतलाना चाहिये:—

रत महाराज एक आसन पर बैठ दाहिने हाथमें पान लिये हुवे मुखके करके अपनी समस्त फौजको यह हुकुम फरमाते हैं:—

हो मेरी समस्त सेना! आज तुम एक कौतुक दिखलाते हैं तुम एक लम्बा शृङ्खला, लेआकर मेरी कनिष्ठा अङ्गुली (चुट्टी उङ्गुली) में ठीक कर बाधदो और समस्त चतुर्द्धी सेना अपनी सम्पूर्ण ताकत घारा खींचो

आज्ञा पाते ही ३३ हजार मुकुटबंध राजा एड क्रोड पेदल ८४ लक्ष ७४ लक्ष घोड़े ७४ लक्ष ग्यादि समस्त क्रमशः उम श्रृंखलामें जुडकर अशेष शक्तिघारा आकर्षित की किन्तु वह अङ्गुली मनागपिनमुडी इस रमें जरत महाराजने पाननोश करनेके लिये आहिस्तेसैं जरा हाथकों ऊठाया कि समस्त सेना दहादह जमीन पर आगिरी इस अपूर्व पराक्रम देख सम्पूर्ण सेना चमक उठी और उनका अहकार जयज्जीत होकर तलमें डूब गया कहनेका तात्पर्य यह है कि जरत चक्रवर्ति ऐसे बलवान् पर जी वाहुबल स्वाधीने पराजय किये यह वैयावृत्तका ही विशाल भाव है

कष्ट एक साधु साध्वी लौकिक लज्जासे या स्वार्थमय होकर अपनी पूर्व जक्तिका अलौकिक दृश्य दिखलाते हैं वह ठारपर नीपनरूप फलकों नेवाली समक्षना चाहिये वे कृपावतार तो एक बार नहीं सो बार फिरकर चित आहार पानीकी योगवाई करते तथा प्रति लेकनादि उनके मरजीके अनुकुल कर उन्हे प्रमन्न करते थे तथा शरीरकी सुश्रुषा (चापना दवाना) भी इस प्रकार करते थे कि उनकी कली २ खिल उठती थी इस प्रकार दि-
तो जानसैं जक्ति करते थे कहां तक कहा जाय आपका वैयावृत्त गुण सर्वा-
ऽऽदरणीय है

(१०) स्वाध्यायः—स्वकीय पठन पाठनादिकों स्वाध्याय कहते हैं

वे पूज्य गुरु महाराज पञ्च प्रकारकी स्वाध्यायकर अपने कर्मपटलकों पूर
हटाते थे तद्यथा:—

(११६)

(गाथा)

वायणा पुञ्जणाचेव । तदायपरि श्रद्धणा ॥

अणुपेहा धम्मकहा । सजाओ होई पंचहा ॥ १ ॥

अर्थः—१ वाचना २ पृष्ठना ३ परिवर्तना ४ अनुपेक्षा ५ धर्म कथा।
इस तरह पांच प्रकारकी सजाय कही जाती है

विवेचनः—१ वाचनाः—किसी योग्य पाठकके पापसे पढ़ना तथा स्वयं
ग्रन्थ अवलोकन करना स्वम् किसीको उपकार बुद्धिमें पढ़ाना. २ पृष्ठनाः—
किसी स्थलपर किसी विषयमें यदि संदेह होजाय तो गुरुमहाराजसे अथवा
ज्ञान स्थविर वगेरासे पूछकर निर्णय करना. ३ परिवर्तनाः—पूर्वमें पड़े हुये
ग्रन्थोंकी पुनरावृत्ति करना ४ अनुपेक्षाः—अर्थ चिन्तन करना ५ धर्म
कथाः—अनेकविध धर्मोपदेश देकर जन्म प्राणिपोंका उद्धार करना

वे अप्रमत्त गुरुवर्य उपरोक्त पञ्च प्रकारकी उत्तम स्वाध्यायको सम्पूर्ण
आचरण कर अपनी आत्माका उद्धार करते हुये जन्मोत्पत्ता पर अविस्मरणीय
उपकार करते थे जिसकी प्रकरणवशात् बहुत कुछ महिमा ज्ञान विषयमें लिख
आए है. आप स्वाध्यायके एक श्लाघनीय घुरसिक थे

(११) ध्यानः—मनके एकाग्र अवलम्बनको अथवा सम्यक् चिन्तनको
ध्यान कहते हैं

आप योगीश्वर आर्च, रौद्र ध्यानको हलाशकर धर्म ध्यानकी दृढ़ आरा-
धन करते थे और यथाशक्ति शुद्ध ध्यानकी तीव्र खप करते थे ग्रन्थ गौरवके
जयसे चारो ध्यानको खुलाशा न करते केवल धर्म ध्यानकी ही व्याख्या
रूबुरू करता हूँः—

धर्म ध्यानके चार जेद होते हैं, तथाहीः—

(चौपाई)

आज्ञा विचय प्रथम द्विधर
 द्वितीय अपाय विचय सुखकार ॥
 विपाक विचय तीजा गुण धार
 संस्थान विचयमे जय २ कार ॥ १ ॥

(१) आज्ञाविचयः—नीतराग देवकी आज्ञामें चिन्तन करना यथाः—
 हे आत्मन् ! देवादि देव तीर्थकर प्रभुने पद छव्य, नौतत्व, सप्तनय, चारनि-
 क्केपे, सप्तजह्नी, उत्सर्ग, अपवाद, सिद्ध स्वरूप, निगोद स्वरूप, चतुर्दश गुण
 स्थान और स्यादादि स्वरूप द्वारा धर्म कथन किया है यह यथार्थ है सदैव
 तेरे आदरणीय व अनुकरणीय है यह पवित्र धर्म तुझे इस जन्ममें, परजन्ममें
 और जवोजन्ममें सुखकारी, हीतकारी और आनन्दकारी होगा ऐसे शुद्ध वि-
 चारोंमें तन्मय होजाना वह प्रथम जेद कहा जाता है

(२) अपायविचयः—कर्मोंके कष्टका विचारना यथाः—हे आत्मन् ! इस
 संसारमें कर्मोंके वश तू मलीन गिना जाता है तू स्फटिक रत्नसें भी अधिक
 उज्वल है कपायादिकोंके कारण ही मलीन हो रहा है जैसें जलका निर्मल
 स्वभाव है किन्तु कचरा वगैरा गिर जानेसें मलीन कहा जाता है तथैव तेरी
 दशा हो रही है इसलिये जरा सावधानीकों अखत्यार कर और निज निर्मल
 स्वरूपमें रमण कर जिससे अपूर्व आनन्दरस प्राप्त होगा ऐसे शुद्ध चिन्तनमें
 तल्लीन हो जाना वह द्वितीय जेद कहा जाता है

(३) विपाकविचयः—कर्म जोगका अनुभव करना जैसें—हे जीव ! तू
 जितना ही सुख दुःख, हर्ष, शोक वगैरा देख रहा है यह सब कर्मराजकी
 विचित्रता है सुख आये जीवीतव्य बाँडता है दुःख आए मरण इच्छता है यह
 तेरा स्वभाव नहीं है जिस वस्तु वेदनी या कोई भापत्तो मांस हो उस वस्तु
 सुखे २ शान्तता पूर्वक जोगना चाहिये क्योंकि वगैरे जोगे तेरा हरगीज छुट-

कारा नहीं हो सकता तो फिर हाथों से कर क्यों मबल कर्मबंध करता है कौन ऐसा मुख है जो उतरते हुवे कर्जमें दुःख मानकर उमें बढानेकी आजिलाषा करे एवं सुखके प्राप्त होने पर जी हर्षित नही होनी ज्ञादिये यह केवल पुण्य प्रकृतीका फल है जिसे अनन्ती बार प्राप्त किया तो जी कुछ इष्ट सिद्धि हां सिल नहीं हुई तो ऐसे सुखमें आनंद मनाना यह जी तेरी एक मोटी भूल है इसलिये दुःखमें ग्लानी व सुखमें खुशियाली नहीं होना चाहीये तू तो वैसे सुखको अङ्गीकार कर कि जो अक्षय, अविनाशी और सदैव अखण्ड रूप रहनेवाले हों ऐसा शुद्ध उपयोग लगाना उसे तृतीय जेद कहते है।

(४) संस्थानविचय—क्षेत्र सम्बन्धो विचार करना तथाही—हे अबधु!

सात नरकके सात राज जिसमें एकसे एकमें अधिक दुःख रहा हुवा है* जिनको कि सुनने मात्रसे हृदय धड़ ३ ने लगता है तथा १८ सो जो जिन तिर्यग्लोकमें एवम् उर्ध्व लोकमें द्वादशश देवलोक, नौलोकान्तिक, नौग्रेविक, पाच अनुत्तर विमान, सिद्ध शिला और सिद्ध स्थानादि अनेकक्षेत्र है इन सर्वक्षेत्रों अन्दर नैर्गश्य रूप, तिर्यच, मनुष्य, देव और निगोद रूप सर्व चतुर्दश राज लोकमें अनन्ती बार पर्यटन कर आया है किन्तु अब तक संतोष पैदा नहीं हुवा इस लिये अब ऐसी उत्तम करणी कर कि जिससे पौद्गलिक संयस्त पदार्थोंसे सर्वथा जुदा होजाय और अनंत सुखमय निर्मल सिद्ध स्थानमें संप्राप्त होकर निरंतर आनंदरसमें निमग्न हो जाय—ऐसा पवित्र विचार करना. वह चतुर्थ जेद कहा जाता है

इस प्रकार धर्म ध्यानको ध्याते हुवे पदस्थादि चार ध्यानोका जी प्रशंसनीय आराधन करते थे जिसका किञ्चित्स्वरूप इस स्थलपर उद्धृतकर पाठकोंकी सेवामें पेश करता हूँ:—

(१) पदस्थः—अरिहन्तादि पञ्च परमोष्ठिके निर्मल गुणोंका विचार करना तथाही:—

* देखिये चतुर्गतिके दृश्यमें और अनुभवकर आत्माको उत्तम मार्गपर आरोपण कीजिये

श्री अरिहन्त देव; ज्ञानावर्णीय, दर्शनावर्णीय, मोहनीय और अन्तराय इन चार छष्ट धनघातिये कर्मोंको विनाश करनेवाले तथा केवलज्ञान, केवल दर्शन और यथाख्यात चारित्र्यको धारण करनेवाले एवम् चौतीस अतिशय, पैंतीस चाणी और अष्ट महा प्रातिहार्य विराजमान-महागोप, महा निर्यामक, महा-सार्थवाह, जगद्वैध, तीर्थङ्कर, जिनेश्वर, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, विश्वपते, विश्वोत्तम, जगन्नाय, जगद्बन्धु, जगत्तारण, अशरण शरण, जवजय हरण, शिवसुल-करण, तरणतारण, वीतराग, धर्मोपदेशक, धर्मरत्नादि अगण्य गुणगणा विज्ञूषित तथा:—

श्री सिद्ध परमात्मा जन्म मरण डःखरहित. निर्जन्म, निराकार ज्यो-तिस्वरूप चिदानन्द, निसङ्ग, निरिच्छा, निष्कृपाय, निष्काम, अखण्ड, शास्वत और अनन्त सुखोंमें तन्मय एवम्:—

श्री आचार्य जगवान् सकल मुनि श्रेष्ठ, गुणगणी जेष्ठ, धीर, वीर, प्रव-चनाधार, प्रवचन प्रकाशक, सारण, वारण, चोषण, पङ्चिचोषण कुशल तीर्थङ्करोपम, बहुश्रुत क्रियाधार, समयज्ञ, रसज्ञ, तत्त्वज्ञ, गद्यस्तम्भ पदधारी, शामनोन्नतिकारी, शासनोद्योतकारी, सूत्रार्थधारी, ज्ञानजोगी, अनुभवयोगी आदि अनेक दिव्य गुणोपेत तथा.—

श्री उपाध्यायजी महाराज ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य निधान, श्री आचार्य धर्म राजधानीसु प्रधान, सकल नय निक्षेप प्रमाणगर्जित द्वादशवृत्त, डरौंधी शिष्य वर्गके सुबोधक, ज्ञानात्माओंके अक्षेप सशय निवारक, शिक्षक, दोषक, परीक्षक, श्रुतवृद्ध, परम पात्र, निर्मलगात्र, अप्रमादी, धर्मधुरंधर, धर्मावतार और सिद्ध साधक आदि बहु गुणवरिष्ठ एवम्:—

पवित्र मुनि महाराज शान्त, दान्त, महन्त, सयमी, ज्ञानी, ध्यानी, परि-सहे जीपक, कृपादि गुणमन्त्र अप्रतिषेधविहारी, रत्नावली कनकावली, सु-क्तावली, गुणरत्न, सम्बत्सर प्रमुख डण्कर तपाराधक, जिनाकाराधक, सदैव उपासनीय, कृपाज्जणार, दयासागर, तेजस्वी, यशस्वी, अतुल प्रतापी, शशि समान सौम्य, सायरसम गम्भीर, जारण्डवद अप्रमत्त, कल्पवृक्षवद परोप-कारी, पृथ्वीमम सहनशील, परमवैरागी, डर्नपत्यागी, सकल गुणरागी, शा-स्त्रज्ञ, वर्षज्ञ, तत्त्वज्ञादि समस्त गुणगणालङ्कृत ऐसे परमपूजनीय इस प्रकार

इन पाञ्चों जवो-दागक पवित्र पदोंके अखिल गुणोंका आराधन करना वह पदस्थ नामक प्रथम ध्यान कहा जाता है.

(२) **पिएरुस्थः**—शरीरमे रहे हुवे चेतनके गुणोंका विचरना यथाः—पदस्थ ध्यानमें अरिहन्तादि पञ्चपरमेष्ठीके जितनेही अनुपम गुण फरमाए हैं वे सर्व मेरी आत्मामें विद्यमान हैं किन्तु छुट्ट कर्मोंके आवर्णसैं ढके हुवे सर्व अदृश्य होरहे है; ड्वार कर्मपटलसैंही मेरे अपूर्व निर्मल गुणोंका प्रतिज्ञास नहीं होता; इसलिये उपरोक्त पञ्च परमेष्ठिने जिन ९ त्रैलोक्य प्रशंसनीय सद्-मार्गोंको आचरण किये है उनका मैत्री अनुकरण कर अपनी आत्मकों पवित्र करूं ऐसा निर्मल विचार करना; वह पिएरुस्थ नामक द्वितीय ध्यान कहा जाता है

(३) **रूपस्थः**—किसी आकार विशेषमें रहे हुवे आत्माके गुणोंको विचरना यथाः—मै कर्म वश शरीर वारण करनेके हेतु कजी निगोदिया, कजी नैरइया, कजी, पृथ्वी, अप, तेज, वाज और वनस्पती कजी बेन्डी, तेन्डी, चौरिन्डि, असन्नी और सन्नी पञ्जेन्डी; कजी मनुष्य और कजी देवतादि अनेक नामोंसैं पुकारा जाता हूँ किन्तु वस्तुतः मैं एक अमूर्त्त निर्मल, अजेद, शुद्धता रूप चिदानंद तत्वामृत, असङ्ग, अखण्डादि गुण सहित सिद्ध स्वरूप हूँ—इस प्रकार चिन्तन करना; वह तृतीय रूपस्थ ध्यान कहा जाता है

(४) **रूपातीतः**—अरूपी निर्मल आत्माका विचार करना जैसें—यह चेतन अनंत ज्ञानमयी, अनंत दर्शनमयी, अनंत चारित्रमयी, अनंत अव्या-वायु मुखमयी, अनंत मुखविलासमयी, अनंत अगुरु लघुगुणमयी, अनंत अरूप स्थितिमयी, अनंत वीर्यमयी, अनाद्यनंत निखानंद, अविनाशी, अवेदी, अनु-पाधि, अजर, अमर, अव्यय, अकलङ्क, अरोगी, अक्लेशी, अयोगी, अचल, अमल, सहजानंदी, सहजः स्वरूपी, पूर्णानंदादि अनंत गुणनिधान सिद्ध स्वरूप है इस तरहकेवल आत्मगुणोंमेंरमण करना यह चतुर्थ रूपातीत ध्यान कहा जाता है

आप मुनीश्वर इस प्रकार उत्तमोत्तम ध्यानकर अपनी आत्माका क-व्याण करते थे

(११) उत्सर्गः—किसी पदार्थके त्यागकों उत्सर्ग कहते हैं, उसके दो जेद होते हैं. प्रथम इच्योत्सर्ग और द्वितीय ज्ञावोत्सर्ग

प्रथम इच्योत्सर्गके चार जेद इस प्रकार हैं यथाहीः—

(१) गणोत्सर्गः—गण (समुदाय)का सागकर जिन कल्पादि काठिन्य मार्ग अङ्गीकार करना

(२) देहोत्सर्गः—अनशनादि व्रत लेकर शरीरका त्याग करना अथवा काउसग ध्यानकर शरीरकों ठोड़ना

(३) उपध्युत्सर्गः—कल्प विशेष उपधीका अलग करना

(४) अशुद्धजन्त—पाणोत्सर्गः—सदोष अशनादि चतुर्विध आहारका त्याग करना

ज्ञावोत्सर्गके तीन जेद होते हैं तद्यथाः—

(१) कपावोत्सर्गः—क्रोध, मान, माया और लोभादि १५ कपायोंका दूर हटाना

(२) जवोत्सर्ग वा ससारोत्सर्गः—नरकादि जवके कारण जूत-मिथ्या-त्वादिको जुदा करना

(३) कर्मोत्सर्गः—ज्ञानार्थ्यादि अष्ट कर्मोंके हेतु जूत ज्ञान विरोधकादि विषयोंको दूर करना

उपरोक्त इच्योत्सर्ग और ज्ञावोत्सर्गोंमें से वे पूज्य गुरुवर्य कइ एक सरा-हनीय आचरण कर अपने उत्कृष्ट श्रमण पदकों सार्थक करते थे और कइ एक की तीव्र खप करते हुवे अपने मानव जवकों कृतकृत्य करते थे

इन द्वादश जेदोंके अतिरिक्त आप तीर्थ स्वरूप प्रातःकालके प्रतिक्रमणमें निस पट्ट मासिक तप का चिन्तन करते हुवे यथा शक्ति तपस्या अङ्गीकार कर

अपने कर्मोंकी निर्जरा करते थे यद्यपि ठमासिक तप प्रथम अनशन तपमें समावेश होसकता है किन्तु निम्न स्मरणीय होनेसे तथा, समस्त बाल गोपालकों विशेष लाजप्रद समझ चेतन सुमति के प्रश्नोत्तरमें संघटित करके पृथग् उद्धृत करनेमें प्रयत्नशील होता हूँ

(सर्वोपयोगी तप चिन्तन)

सुमतिः—हे चेतन महाराणा! राजग्रही नगरीके नालीन्दे पारुमें शासनाधीश्वर श्रीवीर परमात्माने ठमासी तपस्याकी आप जी उस पवित्र तपस्याको आराधन करके अपना कल्याण कीजियेगा

चेतन—प्रियसुमते ! मैं पद् मासी तपस्याके शब्दतक सुनना नहीं चाहता, श्रवण करतेही मेरा हृदय तड़फता है मेरे सामने नाम तक मत ले

सच है ! जोजनका वियोग बढ़ाही डःसह है चेतनने पद्मासी तप जब नामन्जूर किया तब उस सुमतिने विचारा कि जो अनादि कालसे कुमतिके साथ प्रेम कर आनंद मना रहे है उन्हें एकदम सुमार्गमें उपस्थित करना मुश्किल है इसलिये मंनोप दे देकर सन्मार्गके अजिमुख करना उचित होगा; यह सोच पुनरपि चेतन राणाको समजाती हैः—

सुमतिः—हे माणपते ! एक दिन कम पद् मास कर सकते है ?

चेतनः—महानुजावा ! नहीं कर सकता

तथैव दो दिन कम कर सकते है ? नहीं कर सकता तीन दिन कम कर सकते है ? नहीं कर सकता चार दिन कम कर सकते है ! नहीं कर सकता पाच दिन कम कर सकते है ? नहीं कर सकता छ दिन कम कर सकते है ? नहीं कर सकता सात दिन कम कर सकते है ? नहीं कर सकता आठ दिन कम कर सकते है ? नहीं कर सकता इसही प्रकार एकश दिन कम करते पन्ध्र दिन कम कर सकते है ? नहीं कर सकता तथैव एकश दिन कम करते पच्चीस दिन कम कर सकते है ? इसही तरह उनतीस दिन कम पद् माम तप कर सकते है ? नहीं कर सकता

हे गुणनिधे ! तीस दिन यानि एक मास कम ठ महिने अर्थात् पाच महिने तो स्वीकार कीजिये चूके वार १ यह सुअवसर नहीं मिल सकता । जरा उपयोग स्थिर कर विचार कीजियेगा इसमें आपका एकान्त कल्याण होनेवाला है

सकनो ! मदोन्मत्त आत्माके कदाग्रदकों दूर करना उःसाध्य है तदपि पुरुषार्थ चलवान् है अस्तु.

चेतनः—मिय पतिन ! पाँच महिनेकी तपस्या मैं हरगजि नहीं कर सकता पुनने मात्रसें मेरा शरीर धूजता है जिक्र तक करना ठोम दे

इन शब्दोंको श्रवणकर वह महानुजाया विचार करती है खेर और जी निच श्रेणीके तपका दरिपाप्त करना उचित है—यद सोच प्रेमपूर्ण कहती हैः—

‘पारे’ अबधु ! खेर यदि आप पाच मास नहीं कर सकते है तो कुछ पर-वाह नहीं किन्तु एक मास और एक दिन कम पटमास तप कर सकते है ? अर्थात् एक दिन कम पाच मास कर सकते है ? नहीं कर सकता तयैव एक १ दिन कम करते उन्नतीस दिन कम पाच मास कर सकते है ? नहीं कर सकता

हे ब्रह्मदेव ! दो मास यानी साठ दिन कम ठ मास कर सकते है ? अ-र्थात् चार मास तो अहोकार कीजिये एक हिस्सा तो निकल गया केवल दो हिस्से ही शेष है घराहदकों त्याग कर सन्तोष, वृत्तिकों आदर कीजिये और भेरी प्रार्थनाकों कबूल करके अपने निज स्वरूपको कृतार्थ कीजियेगा

पाठकवरों ! कर्मरूप मदिराको पान किया हुवा पागल चेतन बिलकुल अहोकार नहीं करता केवल यह कहता है कि चानुर्मासिक तपस्या करनेको मैं सर्वथा असमर्थ हूँ व मौनको अखितयार कर ले तेरे इन “ कर्णशूलवत् ” शब्दको मैं नहीं सह सकता विचारी सुमता दिलगीर होकर पुनः कहती हैः—

हे पाणाधार ! दो महिने और एक दिन कम पटमास अर्थात् एक दिन कम चार मास कर सकते है ? तयैव एक १ दिन न्यून करते उन्नतीस दिन कम चार मास कर सकते है ? नहीं कर सकता अस्तु तीन मास तो कबूल

कीजियेगा अब तो अर्धजागही रह गया है फिर आपको ऐसी अपूर्व सत्काम निर्जराका कब सौजाग्य प्राप्त होगा

चेतनः—भियसुमते ! तेरा डःखदाई कयन सर्वथा उपेक्षणीय है मैं किसी कदर अङ्गीकार नहीं कर सकता

सुमतिः—लाचार होकर हे मेरे सङ्पयोगी चेतन राणा ! तीन महिने और एक दिन कम पद्मास यानी एक दिन कम तीन मास कर सकते हैं ? तयैव क्रमशः एक २ वासर कम करते हुवे उनतीस दिन कम कर सकते हैं ? नहीं कर सकता अस्तु चार माह कम पद्मास तप यानी दो मासका तप तो ऋवृल करियेगा; स्वामिन् ! पुनः २ यह मानव जव प्राप्त होनेवाला नहीं है समजना है तो समझ लीजिये; वना फिर पस्ताना हागा

चेतनः—प्यारी सुमते ! तुमारा अनाचरणीय कयन बिलकुल अमान्य है विचारी कुमति मुजे सदैव सुखकारिणी है

सुमतिः—“मजबूर होकर” हे मेरे प्राणवल्लभ ! चार महिने और एक दिन कम अर्थात् एक दिन कम दो मास कर सकते हैं ? इसही तरह एक २ अहन् कम करते उनतीस दिन पर्यन्त पूठकर अखीरमें बिकृति करती है कि अब तो मरुसो दिन कम हो गये केवल तीस दिनही की प्रार्थना हे कृपा कर स्वीकारता फरमाईयेगा

चेतनः—प्राणवल्लभे ! चाहे वह तुमारी निगाहमें ठीक हो हमतो सदैव खिलाफ (AGAINST) है तुम इस कयनको सर्वथा ठोड़ दो

सुमतिः—प्राणपतेः—यदि आपकी मास कमणकी समर्थ्य नहीं है तो पाश्च मास और एक दिन कम पद्मास यानी एक दिन कम मास कमण कर सकते हैं ? इसही तरह एक २ दिन कम करते तेरह दिन तक पूठती हुई प्रार्थना करती है कि हे नाथ ! मेरी चिरकालीय प्रार्थनाको अब तो कृपाकर सफल कीजिये !

चेतनः—माणभिये! मै सुनताए थक गया फइ वार मौनका हुकुम बहीस किया किन्तु अब तक तू अपनी हटकों नहीं ठोसती है

सुभतिः—दिलमें सोचकर “जला करते जो बुरा होता है” खेर कोई हर्ज नहीं पुनरपि सहायिक होकर-माणनाथ ! चौतीसजत्त* कर सकते हैं ? नहीं कर सकता बत्तीसजत्त कर सकते हैं ? नहीं कर सकता तीसजत्त कर सकते हैं ? नहीं कर सकता; इसही प्रकार दो ९ जत्त कम करते १० जत्त यानी अष्ट कर्म निरुदनके हेतु एक अचार्य तो कीजियेगा ! नहीं कर सकता तथैव दो ९ जत्त कम करते अष्ट जत्त यानी ज्ञान, दर्शन, और चारित्र्यों उज्वल करनेवाला एक तेला कर अपूर्व सुखका अनुभव कीजियेगा ! नहीं कर सकता

पट्टजत्त कर सकते हैं ? नहीं कर सकता चार जत्त यानी उपवास व्रतकों तो अङ्गीकार कीजियेगा ! नहीं कर सकता महा माङ्गलिक आचाम्ल (आयँविल) कर सकते हैं ? नहीं कर सकता तथैव नीविगय, एकल ठाणा, दात, एकासन कर सकेंगे ? नहीं कर सकता वे आसन कर सकेंगे ? नहीं कर सकता इसही तरह अबद्ध, पुरिमद्ध, साढपोरसी, पोरसी कर सकते हैं ? देखिये अब तो केवल ३ घटेकीही मार्यना है क्या अब जी स्वीकारनेमें हिचकायों हे स्वामिन् ! कृपया अब तो मेरी इच्छाको सफल कीजियेगा

चेतनः—प्रिय कान्ते ! तीन कलाफकी हुदा मुजसें सहन नहीं हो सकती

सुभतिः—दिलमें विचारकर SOME THING IS BETTER THAN NOTHING यानी बिलकुल नहींसें तो कुछ होना अठ्ठा है ऐसा खयाल कर-डःखपूर्वक रुदन करती हुईः—हे माणाधार ! कुमतिकी निरतर मार्यना मञ्जूर करते हो तो अब मरी अन्तिम नौकारसीकी मार्यना तो कनूल कीजिये !

* चार भक्तका एक उपवास, उ भक्तका एक बेला, अष्टभक्तका एक तेला तथैव जितने उपवास हो उनके द्विगुने कर दोमत अधिक मिला देना यह जत्तका नियम है लिहाना चौतीस भक्तके तोलह उपवास होते हैं तथा कहीं पर केवल द्विगुनेसेही भक्तका नियम प्रमाण किया गया है येदानोही नियम श्री जगवतीसूत्रमें फरमाय हैं.

चेतनः—प्रिये ! क्या रो कर मुझे मरती है मैं नौकारसी जी नहीं कर सकता चूँके मूँके सूर्योदयके प्रथम चाहपानी वगेर नहीं चलता, कच्ची कहता है मुझे चलम—सिगरेट पीये वगेर, कच्ची कहता अफयूम खाए वगेर दस्त नहीं लगता, कच्ची कहता माजुम, जङ्ग वगेरा सेवन किये विडन आफरा चढ़ जाता है इत्यादि अनेक डवर्षसनोके वशीज्जुत हुवा इस प्रकार कथन करता है—तू बनी ही पगला है अनेकवार रोकनेपर जी नहीं मानती खबरदार आइन्दा पूरा खयाल रखना वरना तेरे हकमें बुरा है

सुमतिः—मनमें विचार कर “अब हाथ जोड़ीसें काम चलने-वाला नहीं, रोए राज कच्ची मिलना नहीं बहाडरीको धारण कर उपदेश देना उचित होगा.” माए प्यारे ! क्या आपको इनकार करते लज्जा नहीं आती ! घिसते शिलपर जी निशान हो जाता है किन्तु आपके वज्र हृदयपर कुछ जी असर न पहुँचा धन्य है ! आपके अनंत ज्ञानादि चतुष्टय गुणोंको और धन्य है ! आपके शुद्धउपयोगको तथा कृत पुण्य है ! आपकी प्रशंसनीय पवित्रताको और सुवारिक है आपकी जवोधारक सत् सङ्गतको एवम् शतशः धन्य है आपके चैतन्य लक्षणको; क्या ही अज्ञा होता कि यदि आप चैतनकेवजाय जम् नामसे मशहूर होते आप मेर इन शब्दोंपर बुरा नमानियेगा मैं सदैव आपका जला चाहनेवाली एक किडूरा हूँ; इसलिय इस प्रकार जा बेजा शब्द कहती हूँ—अब जी आप मेरी प्रार्थनापर गोर फरमाइये और मेरी ।दली आशाको पूर्ण कर अपना कल्याण कीजियेगा

चेतनः—अत्यन्त आग्रहके हेतु दाक्षिण्यता वश होकर विचारता है “अस्तु इसका जी सन्मान रखना चाहिये कुछ दिन हजमाईस कर अबलोकन करना चाहिये यदि सानंद निर्वाह हो जायगा तो हमेशाके वास्ते पावदी कर लेंगे” ऐमा विचार कर—प्रिय सुमते ! अज्ञा अब आजसे तुमारी प्रार्थनाऽनुसा नौकारसी करेंगे

सुमतिः—हे प्राणेश्वर ! आप मेरे स्वामी हैं, आप मेरे नाथ हैं; आपही प्राणाधार हैं—यदि आप मेरी प्रार्थनाको सफल न करें तो अन्य कौन करेगा इस प्रकार अनेकशः स्तुती की

अनादि कालमें कुमतिके वशीभूत हुवे चेतनकों उपकारिणी सुमति देवीने सन्मार्गमें प्रवृत्त किया

इसतर कितनेके दिन सा वर्ष नरकाऽयुष तोढनेवाली नौकारसोका अभ्यास कराकर हजार वर्ष नरक आयुष्य तोढनेवाली महारसो अद्बीकार कराई तथैय क्रमशः साठ महरसी, पुरिमट्ट, अत्रट्ट, वेयामन, एकामन, एकल वाणा, दात, नीरिगय, अँयविल और यावत् उपवास पर्यन्त उत्तम मार्गपर पहुँचा दिया अब अविस्मरणीय उपकारिणी सुमति कहती हैः—

सुमतिः—प्राणवल्लभ ! क्या आपको आनदरसका अनुभव हुआ

चेतनः—प्राणभिये ! तेरा अवर्ण्य उपकार हरगीज नहीं भूल सकता छष्ट कुमतिने मुझे फँदमें फसाकर अनादि कालसे डःसख डःखसे दग्ध किया इस आनद रसका आस्वादन पामर माणी नहीं पा सकते अनुजगि लोगही इस अपूर्व आनदको लूट रहे है—इसही तरह बेला, तेला यावत् अठाई, पकट रूपण, मामरूपण, दोमास, चार मास और ष मास पर्यन्त तपस्या कर अपने निज स्वरूपमें तन्मय हुआ

एक दिनका निरु है कि चेतन सुमतिसे पूछता हैः—

चेतनः—हे प्राणवल्लभ ! बेला, तेला आदि इकठी तपस्या करनेवाले हों कुछ अधिक लाभ होता है या पृथक् २ दो उपवासा, तीन उपवासादि करनेवालेको और एकदमसेबेले, तेले चगरा करनेवालेको सटधही फल होता है

सुमतिः—प्राणेश्वर ! यह तो अनुभवसे ही प्रकट सिद्ध है कि जुदा ३ उपवास करनेसे इकत्रित करनेवालेकी विशेषतः इच्चानिरोध होसकती है ज्यों ३ पौत्रलिक पदार्थोंसे इडा विशेष हटनी जाती है त्यों २ आत्म अनुभव प्रकट होता जाता है इधर शास्त्रकारोंने इकठी तपस्याका पञ्चगुणा फल फरमाया है जिसे श्रवणकर उत्तम पुरुषोंके ज्ञान एकदम उल्लसित होजाते हैं हेनाथ ! उसही तपश्चर्याके अनुपम महात्म्यको ध्यानपूर्वक श्रवण करनेका अनुग्रह कीजियेगा

॥ इकट्ठी तपस्याका महा फल ॥

(नूतन प्रणाली)

नं०	॥ तपश्चर्या ॥
१	एक उपवास करे तो एकका ही फल होता है
२	दो उपवास इकठे करे तो पाँच उपवासोंका फल होता है
३	तीन उ० इ० करे तो २५ उपवासोंका फल होता है
४	चार उ० इ० करे तो १२५ उपवासोंका फल होता है.
५	पाँच उ० इ० करे तो ६२५ उपवासोंका फल होता है
६	उ उ० इ० करे तो ३ हजार १२५ उपवासोंका फल होता है
७	सात उ० इ० करे तो १५ हजार ६२५ उपवासोंका फल होता है.
८	आठ उ० इ० करे तो ७८ हजार १२५ उपवासोंका फल होता है
९	नव उ० इ० करे तो ३ लक्ष ७० हजार ६२५ उ० फल होता है.
१०	दस उ० इ० करे तो १९ लक्ष ५३ हजार १२५ उ० फल होता है
११	ग्यारह उ० इ० करे तो ९७ लक्ष ६५ हजार ६२५ उ० फल होता है
१२	बारह उ० इ० करे तो ४ करोड़ ८८ लक्ष २० हजार १२५ उ० फल होता है
१३	तेरह उ० इ० करे तो २४ करोड़ ४१ लक्ष ४० हजार ६२५ उ० फल होता है
१४	चौदह उ० इ० करे तो एक अर्ब २२ करोड़ ७ लक्ष ३ हजार १२५ उ० फ०
१५	पन्ध्रह उ० इ० करे तो ६ अर्ब १० करोड़ ३५ लक्ष २५ हजार ६२५ उ० फ०

१६	सोलह उ० इ० करे तो ३० अर्ब ५१ कोड़ ७५ लक्ष ७० हजार १२५ उ० फल होता है
१७	सतरह उ० इ० करे तो १ खर्ब ५३ अर्ब ५० कोड़ ७० लक्ष ६० हजार ६२५ उ० फ०
१८	अठारह उ० इ० करे तो ७ खर्ब ६२ अर्ब ६३ कोड़ ६४ लक्ष ५३ हजार १२५ उ० फ०
१९	उन्नीस उ० इ० करे तो ३० खर्ब १४ अर्ब ६९ कोड़ ७२ लक्ष ६५ हजार ६२५ उ० फ०
२०	बीस उ० इ० करे तो १ नील ए० खर्ब ७३ अर्ब ४८ कोड़ ६३ लक्ष २८ हजार १२५ उ० फ०
२१	एकवीस उ० इ० करे तो ए नील ५३ खर्ब ६७ अर्ब ४३ कोड़ १६ लक्ष ४० हजार ६२५ उ० फ०
२२	बाईस उ० इ० करे तो ४७ नील ६८ खर्ब ३७ अर्ब १५ कोड़ ८२ लक्ष ३ हजार १२५ उ० फ०
२३	तेवास उ० इ० करे तो ३ पद्म ३८ नील ४१ खर्ब ०५ अर्ब ७९ कोड़ १० लक्ष १५ हजार ६२५ उ० फ०
२४	चौबीस उ० इ० करे तो ११ पद्म ६२ नील ए खर्ब २८ अर्ब ६५ कोड़ ५० लक्ष ७८ हजार १२५ उ० फ०
२५	पचवीस उ० इ० करे तो ५९ पद्म ६० नील ४६ खर्ब ४४ अर्ब ७७ कोड़ ५३ लक्ष ६० हजार ६२५ उ० फ०
२६	छवीस उ० इ० करे तो २ सङ्ग ६८ पद्म २ नील ३२ खर्ब २३ अर्ब ०७ कोड़ ६९ लक्ष ५३ हजार १२५ उपवासोका फल०
२७	सत्तावीस उ० इ० करे तो १४ सङ्ग ६० पद्म ११ नील ६१ खर्ब १९ अर्ब ३८ कोड़ ४७ लक्ष ६५ हजार ६२५ उप० फल०
२८	अष्टावीस उ० इ० करे तो ७४ सङ्ग ५० पद्म ५८ नील ५ खर्ब ६३ अर्ब ६७ कोड़ ३८ लक्ष २८ हजार १२५ उप० फल०
२९	उनतीस उ० इ० करे तो ३७२ सङ्ग ५२ पद्म ६० नील २९ खर्ब ८४ अर्ब ६१ कोड़ ६१ लक्ष ४० हजार ६२५ उप० फल०

३०	तीस उ० इ० करे तो एक हजार ८६२ सहस्र ६४ पद्म ५१ नील ४९ खर्ब २३ अर्ब ९ कोड़ ५७ लक्ष ३ हजार १२५ उ० फ०
३१	एकतीस उ० इ० करे तो ९ हजार ३१३ सहस्र २२ पद्म ५७ नील ४६ खर्ब १५ अर्ब ४७ कोड़ ८५ लक्ष १५ हजार ६२५ उ० फ०

(प्राचीन प्रणाली)

नं०	॥ तपस्या ॥
१	एक उपवास करे तो एकका ही फल होता है .
२	दो उपवास इकठ करे तो पाँच उपवासोंका फल होता है ..
३	तीन उ० इ० करे तो २५ उपवासोंका फल होता है
४	चार उ० इ० करे तो १२५ उपवासोंका फल होता है ..
५	पाँच उ० इ० करे तो ६२५ उपवासोंका फल होता है ...
६	छ उ० इ० करे तो ३ हजार १२५ उपवासोंका फल होता है
७	सात उ० इ० करे तो १५ हजार ६२५ उपवासोंका फल होता है
८	आठ उ० इ० करे तो ७८ हजार १२५ उपवासोंका फल होता है
९	नव उ० इ० करे तो ३ लक्ष ६० हजार ६२५ उप० फल होता है
१०	दस उ० इ० करे तो १६ लक्ष ५३ हजार १२५ उप० फल०
११	ग्यारह उ० इ० करे तो ६७ लक्ष ६५ हजार ६२५ उप० फल०
१२	बारह उ० इ० करे तो ४ कोड़ ८८ लक्ष २८ हजार १२५ उ० फ०
१३	तेरह उ० इ० करे तो २४ कोड़ ४१ लक्ष ४० हजार ६२५ उ० फ०
१४	चौदह उ० इ० करे तो १२२ कोड़ ७ लक्ष ३ हजार १२५ उ० फ०
१५	पन्ध्रह उ० इ० करे तो ६१० कोड़ ३६ लक्ष १५ हजार ६२५ उ० फ०

१६	सोलह उ० इ० करे तो ३ हजार क्रोड ८१ क्रोड ७५ लक्ष ७० हजार १२५ उ० फल होता है
१७	सत्तरह उ० इ० करे तो १८ हजार क्रोड २२८ क्रोड ७८ लक्ष ९० हजार ६२५ उ० फल०
१८	अठारह उ० इ० करे तो ७६ हजार क्रोड २९३ क्रोड ९४ लक्ष ५३ हजार १३५ उ० फल०
१९	उनतीस उ० इ० करे तो ३ लक्ष क्रोड ८१ हजार क्रोड ४६९ क्रोड ७२ लक्ष ६५ हजार ६२५ उ० फ०
२०	बाँस उ० इ० करे तो १९ लक्ष क्रोड ७ हजार क्रोड ३४८ क्रोड ६३ लक्ष ३८ हजार १२५ उ० फ०
२१	एकवीस उ० इ० करे तो ९५ लक्ष क्रोड ३६ हजार क्रोड ७४३ क्रोड १६ लक्ष ४० हजार ६३५ उ० फ०
२२	बावीस उ० इ० करे तो ४ क्रोडाक्रोड ७६ लक्ष क्रोड ८३ हजार क्रोड ७१५ क्रोड ८२ लक्ष ३ हजार १२५ उ० फ०
२३	तेवन्ति उ० इ० करे तो २३ क्रोडाक्रोड ८४ लक्ष क्रोड १८ हजार क्रोड ५७९ क्रोड १० लक्ष १५ हजार ६२५ उ० फ०
२४	चौबीस उ० इ० करे तो ११९ क्रोडाक्रोड २० लक्ष क्रोड ९२ हजार क्रोड ८९५ क्रोड ५० लक्ष ७८ हजार १२५ उ० फ० .
२५	पञ्चवीस उ० इ० करे तो ५९६ क्रोडाक्रोड ४ लक्ष क्रोड ६४ हजार क्रोड ४७७ क्रोड ५३ लक्ष ९० हजार ६३५ उ० फल०
२६	ठर्वास उ० इ० करे तो दो हजार ९०० क्रोडाक्रोड २३ लक्ष क्रोड २३ हजार क्रोड ३८७ क्रोड ६९ लक्ष ५३ हजार १२५ उ० फल०
२७	सत्तावीस उ० इ० करे तो १४ हजार ९०१ क्रोडाक्रोड १६ लक्ष क्रोड ११ हजार क्रोड ९३८ क्रोड ४७ लक्ष ६५ हजार ६२५ उ० फल०
२८	अठ्ठावीस उ० इ० करे तो ७४ हजार ५०५ क्रोडाक्रोड १८० लक्ष क्रोड ५९ हजार क्रोड ६९२ क्रोड ३८ लक्ष २८ हजार १२५ उ० फल०

२९	उनतीस ज० इ० करे तो ३ लक्ष ७२ हजार ५२९ कोड़ाकोड़ दो लक्ष कोड़ ९७ हजार कोड़ ४६१ कोड़ ९१ लक्ष ४० हजार ६२५ उप० फल होता है
३०	तीस-ज० इ० करे तो १७ लक्ष ६२ हजार ६४५ कोड़ाकोड़ १४ लक्ष कोड़ ९२ हजार कोड़ ३०९ कोड़ ५७ लक्ष ३ हजार १२५ उप० फल
३१	इकतीस ज० इ० करे तो ९३ लक्ष १३ हजार २२५ कोड़ाकोड़ ७४ लक्ष कोड़ ६१ हजार कोड़ ७४७ काह ८५ लक्ष १५ हजार ६२५ उपवासोंका फल होता है . . .

मेरे प्यारे गुणानुरागियों ! आपको उपरोक्त इकठ्ठी तपस्याके महा फलकों पढ़कर यह जलीब प्रकार सुविदित होगया होगा कि ऐमे अपूर्व रत्न खजानेको लूटना कौन न चाहता होगा ? हमारे आत्मार्थी नव्यात्मा अब इस तर्फ ध्यान देकर महा निर्जराज्जुत दिव्य तपास्यका आचरणकर अपनी आत्माका कल्याण करेंगे ऐमा सुदृढ़ विश्वास है, देखिये इस प्रताप शाली दिव्य तपस्यासे इस प्रकार अनुपम गुणोंकी सुभासि होती है:—

(श्लोक)

यस्माद्भिन्न परंपरा विघटते दास्यं सुराःकुर्वते ।

कामः शाम्यति दाम्यतीन्द्रियगणः कढ्याण मुत्सर्पति ॥

नुन्मीलन्ति महर्षयः कलयति ध्वसचयः कर्मणां ॥

स्वाधीन त्रिदिवं शिवच जवति श्लाघ्यं तपस्तत्र किम् ॥१॥

भावार्थः—जिस अतुल प्रतापी दिव्य तपधारा परपरानुगत विघ्न एक-दमसे विनाश हो जाता है और विनय श्रेष्ठ देवता दामपना करने लग जाते

है तथा उर्जय कामदेव तत्काल उपशान्त हो जाता है और चंपल इन्दीय समुदाय एकदम स्वाधीन हो जाती है एवम् महामङ्गल वर्तने लग जाता है तथैव विपुल वैभव संप्राप्त होता है इसही प्रकार घोर कर्म शत्रु तत्क्षण विध्वंस हो जाते हैं अन्तिममें स्वतन्त्रता पूर्वक सामान्यतया उत्तम देवलोकके अपूर्व सुखोंको जोगता है और विशेषतया अचिरात् मोक्षपदको पाकर अनंत सुखोंका अनुभव करता है सज्जनो ! क्या यह उग्र तप श्लाघनीय नहीं है ? किन्तु अवश्यही त्रिजगत प्रशसनीय व अनुकरणीय है

हमारे वे महा तपस्वी पूज्य गुरु पुङ्गव इस प्रकार तपस्याका आचरण करते हुवे अपनी आत्मामें रमण करते थे अहाहा ! आपकी तप महिमा जगत् प्रशसनीय व विश्व अनुसरणीय है, वैराग्य रसिकों ! अब मैं आपकी निर्मल ज्ञावनाका किञ्चिद् विवरण प्रदर्शित करनेका सहास करता हूँ—

॥ निर्मल ज्ञावना ॥

शुभ विचारोंद्वारा सत्तागत रहे हुवे आत्मगुणोंका आविर्भाव करना : उसे ज्ञावना कहते हैं

वे पूज्य गुरुवर्य विशाल विस्तीर्णरूपसे निम्नलिखित चार ज्ञावनाओंको ज्ञाते हुवे अपने कर्म वृन्दको विध्वंस करते थे जिसका किञ्चित् स्वरूप पाठकोंको सेवामें पश करता हूँ—

॥ चौपाई ॥

प्रथम मैत्री निर्मल गुणधार ।

प्रमोद हृदय विकशित सुखकार ॥

कारुण्य दया रस आतमसार ।

माध्यस्थ ज्ञावना जय ३ कार ॥१॥

प्याने पाठकवरों ! कितनेक महानुभावोंके हृदयमें ये अवश्य उमङ्गलहरें

उठलरहीं होंगी कि मैत्री माताके अन्दर ऐसा क्या प्रौढ दिव्य गुण है कि जिससे प्रथम पद विभूषित कर रही है; उत्तरमें इतनाही निवेदन काफी होगा कि यावत् क्षेत्र शुद्धि न होगी सर्व यत्न निष्फल है अर्थात् जब तक हृदय पवित्र गुण करके विभूषित न हो तब तक सिद्धयर्थ उःसाध्य है इतनाही नहीं किन्तु सर्वथा असंभव है और वही गुण इस मैत्री मातामें विद्यमान है; अतः यह प्रथम पदसे विभूषित होरही है अब मैं अपननिज मैत्री माताका दिव्य स्वरूप रोशन करता हूँ:—

॥ मैत्री ज्ञावना ॥

अशेष प्राणियोंके साथ मित्रता रखना उसे मैत्री ज्ञावना कहते हैं

यह प्रकट लोकोक्ति है कि “ संप जहा जंप ” अर्थात् संप है वहा अवश्य विजय है एम्यता (UNITY) एक ऐसी पवित्र वस्तु है कि जिसके जरिये प्राणी शीघ्रही अपनी इष्टता सं प्राप्त कर सकता है इसही मैत्री महाराणीके प्रज्ञावसे निर्बल जी सबलकों अपने कवजमें कर सकता है जैसे उठेश तन्तुओंसे बुनी हुई रस्सी एक मदीन्मत हस्तिकों गिरफ्तार कर सकती है यह एक्यता का ही महा प्रज्ञाव है

इधर एक्का (संप) एक ऐसा बलवान् है कि बादशाह तकको जी परास्त कर देता है शायद आपने तास (PLAYING CARDS) का खेल देखा होगा कि उसमें रहा हुवा एक्का कितना बलीष्ट होता है

डरीपर तिरि गेरनेसे तिरिवाला जीत जाता है तथैव तिरपर चौकी, चौकीपर पञ्ची; इसही प्रकार क्रमशः नौलीपर दशी गेरनेमें दशीवाला विजयको प्राप्त होता है उपरोक्त नवों पत्रोंपर यदि बादशाहका गुलाम आजावे तो सर्वको शिकस्त देता है उसपर जी यदि बादशाहकी वेगम आजावे तो गुलाम तकको दबा देती है इसपर जी यदि खास बादशाह सलामत तसरीफ ले आवें तो डरीसे दशीतक व गुलाम तथा वीवीको जी जय कर लेते हैं मगर मेरे ध्यारे पाठकों ! यदि एक्का महाराणा पदार्पण करे तो सर्वको त-

तंत्रालय पराजय कर देता है अर्थात् विजयको संपाप्त होता है कहनेका तात्पर्य यह है कि तासका तमासा जी हमें यह नसीहत करता है कि एकमें बढकर कोई पदार्थ नहीं हमकी उत्कृष्ट कोशीस करना प्रत्येक प्राणियोंका अव्यवधर्म है.

इस संघ महाराणाके न होनेसे कुम्भ देवने जारतवर्षको वरबाद कर दिया अर्थात् सत्ताहीन बना दिया जिसमें जी जैन जातीकी दशा बडीही सोचनीय है इसपरजी हमारे कितनेक ज्ञव्य धर्म नेतागण परस्पर विरोध करके पवित्र जैन धर्मको उज्वल कर रहे हैं हम नहीं समज सकते कि वे हमारे पूज्य महात्मा कुम्भदेवके प्रेम रसमें किमें प्रकार निमग्न हो रहे है वे धर्म धुरधर धर्मावतारादि अलङ्कारोंसे अलङ्कृत होनेपर जी इस प्रकार अधम कृत्यमें कदम रखकर अपनी उच्चताका दृढ परिचय दे रहे हैं महानुजावों! हमारे वे माननीय महोदय उसही प्रकार दमक रहे हैं कि जैसे काक अपनी उज्वल दिव्य कान्तिसे विभूषित होता है धन्य है! हमारे कृपातारों! आपको पुनः ५ नमस्कार हैं!! आप सदृश नर रत्नों से ही यह पृथ्वी रत्नवती कहलाती है

इधर हमारे कितनेक शासन प्रेमी ज्ञव्यात्मा इस पवित्र जैन जातिकी हम प्रकार उद्देशा देखकर खेदातुर होते हुवे अपने नेत्रोंमें अश्रुओंका अविरल धारा बहार रहे हैं और परम परमात्मामें यह दिली प्रार्थना कर रहे है कि इस जैन समाजका शीघ्रही उद्धार हो हमें एक बख्त फिर जी वह सौभाग्य संपाप्त हो कि जैन शासन भारतपर अपने दिव्य प्रकाशसे हम पृथ्वी मण्डलको प्रकाशितकर ज्ञव्यात्माके हृदयरूप कमलोंको विकसित करता हुवा हमें दर्शन दे ताकेहम अपने प्यासे नेत्रोंको शान्तरसमें निमग्न करें

आपको यह बेखुबी रोशन है कि जब तक प्राणियोंका विचार परस्पर न मिलता है तब तक कोई कार्यकी सिद्धि नहीं हो सकती अथवा यों कहिये कि जब तक प्राणियोंका प्रेमरस एकमेक न हो जाय दिली आशाए नहीं फल सकती इस आनन्दरसको सम्मिलित करना मैत्रो माता के ही आधीन है

देखिये:—

जब तक कपाय अलग न होगा समकीत बीज हरगीज नहीं उहर सकती जैसे यह कहावत सशहर है कि "चीकटे घड़े न लागे ठाट" रूपान्तरसे यह अनुभवमें लाइयेगा कि जैमें कोई मनुष्य वादापादि को चक्रिये जमाता है तो अब्बल थालमें घृत लगा देता है ताके उसमें बिलकुल न चिपट सके यहा तककी एक अशु जी उसमें नहीं रह सकती इसही तरह जब तक कपायरूपी चिकट हृदयरूपी थालमें लग रहा है तब तक समकीतरूपी बरफी कजी नहीं उहर सकती. तात्पर्य यह है कि जब तक वेपाग्रि नष्ट न हो शान्तरस प्राप्त नहीं हो सकता समकितके जहाँ समः सवेगः, निर्वेदः, अनुके म्या और आस्तिक्यता ये पाँच लक्षण बताए गए है वहा पर आदि सोपान (सीड़ी) सम रहना गया है "सम" अर्थात् चतुराष्ट लक्ष जीवा-यानी पर समान परिणाम रखना इस पदको सिद्ध किये वगेर सम्भवत्वका यथार्थ गुण प्रकट नहीं हो सकता जावार्थ यह है कि समकितको प्राप्त करनेवाली जी हमारी मैत्री-माता ही है

हमारे वे पूज्य गणाधिपति इस प्रकार मैत्री जावनाका आराधन करते हुवे अपने कर्मपत्रकों विध्वंस करते थे तद्यथा:—

हे आत्मन् ! अपने समुदायमें जितने साधु साध्विये-है उन सर्वसे-मित्रता रखना चाहिये चूके तू और ये सर्व एकही गुरु, महारानकी, निश्राइमें रहते वाले हो अर्थात् एकही परमोपकारीके उपामक हो जिस प्रकार एक माताके गर्भसे उत्पन्न हुवे, जाईषोंके-गाढ स्नेह होता है इसही तरह तुझे जी प्रीतिजाव रखना चाहिये; इतनाही, नहीं, किन्तु समस्त खरतर गङ्गीय चतुर्विध संघके साथ सपरखना उचित है कारण की तू और ये सर्व एकही गङ्गाधर्पात पूज्यपाद श्री जिनेश्वरसूरीश्वरकी आज्ञामें चलनेवाले हो अर्थात् उनके फरमानके मुआफिक क्रिया काण्म करनेवाले हो इतने पर ही सतोष करना तुझे योग्य नहीं किन्तु चौरासी गङ्गवाले सकल मन्दिर आम्नायके अनुयाईयोसे एक्यता रखना चाहिये चूके अपन सर्व पूज्यपाद श्रीज्यातनसूरीश्वरके आज्ञानुयाई हैं तथा अपने षमावश्यकदि खास विधियोंमें कुछ जी तफावत नहीं है इतना ही नहीं किन्तु अनेक आचार विचार सदृश है इतने पर ही सभ करना तुझे

लाजिम नहीं किन्तु वाईस समुदाय व तेरह पंथवालों में जी प्रीतिजाव रखना उचित है चूँके वे जी श्वेताम्बर जैन-धर्मकी शाखाएँ हैं अपने व उनके कितने ही सबजेक्ट्स (विषय) मिलते हुवे हैं इतनेपर ही, आनन्द मनाना योग्य नहीं किन्तु जैन-धर्मकी मूल दो शाखाओंमेंसे एक शाखा जो दीगम्बर जैन धर्मकी है उनसे जी मित्रता रखना चाहिये कारण की अपन सर्व एक ही चौबीस तीर्थंकरोंके उपासक है इतनाही नहीं किन्तु कइ एक व्यवस्थाएँ समान है कहनेका तात्पर्य है कि जैन पद से जो २ महामुजाव विभूषित हो रहे है उन सर्वसे मित्रता रखकर अपना कल्याण करना चाहिये

प्यारे चेतन! इतनेमें ही हर्ष मनाकर आनन्दित न होना किन्तु पट्ट दर्शनियों में जी मिलाप रखना चाहिये चूँके अपने-व, उनके, बहुतसे तारिक विषय (PHILOSOPHY) समान है यथा जैन धर्मका मूल सिद्धान्त "अहिंसापरमोधर्म." है इमें सबही धर्मवाले तसलीम करते है तथैव मृषावाद, स्नेय, मैथुन और परिग्रह धारण करना महा डाःखंदाई है इन्हे जो सर्व दर्शनवाले सादर शिरोधार करते हैं इसलिये पट्ट दर्शनोके साथ जी मित्रता रखना समुचित है

हे अग्रधु ! इतनेसे ही सतोपित मत हो जाना किन्तु-मनुष्य मात्र (पुरुष, स्त्री और नपुंसक मात्र) से सपर रखना चाहिये कारण की जातित्वेन. उनके साथ स्वधर्मता है अर्थात् इनशान्दियत के कर्तव्य उनके व अपने वरोवर है तथैव देव, तिर्यच और नारकीके जीवोंसे निरन्तर वधु जाव रखना चाहिये चूँके इन्डियत्वेन अपने स्वाधर्म्य है जिन पञ्चन्डीयको अपनोने धारण कर रखी है वेही पञ्चन्डी उनके जी प्रीतिद है, अतः उनमे मित्रता रखना योग्य है

हे जीव ! यहीं पर विश्रामित मत होना किन्तु विकलेन्डी (वेन्डी, तेन्डी और चौरिन्डी) से जी भ्रातृजाव रखना चाहिये कारण की त्रसत्वेन अपन व वे सदश धर्मी हैं त्रस सज्ञा उन्हें जी है व वही त्रस सज्ञा अपनेको जी है तथैव मत्त्व भूत प्राणियोंसे (पृथ्वी, अग्, तेज और वायु; वनस्पति) व सूक्ष्म पाँचो स्यावर अर्थात् सूक्ष्म निगोदियोंसे जी उचित है चूँके शरीरत्वेन

तथा चेतन लक्षणत्वेन अपन व वे सर्व एक ही हैं अर्थात् औदारिक शरीर अपने जी है व उनके जी है तथाच जैसे चेतनके खास षट् लक्षण अपने हैं तैसेही उनके जी हैं इतना नहीं ही किन्तु कश् एक संज्ञादि विषय जी मिलते हुवे हैं लिहाजा उनसे मित्रता रखना समुचित है जीवके षट् लक्षण तद्वत्—

(गायऱा.)

नाणं च दंसणं चैव चरितं च तवो तदा ॥

वीरियं नव उगोय एवं जीवस्त लक्षणं ॥ १ ॥

अर्थः—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग ये ठ लक्षण जीवके होते है

हे सुद्ध चेतन ! मेरे समस्त कथनका रहस्य यह है कि चतुराष्ट्र लक्ष जीवा योनीसे मैत्री जाव रखकर तुजे आनंदित होना चाहिये

प्यारे पाठकवर्गों! इस प्रकार वे पूज्य महर्षि मैत्री जावनाका दिली आराधन करते हुवे अपने चारित्र रत्न नों दिन द्विगुना उज्वल करते थे इतना ही नहीं किन्तु कर्म पटल नों विध्वंसकर अपने निर्मल आत्म गुणोंका आविर्भाव करते थे घन्य है ! गुरुवर्य आपकृत पुण्य है सज्जनो ! अब मैं आपके प्रमोद जावनाका किञ्चिद् दृश्य दिखलाता हूँः—

(प्रमोद जावना)

माणीमात्रकों यथावत् सुखी देखकर प्रमुदित (प्रसन्न) होना उसें प्रमोदजावना कहते हैं.

आप यह सहज ही समझ सकते हैं कि वगेर मैत्री माताकी सेवा किये प्रमोद मातश्वरिका आराधन होना मुदिकल है यह प्रकट विरुपात है कि

शत्रुकों देखकर कञ्जी आनंद नहीं होता और मित्रको देखकर एकदम चित्त हरा जैरा हो जाता है देखिये जब कञ्जी कोई अपने शत्रुकी यश कीर्ति अथवा सत्कार सम्मानादि श्रवण करता है तब हृदयमें डःख ज्वाला धग १ ने लगती है और यदि यही व्यवस्था अपने मित्रकी श्रवण करता है तब आत्मा एकदमसे शीतल हो जाती है अर्थात् समस्त अङ्ग आनंदरससे आपूरित हो जाता है और हृदय मन्दिरमें उद्ग लहरें उछलने लग जाती हैं कहनेका तात्पर्य यह है कि मैत्री माताके अगाधकृपासे ही प्रमोद माताकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त हो सकता है इसही लिये यह द्वितीय पदकों विभूषित करती है -

प्यारे पाठकों ! जब तक प्रमोद माताकी प्राप्ति नहीं होती है तब तन् चिन्ता पिशाचनी हृदयगत आनंदको बरबाद करती है और अपना साम्राज्य जोर-शोरसे प्रवर्त्ताती है इसके निवाममें शारीरिक, वाचिक और मानसिक तीनों व्यवस्थाएँ अस्त व्यस्त हो जाती हैं जिनके डःखसे शरीर जर्जरीभूत हो जाता है वचन कुलाप नष्ट भ्रष्टाकों सम्प्राप्त होता है मन महाराणा नामोल करने लग जाता है अर्थात् निरंतर अनेक सकल्प विकल्पोंसे आर्च-रौद्र ध्यानमें ग्रमित हो जाता है इतना ही नहीं किन्तु जिन्दे रहने पर जी मृत्क मनुष्यवत् डःख प्राप्त होता है यानी चिन्तामें निवास करना गोया साक्षात् चित्तमें ही दग्ध होना है देखिये किसी महानुभावने ठीक कहा है:-

(दोहरा.)

चिन्ता नाकन मन वशी चुट १ लोही खाँय ॥

रती विरती कर सचरे तोला १ जाँय ॥ १ ॥

तथैव और जी कहा है:-

(दोहरा.)

चिन्ता चित्ताका एक रस इस्मे अन्तर एह ॥

चित्ता जलावे मृतक जन चिन्ता जीवित देह ॥ २ ॥

महा ऋषिवान्, चक्रवर्ति, राजा, महाराजा, श्रेष्ठ और साहूकार तथैव
अशेष पदाधिकारियों को हिंसा करते, झूठ बोलते चोरी करते व्यभिचार से
वन करते तथा परिग्रहकी अंत्युत् कण्ठा करते देखकर प्रथम २ इस प्रकार
दयालय विचार करना—

उफ! कर्मकी गति विचित्र है ये इस प्रकार उत्तम पदवीसे विभूषित
होने पर जी क्रिमा तथा कौतुकके लिये एव अपने पराक्रमको विख्यात कर
नेके हेतु विचारे निरापराधी शेर, मूर, चित्ते, रीठ और अजादि जानवरोंको
प्राणोंसे रहित करके बज्र लेपसा कर्मोपार्जन करते हैं ये अपने दिलमें ज्ञानका
जी पूरा श गौरव रखते हैं, किन्तु वस्तुतः वह ज्ञान नहीं नितान्त अज्ञान ही है
ये जडिक लोग इतना जी नहीं समझने की पूर्व जन्ममें अनेक जीवोंको सुख
दिया है इस ही लिये मेरी हजारों लोक मान्यता करते हुवे सेवा जक्ति कर रहे
हैं और जिन जीवोंने अन्य प्राणियोंको दुःख दिया है वे प्रकृततः दुःखी हो
रहे हैं इसही तरह मुझे जी अवश्य दुःखी होना पड़ेगा

तथैव मृषावादियोंको मृषा घारा विश्वास घातादि अनर्थको सेवन करते
देख यह विचारना कि अहो ! इन लोगोंको तनिक भी लज्जा नहीं आती कि
हम इस प्रकार असत्य ज्ञापण कर विश्व विश्वासपात्र कैसे बनेगे अहा ! सत्य-
वक्ता हरिश्चंद्र राजाने बारह वर्ष पर्यन्त किस प्रकार सकट सेवन किये थे
किन्तु लेशमात्र जी दुःखातुर न हुवे और अपने अखण्ड सत्य व्रत पर कटि
बद्ध रहे अहो ! विचारे इन दीन असत्यवक्ताओंका जन्म कैसे सफल होगा

चौर लोगोंको चोरी करते देख अथवा चौरोंके कटुक फलको कारागृह
(जेलखाना) में प्रत्यक्ष जोगते हुवे देख यह खयाल करना कि संसारमें अनेक
जीव अनेक उपचारोंसे उदरपूरण कर रहे हैं और ये निगम कर्मों बगैर परि-
श्रम ही आनंद करनेकी वाँछा करते हैं यह इनकी अज्ञताका पूर्णोदय है
मुझे बड़ी ही ज्ञान दया आती है कि किसी प्रकार ये दुःखसे स्वतन्त्र हो जाय
उत्तम है.

वेश्या गमन करनेवाले व परस्त्रीके लस्पटियोंको देखकर यह ज्ञानना
लानों कि हा ! ये पापम प्राणी किम प्रकार दुष्टाचरणको सेवन कर रहे हैं

जिससे कुँलकी, जातिकी और खानदानकी लज्जा प्रस्थानकर रही है तथा राजा, महाराजा एवं देव, गुरु और धर्मसे लज्जा विहिन हो रहे है और जिससे मोक्ष मार्ग दूर जग रहा है यहा तककी इस जन्ममें प्रत्यक्ष जेलखानेकी दवा खाना पडती है और आगाभी भवमें घोर नरकादिके असह्य दुःखसे दग्ध होना पन्ता है * तो जी ये व्यञ्जिचारी लोग अपने विश्व निदनीय कर्त्तव्यसे राज नहीं आते हे ईश्वर ! इन विचारे कुँड प्राणियोंका किपी तरह दुःखाचार होजाय तो अज्ञा है

परिग्रहके अति लोचिपोंको देखकर यह विचारना कि:-अहा ! दुनियाकी कैसी विचित्र लीला है बहुधा समस्त जगत् अँख बंद कर चारों तरफ पैसेके लोचसे मारा श फिर रहा है सैकम्पति यह चाहता है कि मै हजारपति होजाऊँ तथैव हजारपति लक्षपति एवं लक्षपति क्रोमपति होनेकी इच्छा करता है किन्तु यह पिलकुल विचार नहीं करते कि चक्रवर्ति सदृश ऋषिवान् भी जप अपनी समस्त शक्ति छोडे पग्लोककों खाना हुवे तो समुद्रमें विन्डवत् मेरी लक्ष्मीका क्या ? अब तो मुझे अवश्य ही सतोप महाराणैका अवलम्बन करना चाहिये किन्तु बजाय इसके रात दिन दौमधाम मचा रहे है विचारे इन प्राणियोंको किसी प्रकार सतोप दृष्टि हो जाय तो अज्ञा है ताके परमानंदमें निमग्न हों

मान्यवरों ! हमारे चरित्र नायक पूज्यपाद गुरुवर्य इस प्रकार काह-
एय जावना जाते थे:-

हे आत्मन् ! ससाररूपी विचित्र नाटकको जरा पलक उठाकर देख कि ये विचारे विचित्र कर्पधारी पापर प्राणी किस कदर उलट पुलट काम करते हुवे कर्म फासमें फसनेका उत्कट प्रयत्न कर रहे है कइ प्राणी निरपराधी जीवोंको विनाशकर आत्मीय बलको धन्य मानते हैं तथा अपने कुलको उत्तम समझते है, कइ एक प्राणी मृषावाद द्वारा लोगोंको धोका वाजी देकर बञ्चित (उगाई) करते हुवे अपनेको बुद्धि कुशलमान रहे है ! कइ एक मनुष्य पर धन हरण-

* इसका विशेष खुलाशा देखनेकी अभिलाषा हो तो देखो हमारा बनाया हुआ मस व्यसन निषेध का चौथा व सप्तम व्यसन

करके अपनी ठुकराइका गौरव समझ रहे है; कइ एक वैदया और पर स्त्रीमें आनंद मानते हुवे अपने जन्मकों सफल गिन रहे है और कइ एक लक्ष्मी वर्धन करनेमें दत्तचित्त होकर अपने पुस्पाथकों कृतकृत्य मान रहे हैं इतना ही नहीं किन्तु अनेक अनर्थ दएम्नोंकों सेवन कर अपनेकों धन्य समझ आनंद समुझमे निमग्न हो रहे है हे प्रजो ! इन विचारे अइ प्राणियोंकी वर्त्तमानमें क्या गति हो रही है तथा जवान्तरोंमें किस प्रकार डर्गतिके घोर डःखोंकों जोगकर अपने कठिन कालकों व्यतीत करेंगे. हे ईश्वर ! इन विचारे प्राणियोंकी मति सुधर जाय तो उत्तम है अरररर ! ये विचारे गरीब जयकर डःखोंकों कैसे सहन करेंगे हे जगत्तारक ! किसी प्रकार इनका तुटकारा हो जाय तो श्रेयस्कर है

प्यारे दयानुरागियों ! इस तरह नाना विध जाव दया जाते थे और अपने हृदयकों दया रससें आपूरित करते हुवे कर्म निर्जरा कर जब जमणका विध्वंस करते थे धन्य है गुरुदयाल ! आप दयासागरकों मुहुर्मुहु र्धन्य है सज्जनों ! अतः मैं आपकी माध्यस्थ जावनाका संक्षिप्त विवेचन लिख दिखाता हूँ—

(माध्यस्थ जावना)

मित्र और शत्रु पर ममान परिणाम रखना अर्थात् इष्ट और अनिष्ट अशेष वस्तुओं पर समजाव रखना उसे माध्यस्थ जावना कहते है

प्यारे वैरागियों ! जब तक प्राणियोंके विजिन्नता रहती है तब तक अपनी इष्ट पदार्थों पर ही अटूट कृपा होती है किन्तु अनिष्ट पर क्रूर दृष्टि ही बनी रहती है मगर जब कारुण्य माताकी सेवामें कटिबन्ध हो जाते है तब इष्टानिष्ट सर्व पर समान दयाजाव हो जाता है इसही कारुण्य मातेश्वरीके महत् कारणासें माध्यस्थ माताकी सेवा समाप्त हो सकती है अतः कारुण्यके पश्चात् सिध् स्यानपर पहुँचानेवाली माध्यस्थ जावना अपने दिव्य स्वरूपकों प्रकाशित करती हुई स्वकीय निज स्वरूपमें रमण कर रही है

सज्जनों ! यह तो निसन्देह ही प्रकृत है कि अनेक प्राणी अनेक कर्तव्योंमें

निपुण है यहां तककी जगतमें सर्वसँ अति वल्लभ प्राण तककी स्वामीके लिये न्योठावर कर देते हैं किन्तु सम रम यानी या यस्थवृत्ति रखनेवाले धिरले ही पुरुष दृष्टि गोचर है; देखिये एक विद्वान् वैरागीका कथन है:—

(श्लोक)

दृश्यन्ते वदवः कलासु कुशलास्ते च स्फूर्त्तीर्तये ।
सर्वस्वं वितरन्ति ये तृणमिव कुडैरपि प्रार्थिताः ॥
धीगस्तेऽपि च ये त्यजन्ति ऊटिति प्राणान्कृते स्वामिनो—
द्वित्रास्तेतुनरा मनः समरसं येषां सुहृदैरिणोः ॥१॥

जावार्थः—इस डनियाके अन्दर बहुतसे ऐसे लोग हैं जो कि अनेक कलाओंमें कुशल है तथा कइ एक लोग दीन डखीके प्रार्थना पर अपने वैजवकों विस्तीर्ण कीर्तिके लिये तृणके सदृश खर्च करदेते है और कइ एक ऐसे बाहाडर लोग है कि अपने स्वामीके लिये तत्काल माण अर्पण कर देते है किन्तु प्यारे वैरागियों! मित्र और शत्रुमें समरस रखनेवाले दो तीन विरले ही पुरुष होंगे

जिज्ञासु सङ्गनों ! जो प्राणी माध्यस्यावस्यामें निवास करते है वे सदा सर्वदा अपनेकालकों निरावाध आनंदपूर्वक निर्गमन करते है देखिये माध्यस्य जावनमें विराजमान योगीश्वर अनेक दिव्य गुणोंसँ विजूपित होते है उन्हमेंसँ कितनेक गुण इस स्थल पर उचृत कर मदर्शित करता हैं:—

(श्लोक)

आक्रोशेन न दूयते न च चट्ट प्रोक्तया समानंधते ।
दुर्गंधेन न बाध्यते न च सदा मोदनेन संप्रीयते ॥
स्त्रीरूपेण न रज्यते न च मृत श्वानेन विद्वेष्यते ।
माध्यस्थेन विराजितो विजयते सोप्येप योगीश्वर- ॥१॥

जाचार्यः—वेही महानुभाव सम्यग् ज्ञानी समझे जाते है कि जो कर्म वचनोसे कदापि छःखी नहीं होते और खुमामदके शब्दोंसे कर्त्री आनंदित नहीं होते तथा उर्गधमें हरगीज बाधित नहीं होते और सुगंधसे कर्त्री प्रसन्न नहीं होते एवं कामिनीके दिव्य स्वरूपसे कदापि रञ्जित नहीं होते और मृत श्वान (कुत्ता) से हरगीज वेप नहीं करते इस प्रकार माध्यस्थ्य स्वरूप विराजमान वे ही योगीश्वर विजयकों सं प्राप्त होते है

इतना ही नहीं किन्तु मित्र और शत्रु आदिसे रागद्वेषको दूर कर माध्यस्थ्य वृत्ति रखते थे यथा किसी महात्माका ठीक कथन है:—

(श्लोक)

मित्रे नन्दति नैव नैव पिशुने वैरातुरो जायते ।
 जोगे लुज्यति नैव नैव तपति क्लेशं समालम्बते ॥
 रत्ने रज्यति नैव नैव दृपदि प्रद्वेषमापद्यते ।
 येषां शुद्धहृदां सदैव हृदयं ते योगिनो योगिनः ॥ २ ॥

जाचार्यः—वेही आत्मार्थी पुरुष कहे जाते है कि जो मित्रके अन्दर कर्त्री आनंदित नहीं होते और चुगलखोरोंमें कर्त्री वैरभाव नहीं रखते तथा जोगमें कदापि नहीं लुजाते और तपस्यामें क्लेशातुर नहीं होते एवं रत्नादि जवाहिरात्तों में हरगीज दील चस्वी नहीं लाते और कङ्करमें कदापि वेप नहीं लाते ऐसे जो शुद्ध हृदयवाले महानुभाव है उनके पवित्र हृदयमें उपरोक्त कोई विषय सं प्राप्त नहीं होसकता; वेही योगिराज योगीश्वर-पदवीसे विज्ञापित होते है

महानुभावों ! उपरोक्त दो श्लोकोंसे आपको सम्यक् परिज्ञात हो गया होगा कि माध्यस्थ्य वृत्तिवाले किम उच्च श्रेणीसे विज्ञापित होते है हमारे वे प्राणापार इस प्रकार माध्यस्थ्य जावनाको जावन करते थे:—तद्यथा:—

हे आत्मन् ! जब तक तू इस वज्रलेप रागद्वेषसें पृथक् न होगा हरगीज सुखी नहीं हो सकता यथा शत्रु गृहके अन्दर रहे हुवे प्राणीको अनेकजातिके रसवती जोजन खिलाए जाय, उच्चमोत्तम वस्त्रानूपणोंसें विभूषित किया जाय किन्तु कच्ची सुखी नहीं हो सकता चूके वह यह समझता है कि मुझे अवश्य ये छष्ट डःखमें डःखी करेंगे, तयैव तू इन मूल दो शत्रुओंके वश प्रमा हुवा अनेक क्रियाकाण्ड करने पर जी हरगीज सुखी नहीं होसकता है इस लिये उन छष्ट शत्रुओंको पराजय करके अपने निज स्वरूपमें रमण कर

इस प्रकार माध्यस्थ जापना जाते हुवे घोर शत्रु रागद्वेषों निर्मूल कर निज आत्मीय स्वरूपको मकट करनेमें एक अनुठेही प्रयत्नशील पुरुष ये वन्द्य है गुरु पुद्गल ! आप सदृश नर रत्नोंसें ही यह पृथ्वी रत्नवती कहलाती है पाठकवर्गों ! अब मैं आपके “अप्रतिबद्धताका विशाल प्रज्ञाव” इस विषयका किञ्चिद्विरण आप लोगोंके सम्मुख उपस्थित करनेमें प्रयत्नशील होता हूँ

॥ अप्रतिबद्धता का विशाल प्रज्ञाव ॥

प्रतिबन्ध रहित यानी परतन्त्रता रहित अर्थात् स्वतन्त्रतासें प्रत्येक कार्यमें कुशलतापूर्वक विहार (गमन) करना उसे 'अप्रतिबद्धता' कहते हैं

सज्जनों ! यह तो मशहूर ही है कि “पराधीन स्वपने सुख नहीं देख विचार करो मन मांही” जो प्राणी यावत् परतन्त्र रहता है तावत् इच्छित कार्य करनेको सर्वथा असमर्थ है, मनशासें निरुद्ध किसी प्रतिबद्धतामें रहना सरासर मह दुःख चम्पदीद (दृष्टिगोचर) है

स्वतन्त्र महात्मा जन इच्छित समय पर अपने निज नियम करते हैं अर्थात् उठता हो जय जाग्रित होते है उठता हो जय शयन करते है, चलते है, ऊठते है, बैठते है, जोजन करते हैं, जलपान करत है, मजाय भ्यानादि निर्जरा करते हैं

और दयावश परोपकारमें संलग्न रहते हैं तथैव खासकर आत्मिक स्वरूपमें निमग्न रहते हैं कहनेका तात्पर्य यह है कि सदा सर्वदा अपने इच्छित दाइयपर सकल कार्य करते रहते हैं ।

यहां पर कोई जिज्ञासु महात्माका प्रश्न है की स्वतन्त्रता ही यदि आनंदकारी है तो व्यावहारिक व धार्मिक दोनों ही व्यवस्थाएं नष्ट होकर सकल जीव निर्पति बेल (सार) के मुआफिक घूमते फिरेंगे और नाना प्रकारके अनर्थ करने लगेंगे और इस अवस्थामें पुत्रकों पिताकी आवश्यकता तथा शिष्यकों गुरु महाराजकी जरूरत नहीं होगी अतः यह विकल्परूप दृढ नियम स्वीकृत श्रेणीमें कैसे सघटित हो सकेगा

प्यारे जिज्ञासु महाशय ! आपका यह कहना अवश्य ही विचारणीय है इतना ही नहीं किन्तु अनुमोदनीय भी है देखिये थोमे ही शब्दोंमें निवेदन कर देता हूँ—

मैं पहिले ही प्रकट कर चुका हूँ कि “मनशाह से विरुद्ध किसी प्रति बद्धतामें रहना सरामर मह दुःख चस्पदीठ है” इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि ज्ञानियोंकी दृष्टिमें हितकारी उपादेय साधनोंके हेतु पर तन्त्रताका होना स्वतन्त्रताही में शुमार है हमने यहापर उसही परन्त्रताका निराकरण किया है कि जिससे अनेक दुःख प्राप्त होते हैं विद्रुज्जनेपु किमपिकम्

खासकर गृहस्थोंके जगद्भ्राल अर्थात् दाक्षिण्यतासे पृथक् रहना चाहिए कारण की ज्यों ५ गृहस्थोंके प्रपञ्चोंमें खुशियाली मनाने हैं सोंही सों शुद्ध क्रियासे अधिकाधिक विमुख होना पमता है इतनाही नहीं किन्तु हमारे गुरु जाई व शिष्य वर्गसे जो कश्चार कटाकटी उमाना पमती है अफसोस ! आजकल अधिकाश मुनिवर्ग गृहस्थोंकी किस प्रकार दाक्षिण्यता रख रहे है कि जिसे देख दृढ धर्मानुरागी धर्मरूपी मेदान पर खम्ने हुवे थरायर थरी रहे हैं आज इस निंदनीय दाक्षिण्यता (विहाज़) ने इतना

जुलुम किया है कि कइवार हमारे पवित्र गुरुमहाराजकी निर्मल आङ्गाकों नष्ट कर खुशामदी और मालदार मनुष्योंके पीठे ३ घुमाती है देखिये:—

किसी मुनिराजकों जब अपने रागाधकी प्रार्थना आती है उस वखत समयइ गुरुवर्य कितना जी रोकटोंक बयो न करें किन्तु वे गृहस्थोंके अनुयायी उसका सर्वथा उपेक्षणा कर यह प्रकट करते है कि हमारे अमुक श्रावक, बगैर नहीं चल सकता उनका दिलता रखना ही पड़ेगा चाहे आप खुश होकर इजाजत दे या नाराज होकर हमें तो जाना ही होगा. इत्यादि

हायहाय! कितना जुलम कितना अन्याय, कितना गजब

इस प्रकार निर्लेख शब्दोंको उच्चारण करते तनिक जी शरम नहीं आती हम नहीं समझ सकते कि इस प्रकार उच्चारण करते हुवे अपने मुनि पदकों किस प्रकार उच्च शिक्षा पर पहुँचा सकेंगे इस कुत्सित व्यवहारके हृदानुरागी महात्मा लोग तीर्थकर व गुरुमहाराजकी आङ्गाका उल्लघन करते हुवे गृहस्थके पीठे दौरे पन्ते है वहा जानेपर कइ एक प्रकारके सदोषी वस्त्र, पात्र, शयनादि वस्तुएं उपयोगमें लाते हैं तथा आधाकर्मों आदि हलाहल जहरसे जरा हुवा आहारपानी खाकर डर्गतिका निगरु बधन करते है—वहारे वाह कलिकाल तेरी बलिहारी है अहा! अन्य हां मुनिराजों!! आपको मुहुर्मुहु धैर्य हो!! आपने अपने नरजव रत्नका खुब ही सङ्पयोग किया

जब्य मुनिराजोंका तो कुठ आचरण ही और है वे महानुजाव धनवान् और गरीबकों समान समझ कर तथा खुशामदी और तन्त्रिकों सदृश मानकर इसही सिद्धान्त पर निर्जर रहते है कि “सुनना सबकी करना दीलकी” इसही तरह हमारे चरित्र नायक गुरुवर्य गृहस्थकी दाक्षिण्यताकों सर्वथा हटाकर स्वतन्त्रता पूर्वक अर्हानिश सानंद विहार करते थे इससे आपको कइ एक ऐसे ३ उत्तमोत्तम गुण प्राप्त हो गए थे कि जो हमारे लेख सामर्थ्यसे बाहिर है तदपि उसमेंका एक सुन्दर नमुना पाठकोंके सम्मुख उपस्थित करता है:—

॥ त्रिविध्य वाणीका साक्षात् प्रभाव ॥

किसी एक समयका प्रस्ताव है कि रात्रीके पिछले प्रहरमे आप गुरुवर्य निर्जर निझामे शयन किये हुये उस समय उत्तम गुणशाली स्वप्नमें देखते क्या है कि एक दिव्य श्वेत वर्णवाला गइयोका गोकुल मनोहर वाटिकामें फिर रहा है उसमेंकई एक गइयोके छोटे सुन्दर बतुके, प्रेम पूर्वक अपनी माताओंके शरीरमें लिपट रहे है इस गो समुदायमें कइ एक शान्त मुन्द्राधारी वृद्धा, कइ एक दिव्य कान्तिवाली तेजस्विनी युवा गइयें थी और कइ एक जगतजन प्रिय अति सुन्दर बठनविषैथी देखते ही देखते इस सुन्दर शोभाके गुरुवर्यके नेत्र खुल पडे अर्थात् एकदम जाग उठे जागृत होते ही जरावर आप दिल ही दिलमें विचारते है कि इस उत्तम स्वप्नका क्या रहस्य है योफ़ी ही देरमें आप ने अपने ज्ञान बलसे उचित अर्थ स्थिर कर अपनी नित्य क्रियामें प्रयुक्त हो गये

मातःकालमें जिस समय उद्योत श्रीजी (जिसका कि जिक्र हम प्रकरण वशात् ऊपर कर आए है) बंदनार्थ आये उस समय सनिनय बटना, व्यवहार करनेके पश्चात् आप गुरुवर्यने अपनी सेवामें स्थिरता, करनेका हुकुम वहीस किया, साध्वीजी आंझा पाते ही पूज्यपाद गुरुवर्यके सम्मुख दोनो करजोड़ मस्तक नमन कर बैठी हुई है इस अवस्थामें उन दोनोके परस्पर स्वप्न सम्बंधि जो, प्र चात्तलाप हुवा उमें प्रशोत्तरमें समुद्धृत कर पाठकोंकी सेवामें पेश करता हूँ:—

गुरुमहाराजः—उद्योत श्रीः ! हमें गत रात्रीमें एक वरना सुन्दर स्वप्न संप्राप्त हुवा

साध्वीजीः—स्वामिन ! कृपापूर्वक फरमाइयेगा

गुरुमहाराजः—ध्यान पूर्वक श्रवण करना

साध्वीजीः—जी साहब ! फरमाइयेगा

गुरुमहाराजः—हमने गत रात्रीके ब्रह्म मुहूर्तमें एक मनोहर श्वेत गइयोका गोकुल देखा इत्यादि आपने वरने ही मधुर शब्दोंमें सविस्तार वह स्वप्न फेरमाया

साध्वीजी:—“सम्पूर्ण विषयको सुनकर मनही मनमे “अ हाहा !” कैसा विचित्र सुन्दर स्वप्न है इसका गज्जोर आशय क्या होगा इस अज्ञितलापामें”—हे करुणारस जगन्नाथ ! अनुग्रह पूर्वक इसका फलितार्थ फरमाईयेगा

गुरुमहाराज:—जइ ! तुमही अपनी बुद्धि अनुसार कह सुनाओ

साध्वीजी:—हे मतापशाली पूज्य गुरुवर्य ! मैं तुम्हें बुद्धिधारका आप समान अद्वैत ज्ञानवन्त मुनि रत्नके सामने कथनको उतनी ही असमर्थ हूँ कि जिस तरह चक्रवर्तिके सन्मुख पापर प्राणी कथन करनेको अशक्य होता है आनन्द रसमें जिलानेवाले हे पूज्य गुरुवर्य ! आपही अपनी अमृत वाणी द्वारा उपदेश कर कृतकृत्य कीजियेगा यही हार्दिक प्रार्थना है

गुरुमहाराज:—“दया लाकर”—हे विनयशीले ! दत्त चित्त होकर श्रवण करना

साध्वीजी:—तहत्त स्वामी फरमाईयेगा

गुरुमहाराज:—पुण्यवते ! गुरुदेवकी अतुल कृपासें तुमारी शिष्या ममुदाय विस्तीर्ण रूपमें प्रफुल्लितावस्था अवधारण करती हुई प्रकट होगी पवित्र वीर शासनरूपी मनमोहन बगीचेमें विनय रसमें जरी हुई सुदोहित साध्वियें विचरती हुई दृष्टिगोचर होंगी उनके अनेक आवाल ब्रह्मचारिणी ठोटी ५ मुमनोहर दीक्षित बाल शिष्याएं शोभाको समाप्त होंगी तथैव गुणशालिनी सौजाग्निनी (सधवाएं) साध्वियें देव शान्तरस धारिणी कइ एक पुण्यात्मा वैवाए होंगी इस विध नाना प्रकारकी विचित्र साध्वियोंसें यह शासनरूपी सुन्दर बगीचा खिल उठेगा इत्यादि विस्तार फरमाया

पाठकरों ! वे महानुजावा शासनोद्योतकारी तथा अपने असीम उपकारी गुरुवर्यका उज्वल यशः विस्तीर्णकारी एवं अपनी पुण्याईका

समझ इस प्रकार आनंद सागरमें निमग्न हुई कि-हर्ष नीरसे-नेन गद १ ज्ञर
आये इस समय अनदका पारावार नहीं था इस हर्षित अवस्थामें साध्वीजी
दोनो कर जौम मविनय प्रार्थना करते हैं:—

साध्वीजी:—धर्म धुरंधर, धर्मावतार, ज्ञूत ज्ञविष्य और वर्तमा-
मानके उचितवेत्ता हे विशाल ज्ञानी गणाधीश्वर! आप हमेंशां
जयवन्ता वर्त्तो, आपके मुखकमलमें अमृत रस सदैव निवास करो; आपका
उत्तम गुणशाली स्वप्न शीघ्र ही फल फूलोंमें खिल ऊठो हे ज्ञाय! आपका
पवित्र नाम इस अखिल संसारमें चिरकाल स्थित रहो हे स्वामिन्! आपने
जो कुछ फरमान किया है वह मेरे समस्त अज्ञोपाज्ञके अशेष अवयवोंमें सुमण
कर गया है आपके फरमानानुसार यह उत्तम सांज्ञाय्य अवश्य ही संपाप्त
होगा ऐसा मुजें सुदृढ विश्वास है हे पूज्य गुरुवर्य! मुजमें यह सामर्थ्य नहीं
की आपके अगण्य गुणोंको प्रदर्शित कर सकू हे प्रज्जो! आप पर मुहु-
मुहु धन्यवादकी अविरल वर्षा करती हुई चरण शरण रूपी
आनंद सागरमें निमग्न होती हुँ.

इस प्रकार आनन्दित वार्त्तालाप होनेके पश्चात् विनय पूर्वक वंदना नम-
स्कार कर साध्वीजी अपने स्थान पर प्रस्थान कर गए.

सज्जनों! आपके अपूर्व स्वप्नके महत्फल रूपी ज्ञविष्य वाणी
आज्ञ हम साक्षात् अनुभव कर रहे है कि आपके पवित्र समुदायमें उद्योतश्री-
जीकी शिष्या सन्तानके रीव १ मेरुसोकी संख्यामें विज्जुपित हो रही है
वे महानुजावाएं पवित्र गुरु आज्ञासे विज्जुपित हुई १ शासनमें चार्गे और
अपने ज्ञान द्वारा हजारों जन्यात्माओंका उद्धार कियाव कर रही है यह
उनही महात्माका अतुल प्रताप है-इस ठोठेसे दृष्टान्तसे यह स्पष्ट प्रतीत
होता है कि आप पूज्य गुरुवर्य अवश्य ही एक विशाल ज्ञानी थे अहाहा
धन्य है! गुरुवर्य आपकी प्रतापशालिनी वाणी पुनः १ धन्य है

वीर पुरुष महानुजावों ! इतने पर ही संतोष न कीजियेगा किन्तु आप स्वतन्त्र विचारोंमें ऐसे दृढशील थे की चाहे कितने ही उपसर्ग क्यों न आक्रमण करें, कितने ही संकटाक्यों न सहना पड़े किन्तु लेश मात्र जी चलविचल नहीं होते थे महानुजावों ! दृढताके ऊपर इस स्थलपर मुझे एक कुतुहली व्यावहारिक दृष्टान्त स्मरण होता है जो कि हमें दृढशील बनानेमें एक परमोपयोगी होगा वही रसिक कथा पाठकोंके अजिमुख करनेमें प्रयत्नशील होता हुआ दत्तचित्त होकर पढ़नेकी सूचना करता हूँ:—

॥ कुतुहलमें गुणाकर ॥

किसी एक विशाल शहरमें एक प्रतिष्ठित साहूकार रहता था धन धान्यादिसें परिपूर्ण पूरित था किन्तु सन्तानकी अप्राप्तिके हेतु खिन्न चित्त रहा करता था दैवयोगसे उसके दृक्षावस्थामें एक पुत्र प्राप्त हुआ जन्म महोत्सवादि बड़े ही समारोहसे किये

एक समय साहूकारने यह विचार किया कि बच्चेको मधुर, रस-मायः हानिकारक हांता है अतः इसे इस समय कतई रोक देना उचित है, हॉशियार हो जानेके बाद कुछ हर्ज नहीं यह सोच उस बच्चेको ऐसा जय माल दिया कि “बच्चे मीठा खानेसे मनुष्य मर जाता है अतः तू मीठा कच्ची सेवन मत करना” यह मेरी हित शिक्षा दृढता पूर्वक अङ्गीकार करना पुत्र उसही तरह आचरण करने लगा जब कच्ची कोई उससे कहे कि बच्चे यह मीठा खाले तब वह ठीक यही उत्तर देता है कि “मीठा खाने-वाला मर जाता है” अतः मैं हरगीज नहीं खाता सज्जनों ! इस प्रकरणको यही पर ठोस द्वितीय प्रस्तुत विषया जिन्न प्रकरणका विवेचन करता हूँ

संठने यह विचारा कि मेरी दृक्षावस्था है इस लिये पुत्रका शीघ्र ही विवाह कर बेटे बहुका सौजाग्य अनुभव कर लेना चाहिये यह सोच बाल्यावस्थामें ही किसी एक प्रसिद्ध नगमें आरूढ़दार धनाढ्य सेठके यहां विवाह कर दिया अब ये सर्व सानद निवास करते हैं

॥ काल सर्व जह्नीकी उपाधीसे उपमित होनेके कारण उस पुत्रके माता-पिताओंको जी अपने ताड़नातमें किये अर्थात् वह सेठ और सेठानी दोनोंने जवान्तरमें कूच किया पुत्रकों मीठा खानेकी रोकटोक की थी उस असावधानावस्था हीमें रखकर प्रस्थान कर गए अस्तु अब यह बालक और इसकी स्त्री दोनों ही रह गए समयानुसार यह सेठ पदवीकों प्राप्त कर अपने अनेक सेवकोंके साथ मुख पूर्वक निवास करता है

एक समयका प्रस्ताव है कि इस सेठकी स्त्री अपने पितृगृह (पीयर) कों गई हुई थी इस वख्त इसें अपने घर लानेकी प्रवृत्ति प्रकट हुई अतः अनेकाहवरसे अपनी अपनी पलिको लेनेके लिये श्वसुर गृह (सुसराल) कों जा पहुँचा प्रिय वाचक वृन्दों! अब दामाद (जमाई) जीकी किस प्रकार आगत स्वागत होती है इस विचित्र लीलाकों सावधान होकर पढ़ियेगा

यह लोक प्रसिद्ध है कि दामादके लिये अनेक प्रयत्न कर मिष्ठानादि विविध प्रकारके मनमोहन जोजन बनाये जाते हैं चाहे अमीर हो चाहे गरीब हो, इसही तरह यहाँ पर जीउन जमाइजीके लिये अनेक रसवती जोजनोकी तैयारी की गई उसमें अति स्वादिष्ट केरीपाक (आम्रमुरब्बा) जी था

॥ जिस समय वे जोजन करने आसन स्थित हुवे उसही वख्त सर्व जोजनकी दरियाफती की पतिन भ्राता (शाला) ने सर्वके नाम कथन करते हुवे सर्व प्रकारके मिष्ट जोजनोको मात्र मीठेके नामसे ही व्यपदेश किया सुनते ही प्राहुणेजीने हुकुम फरमाया कि मीठा प्र सर्व दूर कर जो शेष जोजन रहने दो

शालेने बहुत कुठ समझाया किन्तु अपने निज हठमें दृढ़ीभूत होनेसे कुठ जी स्वीकार न किया तब उनके कथनानुसार सर्व मिष्ठान निकाल लिया, किन्तु केरी पाक विशेष रस सयुक्त होनेसे उसका कितनाक रस थालमें ही लिपटा रह गया दामादजीने अनुक्रमसे जोजन करना शुरु किया "होनहार सदैव बलीयशी है" इस न्यायानुसार उसका हस्ते कमल उस रसमें जा गीरा जोजनके प्रवृत्ति नियमानुसार अङ्गुलिया, चाटने लंगा रसास्वादन होते

ही अपूर्व आनंद वश होकर मन ही मनमें विचारता हुआ जोजन कर अपने मुकाम पर विश्रामित हुआ ।

रात्रीके समय अपने शयन गृह (सोनेका कमरा) में पहुँचा वार्त्तालाप करते ३ सेठजीने अपनी पत्निसेँ पृच्छा कि आज जोजनमें चित्तको एकदम तृप्त करने वाली कौनसा रसवती पदार्थ थी मुझे वही अमृत जोजन इस ही वस्तु लाकर समर्पण कर

पत्निः—स्वामीनाथ ! वह माधुर्य रसा पुरित केरी पाक था जब आपकों इतनी इच्छा है तो उस वस्तु जाइ साहेबने बहुत मनुहार की थी तब आपने क्यों न स्वीकार किया अब मैं यह पदार्थ इस वस्तु कहासेँ लाऊ रजनी व्यतीत हो जाने पर आपकी इच्छा पूर्ण करनेका प्रयत्न करूंगा

पत्ति.—अरे प्रिये ! सचमुच ही मेरा पिता शत्रु था कि जिसने बाल्या-वस्यासेँ ही मुझे ऐसे मनमोहन रसवती जोजनसेँ वञ्चित रखा प्रिय पत्नि ! यदि तू ला दे तो उत्तम है चरना मुझे वह स्थान बता दे मैं अपनी इच्छाके भवत वेगकों रोकनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ

पत्ति.—माणनाथ ! मैं तो लज्जावश उस स्थान पर इस समय नहीं जा सकती देखीये जोजन गृह (रसोमा) में एक ठीका लटक रहा है उस पर एक मिट्टीकी स्वच्छ हत्ती केरी पाकसेँ आपूरित हो रही है उसमेंसेँ जितनी इच्छा हो पानकर अञ्जी तरह तृप्त हो जाईयेगा किन्तु जोजन गृहके बाहिर ही मेरे मातपिता वगेरा शयन किये हुवे है उनका पूर्ण खयाल रखियेगा

सज्जनों ! इच्छा एक ऐसी चीज है कि जो आगे पीछे कुछ ज्ञी नहीं सोचन देती इस वस्तु अर्ध रात्री अपने निज स्थान पर समाकूट हो रही है वह केरी पाककी मयल इच्छावाला एक लाठी लेकर जोजन गृहमें जा पहुँचा है पाठकरगों । देखिये ज़रा इस विचित्र घटनाकों साविधानतया पढियेगा

— वहा पर देखते क्या है की माला बहुत ऊँचा है हस्त पहुँचनेका असंज

लक्षण संमुख उपस्थित हो रहा है तब आपने करकमलस्थ लकड़ीसे हंम्रीके नीचे थुराक कर दिया अब मुंह पसारे हुवे रसपान कर रहै है जब की आप पूर्ण वृत्त हो गए तब हन्डीसे अपनी मातृ जापामें कहने लगे "हॉमीजी वस करो ने वस करो" इस प्रकार दो तीन बार कहा किन्तु हएमी क्या समझ सकती थी अतः उसकी रसधारा, वदस्तूर प्रचलित रही अनेक बार कहने पर जी जब रस प्रवाह शमन न हुवा तब एकदम तमोगुणसे प्रज्वलित होते हुवे अपनी प्रबल शक्ति द्वारा हएमी पर दएण प्रहार किया कि जिसमें हंमी ठिन्न ठिन्न हो गई और उस्मेका समस्त रस उसके शरीरपर आ लिपटा

इस समय शरद ऋतु अपनी प्रचएण शक्तिकों इस प्रकार विस्तीर्ण कर रही थी कि सात १ पुट स्फोटन कर हृदय विहूल दशाकों मप्राप्त करती थी इस अवस्थामें वे जमाईजी जिसके कि केरीपाकका रस चारों ओर लिपटा रहा है जाभेके कारण एक रूई गृहमें जालेटे अर्थात् एक रूईके कोठेमें दपट कर सो गए, यद्भावितावत्येव" इस न्यायके अनुसार कितनेक तस्कर रूई चुराने आ पहुँचे स्वरावश बन्नी १ गठभिये बाधकर कूंच हुवे उनमेंसे एक गठडीमें आप हजरत जी बंध गये थे किन्तु रूईकी गर्मीके कारण कुछ जी ज्ञान न हुवा

चोर लोग गठभिये लेकर ज्यों ही शहरके बाहिर हुवे की पोलिस आ पहुँची उन चोर लागोंने जहा की कसाईकी गररियें चर रही थीं वहा गठभिये फेंक दी और अपनी १ जान लेकर जाग पडे चौरोंको जगे हुवे जान पोलिस वापिस लौट गई

प्रातःकालमें जिस वख्त कसाई जेभियोंको लेने आया उस वख्त क्या देखता है कि एक मनोहर श्वेत बालवाला सुन्दर जेभिया लेट रहा है—महानुजागों ! यह वही जेभिया है कि जिसका शरीर केरीपाकके रससे संलग्न हो रहा है तथा उस पर चोतर्फ श्वेत रूई लिपट रही है—देखते ही इस सुन्दर जेभियेके कसाईने तत्काल गोदमें ऊठाकर कूंच किया इस समय उन सेठजीकी निडा पृथक् होनेसे जागृतावेस्याकों संप्राप्त हुवे कसाईके सर्व चिन्ह देखकर

एकदम घबराते हुवे कहते है हे जाई ! जरा दया करना मै जेमिया नही हू
किन्तु मनुष्य हूँ इस पामर जीवकी रक्षा करना इस कथनपर कसाईने गोर
कर उसे मुक्त किया

अब यह दामादजी शर्मिन्दे होते हुवे तालाबमें स्नान मज्जनकर स्त्रीके
पास पहुँचे स्त्रीने पृठा हे स्वामिन् ! रात्रीजर कहा व्यतीत किया लजावश
कुठ जी उत्तर नहीं देता है किन्तु पत्निके अत्यन्ता ग्रहसे अपनी गुजरी हुई
नौवत सर्व कह सुनाई स्त्रीन बहुत कुछ उपहास किया अब ये दोनो दम्पति
वहासे प्रस्थान कर अपने शहरमें संप्राप्त हुवे

महानुजाबों ! इतनी तकलीफ होने पर जी इसने यह दृढ किया चाहे
सो हो किन्तु केरीपाक नामक मीठा अयश्य खाना चाहिये इतना ही नहीं
किन्तु अब यह इस कदर शोकीने हुवा कि अपने सुसरालसे फिन्वे जर
केरीपाक मगवाता है और खूब आनद पूर्वक अपना काल निर्गमन करता है
गुणानुरागियों ! जरा देखिये एक और जी कौतुक अनुभव कराता हूँ

कालान्तरसे उस साहूकारकी स्त्री पुनरपि उसके पितृहकों गई और
उसही तरह पीठसे यह लेनेकों गया तथा तथैव जोजन सामग्री तैयार हुई
उसमें श्रीखएरु (शीखरपी) नामक मिष्ठान जी विद्यमान था, यद्यपि
यह मिष्ट पदार्थका प्रेमी हो गया था किन्तु सर्व मिष्ठानोका तो अब तरु जी
अप्रेमी ही था अतः सर्व मीठा, यालमेसे निकलवा दिया पूर्ववत् इसे श्रीख-
एरुका किञ्चित् स्वाद आया तब प्रथमावस्थावत् अपनी स्त्रीको केरीपाकके
अनुसरि श्रीखएरु लानेका कहा किन्तु त्रपावश उसकी इनकारी पर वह खुद
रवाना हुवा इस वरुत जमाईजीके नेत्रोंमें कुठ रातिदा (रात्रीमे नहीं दिखना)
आने लग गया था वास्ते उसका स्त्रीके कथनानुसार पगडीका एक पट्टा अपने
सोनेके पलङ्गपादसे बाध दिया व दूसरा करकमलमें लेकर रवाना हुवा और
क्रमश उसही स्थान पर जा पहुँचा

प्यारे पाठकों ! शयनगृह और जोजन गृहके अन्तर एक गली-पङ्क्ति

श्री दैव योगसे उस गलीमें निकलती हुई एक जैस पगड़ीके मध्य जागकी निगल गई जब वह दामादजी श्रीखण्डमें पूर्ण तृप्त होकर वापिस लौटने लगे कि पगड़ीका टूटा पल्ला हाथमें आ गया दिलमें बड़ा जारी डःख हुआ किन्तु किया क्या जाय विचारा लकड़ीका सहारा लेकर चलने लगा जोजन गृहसे बाहर निकलते ही पेरमें इस प्रकार ठोकर लगी कि सासुजीके ठाती पर टाकसा जा गिरा

सासुजी एकदम चमक कर चिल्लाने लगी "दोड़ो रे दोड़ो चौर है २ चौर है" यह घबराहटका गन्ध श्रवण कर सर्व कुटुम्बजाग ऊठा अब अंधेरे ही अंधेरेमें जमाईजीको पकड़ कर उलटी मुसकियों बाध एक स्तम्भसे जकम दिये अब ऊपरसे धरुाधरुा रुएरु प्रहार करने लगे जमाईजीके तो देवता कूच हो गये अर्थात् होंस हवाल बिगड़ गए घोर डःख पूर्वक चिल्लाने लगा "अरे मैं थांको जमाई हूँ, वापरे मत मारोरे, ठोड़ोरे, मरुंरे, हाय २ मने मारोरे" आदि अनेक विलापात करने लगा लेकिन वहा कौन सुनता है वे तो अविच्छिन्न तथा बन्धन मार रहे है इस उपमाव-स्थामें जमाईजीकी खाटली हो गई अर्थात् हड्डी २ टूट गई

प्रातःकाल होते ही सब लोगोंने देखा और यह कहने लगे अहो! ये तो अपने जमाईजी है गजब हो गया अब क्या किया जाय सब लोगोंने मिल कर कृपा माही प्यारे पाठकों! जमाईजी तो मरण तुल्य हो गए इधर एक तर्फ तो सर्वको डःख होता है दूसरी तर्फ इतनी हंसी ठूटती है कि उदरमें समाती नहीं मारे हंस २ कर लोटपोट हो रहे अस्तु

दामादजीकी माकुल इलाज कर वाया गया पुण्योदयसे शारीरिक व्यथा दूर हुई स्वास्थ्य ठीक हो गया इस समय ये दोनों दम्पति पूर्ववत् अपने गृह पर संप्राप्त हुवे अब आप खास कर केरीपाक और श्रीखण्डको खूब सेवन करते हैं इतना ही नहीं किन्तु सर्व प्रकारके मिष्ठ जोजन सेवन करते हुवे आनंदपूर्वक निवाम करते हैं

प्यारे मुमुक्षुओं ! आपको इस कौतुकी लघु दृष्टान्तसे यह सम्यक् परि-
 कृत हो गया होगा कि वह साहूकारका लम्का उन मिष्ट पदार्थोंमें किस
 प्रकार आसक्त हुआ था कि जिससे अनेक प्रकारके कष्ट* गुजरने पर जी, वह
 ऊन ऊत्तम जोतनोंके सेवनसे विमुख न हुआ

इसही प्रकार प्राणी मात्रकों सामायक, पौषध, प्रतिक्रमण, देशव्रत, महा-
 व्रत, नौकारसी, एकाशन, निविगय, अँपविल, उपवासादि तपस्या; पठन
 पाठन, देव दर्शन, गुरु दर्शन, स्वोपकार, परोपकार, ज्ञान, ध्यान और योग-
 ज्यासादि क्रियाओंसे कदापि स्वलित नहीं होना चाहिये इतना ही नहीं
 किन्तु प्रत्येक उचित कार्योंमें ऐसा मूढ रहना चाहिये कि चाहे प्राण जी
 क्यों न चले जाय किन्तु स्वीकृत नियमसे स्वप्नमें जी च्युत न हों महान्
 पुरुषोंका यही विजयकर अटल सिद्धान्त है.

गुणशीलों ! इसही प्रकार हमारे वे पूज्यपाद अपने अप्रतिबद्ध विहारमें
 उस प्रकार मूढ थे कि उन्हे चन्द्र नागेन्हे जी उन्हे चलविचल करनेमें स-
 र्वथा असमर्थ थे

अहाहा ! धन्य हो मुनि पुङ्गव ! इस पञ्चम कालमें चतुर्थ कालका कि-
 श्वित् रसास्वादन करने व करानेमें आप जी एक अनुभेही मुनि रत्न प्रतीत
 होते है आपका जगत प्रिय अप्रतिबद्ध विहार बुद्धिजन प्रशंनीय है
 इतना ही किन्तु विश्व अनुमोदनीय व अनुसरणीय जी है.

महानुभावों ! आपने अपने पवित्र मानव जवकों सार्थक करते हुये अनेक
 जेव्यात्माओंका अकथनीय उद्धार किया आपने मुनि पद धारण कर ज्ञान,
 दर्शन और चारित्रकों इस प्रकार उज्ज्वल किये कि जिसकी बराबरी विरले
 पुरुष ही कर सकते होंगे आपकी ज्ञान शान्त मुद्रा चिरकालीय क्रोधरूपी

* अनेक कष्टोंमेंसे एक दो इसमें उद्धृत भी कर दिये गए है शेष अन्यत्र स्थानसे
 जानना चाहिये

हलाहल विषको तत्काल नष्ट कर देती थी। आपका गाम्भीर्य गुण जगत जनको बलात् आनंद सागरमें निमग्न कराता था। इत्यादि। सङ्कत पाठको अनेक दिव्य गुण विज्ञापितये ज्ञवोद्धारक ३६ वर्ष ४ माह २४ दिवस निर्मल चारित्र पालन कर जूतलमें अपना मनमोहन पवित्र नाम चिरकालीय कर इस ससार (जव) से चलवसे

॥ जवान्तरमें उत्तम प्रस्थान ॥

वे धर्मावतार इस पृथ्वी मण्डलपर अपने प्रशस्त गुणोंका विशाल प्रभाव विस्तृत करते हुवे वीर मन्वत् २४१२ विक्रम संवत् १९४५ माघ कृष्ण शुक्ल चतुर्थी शनिश्चर वार वमुजिय तारीख २३ जान्युआरा सन् १९०६ के प्रातःकाले शुक्ल योगमें मरुस्थलके विशाल शहर बोधपुर राज्यान्तरगत सुपरसिद्ध नगर फलवर्धि (फलोदी) में आनी देहको त्याग कर चतुर्विध आहार, वस्त्र, पात्र, और देहादि समस्त पदार्थोंका त्रिवेन ३ त्याग कर परलोक पधार गए।

अरररर ! जिस प्रकार जगदाधार वीर परमात्माके मोक्षपधारने पर हमारा ज्ञवोद्धारक मारतएन अस्त हो गया जिससे चारों ओर अन्धकार ठा गया था तथैव हमारे असासन्नोपकारी पूज्य गणाधीश्वरके परलोक पधार जानेसे हमारा समुदायरूपी पृथ्वीतल घोर अन्धकारसे पूर्ण आच्छादित हो गया था इतना नहीं किन्तु जैन समाजके अधिकांश हिस्से रूपी भूमण्डलमें एकवार तो अन्धकारने अवश्य ही अपना विकराल रूप पसारा था इस असहाङ्खतावस्थामें गुणानुरागी लोग शोक सागरमें चारों ओर गोता मारने लग गए थे, आपकी वियोगावस्थाके खास समयमें अकल्पनीय डाखका होना यह तो स्वभाविक ही सिद्ध है किन्तु आज्ञाज्ञी जव हम अपने उन पूज्य प्राणाधारके वियोगावस्थाका दिलिचिन्तन करते हैं कि तत्काल ही हमारे नयन युगल गद ३ जरी आते हैं

और उनमेंसे अश्रुपातोंकी अविरोध धाराएँ बूटने लगजातीं हे इसमें संदेह नहीं कि एक बार तो जगत जनाको वैसा ही मद्मा पहुँचा कि जैसा वीर परमात्माके लिये गौतम स्वामीको पहुँचा था यह प्रसस्त प्रेमका ही प्रजाव-समजा जा सकता है

हमें प्राण वियोगमें जी असीम डाखके साथका साथ ही अयाह हर्ष जी प्राप्त हो रहा है कि पूज्य महर्षि अपने अनृते जीवनको कृतार्थ कर पृथ्वी तलको पवित्र करते हुवे अनेक अपूर्व गुण रत्नोंका जरपुर जेणमार लेकर जवान्तरमें पधार गए

यह तो सत्यः सिद्ध है अर्थात् दृढ अनुमान है कि ऐसे अद्वैत योगीश्वर जघन्यमें उत्तम वैमानिक पदसें विजूपित हुवे होंगे तथा उत्कृष्टः महा विदेहमें परम परमात्मा अर्द्धनू देवके चरण शरण हो गए होंगे और वहा उनकी निश्राईसें अपने आत्म गुणोंमें रमण करते हुवे शीघ्र ही निष्ठितार्थ पद (सिद्ध पद-मोक्ष) को समाप्त कर अजर, अमर, अविनाशी, निरञ्जन निराकार ज्योति स्वरूपमें रमण करने हुवे अनंतकाले पर्यन्त अनन्त दिव्य सुखोंमें झीलते रहेगे.

महानुभावो ! मैंने आन्तरिक जक्ति वश होकर अपने अल्प उ-
ध्यानुसार स्वकीय आत्म लाजार्थ तथा अन्य जग्यात्माओंके हिनार्य ऐसे पूज्य गुणशाली गुरु महाराजके " महिप्त जीवन चरित्र " की रचना कर अपने मानव जवको कृतार्थ किया

हे विशाल ज्ञानी गणाधीश्वर ! आपके दिव्य अगण्य गुण इस प्रकार विस्तृत है कि जिसका पारा चार नहीं मैं अल्पज्ञ तो क्या किन्तु सरस्वतीजी यदि अनेक प्रौढ़ प्रज्ञा क्षरत पार पाना चाहे तो सर्वथा असमर्थ है. ययाही:-

(श्लोक)

असित गिरिसमं स्यात्-कज्जलं सिन्धु पात्रे ।
सुर तरुवर शाखा लेखनी पत्र मुर्वी ॥

लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्व कालं ।
तदपि तव गुणानां भीशं पारं न याति ॥१॥

जावार्थः—हे स्वामिन् ! यदि अथाह समुद्र-रूपी पात्र-वृक्षाकर, उसमें सुमेरु पर्वत जितना कज्जलका ढेर किया जाय और पृथिविके बरोबर पत्र पर कल्प वृक्षकी प्रमान शाखा लेखनी ग्रहण यदि सरस्वती अपनी प्रबल शक्ति द्वारा समस्त काल लिखती ही रहै किन्तु तदपि आपके अग्रगण्य दिव्य गुणोंका पार नहीं पा सकती है अर्थात् आपके अद्वैत गुण अपरंपार हैं.

प्यारे सज्जनों! हमें यह सुदृढ विश्वास है कि हमारे साहिबानुरागी पाठक श्रेष्ठ ऐसे उत्तम योगीश्वरके इस सद्भिन्न जीवन चरित्रको पढ़कर मनन पूर्वक गुण ग्रहण करेंगे और उनके अनुसार आचरण करते हुवे अपनी आत्माका कल्याण करेंगे

प्यारे पाठक बरो ! यह चरित्र पूर्ण करनेके साथ ही साथ मैं यह शुभ ज्ञानना ज्ञाता हू कि आप नाथका पवित्र नाम इसपृथ्वी तलमें सदैव जयवन्ता वर्त्तों

॥ शुभम् ज्ञयात् ॥

ज्ञान रसिकों ! अब मैं आपके प्रभावशाली जयन्तीका किञ्चिद्विवरण पाठकोंके अज्ञिमुख करता हूँ आशा है कि आप सज्जन गण प्रेम पूर्वक पढ़ेंगे

॥ प्रजावशाली गुरु जयन्ती ॥

निर्वाण कल्याणक (काल माप्तक शुभ दिवस) वा जन्म कल्याणकके शुभ मिति पर प्रतिवर्ष अनेक प्रयोगोंसे दिव्य गुणोंकी प्रजावना करते हुवे शामनके उद्योगके साथही साथ आप खुद तपादि विशिष्ट गुणोंको अवधारण करे तथा अन्य जन्म प्राणियोंको नानाविध व्रत प्रत्याख्यान करवा कर, उनके मानव जवकों कृतार्थ करावे एवम् आराधन करनेवालेकी अनुमोदना करते हुवे वह पवित्र दिवस महोत्सव पूर्वक निर्गमन करे उसे "जयन्ती" कहते है

प्यारे पाठकवरों ! हमारे महान् अन्तराय कर्मके प्रबल ऊदयसे यह अ-पूर्व सौजाग्य आपके जवान्तर पधारनेके सत्ताइस बषोंके पश्चात् हमे संप्राप्त हुवा अर्थात् वीर सम्बत् १४४० विक्रम सम्बत् १९७० में आपके काल माप्तके निज स्यान (फलोदी) पर प्रथम जयन्तीका सुअवसर संप्राप्त हुवा

द्वितीय जयन्ति महोत्सव वीर सम्बत् १४४१ वि स १९७१ में बने ही समारोहके साथ मुप्रसिद्ध शहर विक्रमपुर (बीकानेर) में हुवा

तृतीय जयन्तीका पवित्र सौजाग्य वीर सं १४४१, वि स १९७१ में राज-पूतानेके केन्द्रस्थान मुप्रसिद्ध अजमेर में बनेही समारोहके साथ संप्राप्त हुवा इसमें सदेह नहीं की यह दृश्य एक अवश्य ही दर्शनीय था

तीनों ही जयन्तियों मे यथोचित पूजन प्रजावना, रथ यात्रादि उत्सव बने ही समारोहके साथ हुवे तथा, उपवास, ऑषधिल, एकाशनु, रात्री जो जन त्याग, ब्रह्मचर्य पालन, सामयक पौषध, प्रतिरुमणादि नानाविध प्रत्याख्यान सैकड़ों जन्वात्माओंने अवधारण कर अपने मानव जवकों कृतार्थ किये

यह प्रजावशाली, जयन्ती-दिन बहिन तरकीको संप्राप्त हो रही है प्रथम जयन्तीसे द्वितीय अधिक उत्सवके साथ आराधन की गई तथा द्वितीयसे तृतीय विशेष महोत्सवके साथ आराधन कर अपना मानव जव पवित्र किया

गुरुदेवसे अहर्निश सविनय यही श्रुत्यता है कि उन पूज्यपाद गणाधीश्वरकी जयन्ती प्रति वर्ष विशाल दिव्य स्वरूपमें वृद्धिगत होती रहे

वाचक हृन्दों! अब मैं चरित्रनायक पूज्यपाद गणाधीश्वर श्रीमान् सुखसागरजी महाराज साहब शासनाधीश्वर परम परमात्मा श्री महावीर स्वामीकी शुद्ध परंपरामें किस प्रकार संलग्न हूँ इसमें प्रकाशित करनेके हेतु शुद्ध गुर्वावली साहित्य रूपेण पदशित करता हूँ इसके साथही साथ पूज्य गुरुवर्यकी शीतल ठायीमें निवास करनेवाला सुन्दर समुदायका जी किञ्चित् परिचय देनेमें प्रयत्नशील होता हूँ

॥ मोहन गुर्वावली ॥

जगत्पूज्य, जगद्गुरु, जगन्नाथ, जगदोदार, परम प्रभु, सर्वज्ञ, सर्व दर्शी, पूर्ण ब्रह्म, त्रिकाल स्मरणीय चतुर्विंशतितम तीर्थंकर, अहंदेव "श्रीमन् महावीर परमात्मा" हुवे

तत्पदे चतुर्ज्ञानधारी, चतुर्दश पूर्ववेत्ता, षाडशाहो रचयिता, सम्यक्त्व रत्न रङ्गिता, आत्म ज्ञान परायणादि गुणैर्विभूषिता "श्री गौतमस्वामी" किन्तु उनके समस्त शिष्य केवल ज्ञान पाकर मोह गये अतः उनकी परंपरा नहीं चली इसही लिये वीर परमात्माके फरमानानुसार आपकी "पद पर श्री सौधर्मस्वामी" हुवे ॥ ३ ॥

तत्पदे "श्री जम्बूस्वामी" हुवे—आपके मोह पधारनेके पश्चात् १. मन पर्यवज्ञान २ परमाधि ज्ञान ३. पुलाकजन्धि ४. आहारका शरीर ५. रूपक श्रेणी ६ उपशम श्रेणी ७ जिनकल्प मार्ग ८ परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म संपराय, यथाख्यात चारित्र्य ९ केवल ज्ञान १०. सिद्धिमार्ग ये दश वस्तुष विष्टे हुईं॥३॥

तत्पदे "श्री प्रज्ञवस्वामी" ४ १. तत्पदे दशवैकालिक कर्मा, "श्री

शंभुमन्त्रवसूरी" ५। तत्पट्टे "श्री यशो ज्ञसूरि" ६ । तत्पट्टे श्री सन्नूतिविजयजी ७ । तत्पट्टे उपसर्गहर स्तोत्र, आवश्यक "निर्घुक्ति", कल्प सूत्रादि अनेक ग्रन्थ कर्ता चतुर्दश पूर्वधारी द्वितीय लघु भ्राता "श्री ज्ञ-वाहूस्वामी" हुवे ८ । तत्पट्टे कोशा वैश्या प्रतिबोधक प्रचण्डशील व्रतपालक "श्री सुस्थितसूरि" ९ । तत्पट्टे श्री आर्य महा गिरी १० । तत्पट्टे द्वितीय लघु भ्राता श्री आर्यसुहस्तिसूरि हुवे ॥ ११ ॥

तत्पट्टे क्रोन्वार सूरि मन्त्रका जाप करनेवाले श्री स्थितसूरि हुवे जैन समुदायमें आप महानुभावसे कौटिक गच्छ सुप्रसिद्ध हुवा ॥ १२ ॥

तत्पट्टे श्री चन्द्रदिनसूरि १३ तत्पट्टे श्री दिव्यसूरि १४ तत्पट्टे जातिस्मरण ज्ञानवान् श्री सिंहगिरीजी १५ ॥

मध्यमें श्री वृषवादीसूरिके एक असाधारण न्यायाचार्य श्री सिद्धसेन दिवाकर हुवे आप श्रीने सुमनोहर मालव देशमें उज्जयनी नगरीके अन्दर माहाकाल नामक मन्दिरमें प्रजाविक श्री कल्याणमन्दिर स्तोत्रकी रचना की और उसके द्वारा शिवलिङ्गको स्फोटनकर परम परमात्मा श्री पार्श्वनाथस्वामोका दिव्य त्रिम्ब प्रकट किया तथा राजा विक्रमको सङ्घदेश देकर पवित्र जैन धर्म बनाया—आप पूज्यने अनेक ग्रन्थोंकी रचना कर जैन समाज पर प्रमोपकार किया है

तत्पट्टे धाल्यावस्थासे ही जातिस्मरण अवधारण करनेवाले श्री वज्र-स्वामी हुवे आपके पश्चात् दशम पूर्व और चतुर्थसंहननादि विघ्नेद हुवे आप बुद्धि विचक्षणसे ब्रह्मशास्त्रा प्रचलित हुई १६ ॥ तत्पट्टे श्री वज्रसेनाचार्य १७ तत्पट्टे श्री चन्द्रसूरि हुवे आप प्रजावशालीमें चन्द्रकुल स्थापित हुवा १८

तत्पट्टे श्री समतचन्द्रसूरि १९—तत्पट्टे श्री दिव्यसूरि २० तत्पट्टे श्री प्रद्योतन-

सूरी १२ तत्पट्टे शान्तिस्तव कर्त्ता श्रीमान् देवसूरि १३ तत्पट्टे ज्ञानामरादि कर्त्ता श्रीमानतुङ्गसूरि १३ तत्पट्टे श्री वीरसूरि १४ ॥

इसके अन्तरमें लोहितसूरिके प्रखर विद्वान् शिष्य परम पूज्य श्रीमान् देवर्दिगणि क्रमाक्रमण हुवे आप विशाल ज्ञानीने वल्लभी नगरीमें समस्त आचार्यादिकोंको इकत्रितकर वीर-निर्वाणके ७०० वर्ष पश्चात् सर्व शास्त्र लेख प्रवृत्तिमें प्रचलित किये—आप पूज्यका यह महानुपकार अखिल जैन समाजको चिर स्मरणीय है

तत्पट्टे जयदेवसूरि १५ तत्पट्टे श्री देवानंदसूरि १६ तत्पट्टे श्री विक्रमसूरि २७ तत्पट्टे श्री नरसिंहसूरि १८ तत्पट्टे श्री समुद्रसूरि १९ तत्पट्टे श्रीमान् देवसूरि ३० तत्पट्टे श्री विबुधप्रज्ञसूरि ३१ तत्पट्टे श्री जयानंदसूरि ३२ तत्पट्टे श्री रविप्रज्ञसूरि ३३ तत्पट्टे श्री यशोज्ञसूरी ३४ तत्पट्टे श्री विमलचन्द्रसूरि १५ तत्पट्टे श्री देवसूरि आपसे सुविहितपक्ष प्रसिद्ध हुवा ३६ तत्पट्टे श्री नेमिचन्द्रसूरि ३७ ॥

तत्पट्टे श्री उद्योतनसूरीश्वर हुवे आपने चौगासी गच्छोंको स्थापना कर श्री वीर शासनका अनुपम उद्योत किया देखिये:—

आप महानुभावको एक अद्वैत विद्वान् समझकर अन्यत्रयासी मुनिराजो के ०३ शिष्य आपकी सेवामे पठनार्थ हाजिर हुवे अब ये सर्व ठात्र सज्जन आगमोंका अज्यास जलीव प्रकार करते हैं क्रमशः मालव देशके श्री संघके साथ पवित्र तीर्थराज श्री सिद्धाचलजीकी यात्रा कर अपने मानव जन्मको कृतार्थ किया, ऋषुज्जिनेश्वरको वदना नमस्कारकर वापिस लौटवे समय सिद्धवरुके नीचे रात्रीमें स्थित रहै- मध्य रजनीमें आप कया देखते है कि रोहणी नक्षत्रके विमानमें बृहस्पति प्रवेशकर रहा है यह शुभ अवसर देख आपने फरमाया कि इस वरुत ऐसा उत्तम योग है कि जिसके मस्तक पर हस्त स्थापन किया जाय वह बन्दी ही प्रसिद्धताको अवधारण करेगा यह

सुवचन सुनके ८३ ही शिष्योंने नम्रता पूर्वक प्रार्थना की कि हे नाथ ! आप हमारे पितागुरु हैं हम आपहीके सेवक हैं कृपया हमारे पर ही हस्त स्थापन कीजियेगा तब सूरेश्वरजीने फरमाया वासक्षेप लेआउं उन शिष्योंने तत्कालही काष्ठ व कन्फेका चूर्ण कर हाजिर किया गुरुमहाराजने उस चूर्णकों मंत्र कर उन ८३ योंके मस्तकपर प्रक्षेप किया पश्चात् आपश्रीने अपनी अम्पायुष्य जान मातःकालमें ही अनशनकर स्वर्गवास पधार गए तदनन्तर आपके वासक्षेपीय शिष्य क्रमशः आचार्य पद पाकर विचरने लगे इस प्रकार आपके निज शिष्य श्रीवर्धमान सूरेश्वर सहित ८३ मिलाकर चौरासी गद्य प्रचलित हुये आपश्री उद्योतन सूरेश्वर चौरासीही महाप्रजावशाली आचार्योंके सङ्ग ये ३८ ॥

तत्पट्टे श्री वर्धमानसूरि हुये आपने अपनी शक्ति द्वारा धरणेन्द्रकों आराधन किया और श्री सिमन्दिरस्वामिके पास जेजकर सूरि मन्त्र शुद्ध करवाया. ॥ ३९ ॥

तत्पट्टे महा प्रजावशाली खरतर पद विरुद्धारी जैन गान मार्त्तण्ड श्री जिनेश्वरसूरि हुये, आपका कितनाक निग्रन्थ यहापर उद्धृत करता हूँ:

एक समय आप अपने ज्ञाता बुद्धिसागरजी सहित मरुस्थलसे विहार कर गुर्जर देश (गुजरात) अणहिल्लपुर पट्टणमें पधारे वहा पर उर्लज राजा का पुरोहित शिवशर्मा ब्राह्मण जो कि आपका पूर्व मातुल (मामा) था उसें एक शब्दों में ही चमत्कार दिखलाकर उसके घर सानद निवास करते रहै

आपका ज्ञानागमन सुनवहाके चैसवासी (शिष्याचारी) धवरा उठे उन्होंने यह सोचा कि ये बने जारी ज्ञानवान और क्रियावान् है इन्हे किमी तरह निकलवा देना चाहिये वना अपनी बहनी उर्दशा होगी यह विचार उर्लज राजाकों जा-जिनाया कि मद्दाराज ! आपके पुरोहितके पहा चौर लोग

दिखीसँ आकर रहे हुवे हैं उन्हे निकलवाना चाहिये मुनते ही राजाने तत्काल उस पुरोहितको बुलाकर पूछा कि तुमारे घरमे चौर है ऐसा सुना जाता है उमने उत्तर दिया स्वामिन् कहनेवाले ही चौर है वेतो परम संवेगी, परम सागी, ध्यानी योगीश्वर है यह सुन राजाने उनके शुद्धाचार विलोक नार्थ उन महात्माको बसे ही सत्कारके साथ पदार्पण करवाया गुरुमहाराजने राज सजामें पजारते ही रजोहरणसँ जूमि प्रमार्जन कर डर्या पथिक प्रतिक्रमी और अपनी कम्बली बिछाकर विराज गए

राजा इस श्लायनीय आचारको देखकर आनदित होता हुआ कहने लगा कि अहाहा ! सगुरु इसही प्रकारके होते हैं चैत्यसियोंके पतिताचार देख आप पूज्यपादको प्रार्थना की कि हे जगत्पूज्य ! सद्गुरुका आचारोपदेग करियेगा गुरुमहाराजने फरमाया राजन् ! मै अपने मुखसे क्या कहूं तुमारे सरस्वती ज्ञानारमें सर्व मतके स्वरूप प्रकाशक ग्रन्थ निद्यमान है अतः यदि तुमारी इच्छा है तो निर्मल जलसे स्नान की हुई कुमारी कन्या द्वारा मङ्गवाना समुचित होगा राजाने उसही तरह कुमारीको सरस्वती ज्ञानारमे जेजी अनायास दशवैकालिक सूत्र ही उपलब्ध हुआ मान्यवरों ! बगेर रतलाए हुवे ही अचानक साधु आचारका ग्रन्थ मिलना यह जी आपका एक सुप्रज्ञाविक चमत्कार है

राज सजामें ग्रन्थ आते ही गुरुमहाराजने फरमाया कि यह इन चैत्यवासियोंके हाथमें देकर इनहीसे बचाया जाय अब वे लोग बाँच रहे है किन्तु साधुओके सदाचारवाले पत्रके पत्र ठोडने लगे यह बिलक्षण घटना देख गुरु महाराजने फरमाया राजन् ! तुमारी सजामे दिनको ही चौर निवास करते है इत्यादि सुन राजाने कहा आपही बाचियेगा गुरुमहाराजने फरमाया इस अवसरमें मेरा बांचना उचित नहीं तुमारे निष्पक्षपाती विद्वान् ब्राह्मणोंसे ही बचाओ

ब्राह्मणोंने यथार्थ बाचकर सजाको श्रण कराया सकल समाज सहित

सुनतेही शमाने अति मसन होकर कहा “अतिखराएते” ये बड़े खरे हैं (विशुद्ध दृढ हैं) इसही वस्तुसे अर्थात् वीर सम्बन्ध १५५० विक्रम सं. १०६० में छूर्नन महाराजाकी महा सन्नामें पराजय हुवे चैत्यवासियोंकों “कुंवला” नामसे व्यपदेश हुवा और परम पूज्य गुरुवर्य श्रीमान् जिनेश्वरसूरिश्वरकों खरतर विरुद्ध महा पदसे विभूषित किये ॥४८॥

तत्पट्टे श्री जिनचन्दसूरि आपने दिल्ली शहरमें बहुतसे श्रीभालियोंकों व कइएक राजवाँियोंकों प्रतिबोध देकर शासनकी प्रजावनाकी जिन राजर्षियोंकों आपने श्रावक बनाये उनका महतियान् गौत्र स्थापन किया- उस अवसरमें पद्मावती देवी प्रकट होकर प्रार्थना करने लगी कि हे पूज्य गुरुवर्य ! “जिनचन्द” यह नाम वनाही प्रजावशाली है अतः आपकी शुद्ध परम्परामें चाये पट्ट पर अवश्य देते रहियेगा ॥ ४९ ॥

तत्पट्टे आप महामुन्नावके लघु ज्ञाता महा प्रजावशाली श्री अन्नयट्टे-वसूरीश्वर हुवे आपने शासन देवीकी प्रार्थनासे प्रजाविक जयतिहुण स्तोत्रकी अपूर्व रचना कर स्तम्भनरु महा तीर्थ प्रकट किया तथा नौ अङ्गोकी अपूर्व संस्कृत टीका कर जैन समाजपर अस्मिणीय उपकार किया आपने प्राकृत और संस्कृतके अनेक ग्रंथोंकी रचना की है ॥४९॥

तत्पट्टे श्री जिन चन्द्रसूरि हुवे आपने संप पट्टादि अनेक ग्रंथोंकी रचना की अनुमान दश हजार वागमियोंको प्रतिबोध देकर श्रावक बनाए चित्रकूट नगरमें चण्डिका देवीकों प्रतिबोध दिया आपके सङ्गदेशसे अनेक जिन ज्ञानोसे यह पृथ्वी विभूषित हुई इस प्रकार प्रजाविक समस्त शासन देवीने पूज्य गुरुवर्यसे यह प्रार्थना की कि अवसे आपकी पद परंपरासे आचार्यके नामके पूर्व प्रजावशाली “जिन” शब्द अन्वित करते रहियेगा

आप कृपावतारसे "मधुकर खरतर शाखा" प्रचलित हुई यह प्रथम गद्य जेद हुआ ॥ ४३ ॥

तत्पट्टे चौरासी गच्छ श्रृंगारहार जंगम युगप्रधान जहारक दादासाहेब श्री जिनदत्तसूरिश्वर हुवे. उन प्रतापशाली वीर पुरुषका संक्षेपतः विवरण इस स्थल पर उद्धृत करनेका प्रयत्न करता हूँ:—

धंधुका नगर निवासी हुवरु गोत्रीय वाञ्छगमन्त्री पिताके कुलमें बाहम देवी मातेश्वरीके रत्न कुक्षीसे वीर सं० १६०७ विक्रम सं० ११३१में सोमचन्द्र नामक सुपुत्र समुत्पन्न हुवे आपने परम वैराग्यतासे वीर सं० १६११ वि० सं० ११४१ में धर्मदेव उपाध्यायजीके पास दीक्षा अङ्गीकार की।

एक समय सारङ्गपुर, नगरमें आप गुरुवर्यने कुअरपाल उपाध्यायजीको अनशन करवाया जिसके प्रतापसे वे देव पदको संप्राप्त हुवे आचार्य पदवीके प्रथम ही उस देवने प्रकट होकर कहा कि सोमचन्द्रको आचार्य पदवी प्राप्त होगी उसके तीन मुहूर्त्त हैं प्रथम मुहूर्त्तमें मृत्युका योग है द्वितीयमें गद्य जेद है और तृतीय अति श्रेष्ठ है यह कहकर अदृश्य हो गया. "यज्ञावित्तं जयत्येव" इस न्यायसे जयवश द्वितीय मुहूर्त्तमें ही वीर सं० १६३९ वि० सं० ११६९ में चित्रकुट नगरमें श्री देवजडाचार्यजीने सूरि मन्त्र देकर आप श्रीको आचार्य पदसे विभूषित किये और "श्री जिनदत्तसूरीश्वर" इस नामसे अलङ्कृत किये आप प्रतापशालीको द्वितीय मुहूर्त्तमें आचार्य पद संप्राप्त होनेसे देवचनानुसार वीर सं० १६९४ वि० सं० ११०४ जिन शेखराचार्यसे रुद्रपत्नीय खरतर शाखा प्रचलित हुई यह द्वितीय गद्य जेद हुआ आप पूज्यपाद गुरुवर्यने अनेक प्रजापशाली कार्य किये जिनमें कितनेक नमुने इस स्थान पर उद्धृत करनेका प्रयत्न करता हूँ:—

एक समय आप पूज्य सूरेश्वरने अपने मन्त्र शक्ति द्वारा चित्रकुट नगरमें

द्वगृहके वज्र स्तम्भमें रहा हुआ अनेक मंत्रों की आभायिका पुस्तक तथा उज्जयनीयमें महाकाल मन्दिरके स्तम्भमें रहा हुआ श्री सिद्धसेन दिवा करजीका विद्याग्रन्थ ग्रहण किया

एक दिनका प्रस्ताव है कि आप उज्जैनमें व्याख्यान बॉच रहे थे उस समय श्राविकाओंका रूपकर चोपठ योगिनियें ठलनेके लिये आईं-इन्हे श्रावकोसे उपयोग किये हुवे ६४ पद्यो पर आप गुरुपर्यने मन्त्र द्वारा खीलदी उस वखत उन्होने अति प्रसन्न होकर सप्त वरदान दिये तथा सातोंही उनके प्रयोग दिखलाए-तद्यथा:—

॥ सप्त वरदान ॥

- (१) प्रत्येक ग्राममें खरतर गङ्गीय श्रावक दीप्तिमान् होंगे
- (२) खरतर श्रावक प्रायः निर्धनन होंगे
- (३) संघमें कुमरण नहीं होगा
- (४) अखण्ड शील वत्त पालन करनेवाली साध्वी ऋतुमति नहोगी
(Monthly course)
- (५) खरतर संघको शाकि-यादि नहीं ठलेंगी
- (६) जिनदत्तमुरीश्वरका नाम स्मरण करनेसे विद्युत् (विजली) बगेराका पतनादि उपसर्ग न होगा
- (७) खरतर श्रावक सिंधु देशमें जानेसे धनाढ्य होंगे

॥ सप्त वरदानके सप्त प्रयोग ॥

- (१) सिंधु देशमें जानेतें गङ्गा नायककों पञ्च नदी साधना चाहिये
- (२) मूरि पद धारककों नित्य दोसौ वार मूरि मन्त्रका जाप करना चाहिये
- (३) मुनिराजकों नित्य दो हजार नमस्कार मन्त्रका जाप करना चाहिये
- (४) खरतर श्रावकको दोनो काल सप्त स्मरणका पाठ करना चाहिये

(५) श्रावककों प्रति दिवस तीन खिचड़ी, (एक मनके पर एक नमस्कार और एक उपसर्ग हर स्तोत्र) की माला गिनना चाहिये.

(६) खरतर श्रावककों एक मासमें दो आचाम्ल करना चाहिये.

(७) खरतर मुनिकों सति सामर्थ नित्य एकाशन करना चाहिये.

सातो वरदानोंके फलितार्थ उपरोक्त सप्त प्रयोग बतलाकर प्रस्थान करते समय यह कहकर रवाना हुई कि दिल्ली, अजमेर, मरुअछ, उज्जैन, मुलतान, उचनगर और लाहौर इन सप्त नगरोंमें पूर्ण शक्ति रहित खरतर गहनायककों रात्री निवास नहीं करना चाहिये

एक समय अजमेर नगरमें पाक्षिक प्रतिक्रमणमें बिजली वार १ ऊबकती हुई बाधा पहुँचा रही थी उसही वख्त गुरुदेवने जलपात्रसे उसें दया दी प्रतिक्रमणके बाद पात्र उठाया विद्युतने प्रसन्न होकर यह वरदान दिया कि आपका नाम जपनेवाले पर मैं कदापि न गिरूंगी

एक समय आप वृक्ष नगरमें पधारे जैन शासनकी प्रजावनाकों नहीं सहने वाले ब्राह्मणोंने मृतक गौ जिन मंदिरमें पटककर हत्या मचाया कि जैनियोंके देव हिंसक होते हैं इत्यादि श्रावकोंके आग्रहसे गुरुदेवने व्यन्तरद्वारा उसे जीवित कर दी जिससे वह गौ शिव मूर्तिके ऊपर जा गिरी यह विशाल प्रजाव देख ब्राह्मणोंकी बड़ी जारी हंसी हुई इससे वे लज्जित होकर गुरु देवसे प्रार्थना करने लगे कि आजसे आपकी परंपरावाले कोई जी आचार्य आवेंगे उन्हें परम महोत्सवसे हम नगर प्रवेश करावेंगे इत्यादि जैन वर्षकी विशाल प्रजावना हुई

एक समय जेरुअच नगरमें आप पूज्य गुरुवर्यने मास जहण वन्द करवाकर मुगल पुत्रकों व्यन्तर द्वारा ठ मास जीवित रक्का

एक दिनका प्रस्ताव है कि नागदेव (अचड़) श्रावकने गिरनार पर्वतपर-

अष्टमसंस्कार अंधिकादेवीको आराधनकी और यह पूठा कि हे देवी ! इस वरुन भरतक्षेत्रमें युग प्रधान कौन हैं मैं उन्हें अपना गुरु करना चाहता हूँ देवीने तत्काल उसके हस्त पर एक श्लोक लिख दिया और कहा कि उसें जो परु देवही युग प्रधान समजना—

वह श्लोक अनेक आचार्यों को बताया किन्तु कोई जी न बाच सका अखीर परित्रमण करता हुवा पाटण नगरमें गुरु टयालके पास आने पहुँचा गुरु महाराजने उसके हाथ पर वासहेप करके शिष्यको बाचनेकी आज्ञा बं-
कीस की अतुल प्रतापी गुरुवर्यके आज्ञानुसार उसने उस श्लोकको बाँचकर स्पष्टार्थ तत्काल प्रदर्शित किया यह सुन वह श्रावक परं श्रद्धान् हुवा इस प्रकार आप परम पृज्य युग प्रधान निर्मल पदसें विज्ञापित हुये वह अनुपम श्लोक यह है -

(श्लोक)

दासानुदासाश्च सर्वदेवा यदीय पादाब्जतले लुगन्ति ।
मरुस्थली कल्पतरुः सज्जोयाद्युगप्रधानो जिनदत्तसूरिः ॥ १ ॥

एक वरुत आप श्री व्याख्यान बाँच रहेथे उस समय आपके एक परम जक्त श्रावकने अपनी जहाजेंको समुद्रमे मूडती हुई जान आप गुरुदेवका स्मरण किया—तत्काल ही आपने अपने दीर्घोपयोगसें जान पढ़ीका रूप बनया-
कर उसकी ससस्त जहाजें तिरा दी—यह श्रवण कर समस्त जन समाने जैन शासनकी महती प्रभावना की—आपश्री बहुरूपी विद्याके पूर्ण अनुजवि थे.

एक वरुत आप गुरु देव गुलतान नगरमें घनेही उत्सवसें प्रवेश हुये उस समय पट्टननगर निवासी खरत्तर विरोधी अंबरु श्रावकने कहा कि हमारे अणहिल्लपुर पत्तनमें इस प्रकार पभारें तो आप चमत्कारी समझे जाय

वरना "मिट्टीके नक्कारे और धरके वजानेवाले-खूब कूटते रहो"

गुरुमहाराजने फरमाया हम तो बेशक उसही तरह आवेंगे-किन्तु उस समय तू निर्धनावस्थामें नमक तैल लेकर सन्मुख मिलेगा.

ग्रामानुग्राम विकार करते हुवे वृद्धे महोत्सवसें पत्तन नगरमे प्रवेश हुवे सन्मुख वही निर्धन अन्न आया देखते ही गुरुमहाराजने फरमाया कि क्यों अन्न अहंकारका फल तूजे मिल गया ? यह सुन अन्न शर्मिन्दा हुवा अब क्रोधवश होता हुवा कपट गारी खरतर श्रावक बनकर उन पूज्यका सन्मान करने लगा और वरुही जक्त बना

एक दिन उस वृषी अन्नने जहर मिलाकर गुरुवर्यकों मीठा जल बहरा दिया आप पूज्यने उसमें विष जान शीघ्रही जणशाली गौत्रीय आज्ञू नामक श्रावकसे विषा पहार मुडिका मझवाकर निर्विष बनाया यह वदना सुन सब लोगोने अन्नकी वड़ीही कदर्थना की क्रमसे वह काल करके व्यन्तर हुवा वहापर जी वृषवश गुरुवर्यका रजोहरण (ओषा) हरणकर लिया इस वस्तु गुरुमहाराज कुछ खिन्न चित्त हुवे इसपर आज्ञू श्रावकने उस व्यन्तरको कहाकि गुरुदेवकों प्रसन्न करों मै भैरा समस्त कुटुम्ब तुमकों अर्पण करुंगा इम वस्तु गुरुदेवने अपने ज्ञान बलद्वारा रजोहरण ग्रहणकर सकल कुटुम्बकी रक्षा की, व्यन्तर इस व्यवस्थाकों देखकर जग गया

एक वरुत विक्रमपुर (उज्जैन) में मरुकीका उपजव (हेजा) जोरशोरसे चल रहा था उस समय गुरुमहाराजका वहा पदार्पण हो गया आपने जैनियोंका रोग उपशान्त किया तब माहेश्वरियोने प्रार्थना की कि हे पूज्य गुरुवर्य ! हमारे पर जी कृपा कीजियेगा हम आपके श्रावक बन जावेंगे जो श्रावक नहोगा वह अपने पुत्र पुत्रियोंका चौथा भाग आपके चरण कमलोंमें जेट करेगा यह सुन गुरुदेवने उनका उपसर्गनिगारण किया इस समय बहुतसे माहेश्वरी श्रावक हुवे जो न हुवे, उन्होने अपने पुत्र पुत्रियोंकों चढ़ाया

धन्य है गुरुदयाल ! आपने पांचसौ पुत्र व सातसौ पुत्रियोंको दीक्षा देकर उनकी आत्माका कल्याण किया.

इसही तरह बहुतसे नगरोंमें नाहटा, राखेजा, जणशाली, नवलखर्, हागा, लूणिया वगैरा गोत्र स्थापन किये करीब एक लक्ष तीस हजार जन समाजकों प्रतिबोध देकर श्रद्धावन्त जैन श्रावक बनाये.

आपने हाथी शाहलूणियाकों मुलतान नगरमें महा मङ्गलकारी "अजि-
तशान्ति जिन स्तोत्र" अणहिल्लपुर पट्टणमें बोधरा गौत्रीय श्रावककों
"उवसग्गहरं स्तोत्र" प्रदान किया

आपने पञ्च नदी पर पच पीरोंकों साधन किये; आप पूज्यने संदेह दो-
हलाबली, तजयत्त, मयरीत्त, सिंघमवहर स्तोत्र वगैरा अनेक ग्रन्थकों रचना
कर संघ परमहदुपकार किया

आप परम पूज्य गुरुवर्य आपाढ शुक्ल एकादशी वीर सं १६८१ वि
सं. १२११ अजमेर नगरमें जनशन करके प्रथम सौधर्म देव लोकमें पधारे
आप पूज्यपाद वझे दादासाहेबके नामसे प्रख्यात हुवे ॥ ४४ ॥

तत्पश्चे मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरीश्वर हुवे-आप श्रीपाल गोत्रमें
शाह रासलदे पिता और देहद्वेषादेवी मातासे वीर सं. १६६७ वि. सं ११७७
के नाहपद शुक्ल अष्टमीकों अवतरित हुवे, अजमेर नगरमें वीर सं. १६७२
वि. सं ११७३ का फाल्गुन कृष्ण ए कों श्री जिनदत्तसूरीश्वरसे दीक्षा अर्पि-
कार की तथा इन्ही प्रतापशालीने आपको वीर सं १६८१ वि सं १२११
वैशाख शुक्ल ६ को आचार्य पदवी प्रदान की

एक समय आप श्री संघके आग्रहसे दिल्ली नगरमें पधारे वहा संघ पर
अनहद उपकार किया एक दिन आपने अपना आयुष्य निकट समझ कर

मदनपाल श्रावकको कहा, कि मेरे मस्तकमें मणि है वह अग्नी संस्कारके समय उड़ेगी वास्ते एक निर्मल दुग्धका कटोरा पास रखना उसमें आगिरेगी यह बात एक बुद्धिवान् योगीने ज्ञी सुन ली थी इस तरह फरमाकर आप महा-नुज्ञाव वीर सं० १६९३ वि० सं० १२२३ ज्ञाखण्ड कृष्ण १४ को अनशन कर देव लोक पधार गए

सर्व श्रावक लोग, पिलरर, गुरुमहाराजकी मण्डी माणक चोक तक ले आए और वहा विश्राम लिया बाद मण्डी वहासे न ऊठ सकी बहुतेरे प्रयत्न किये किन्तु सर्व निष्फल गए चमत्कार समस्त शहरमें फैल गया तब बाद-शाह ज्ञी वहा आया और हुकुम दिया कि यह देव वरुाही प्रज्ञावशाली है इनका स्थान यही पर होना चाहिये, सुनते ही सर्व श्रावकोंने, गुरुमहाराजकी देहका अग्नी संस्कार वही पर किया अब इस समय वह मणि फ-नाका करती हुई उठी, किन्तु वे सेठजी, तो-डग्धका कटोरा लाना भूल गए और वह योगी जिसनेकी सुन रखता था एक तर्फ डग्धका कटोरा लेकर खड़ा था उसके कटोरेमें धढाकसें आगिरी योगी लेकर अपने मकानपर चला गया बाद में सेठको विज्ञात हुवा उस समय सकल संघने उसें उपालम्न दिया अस्तु आप प्रज्ञावेशालीका अब तक दिल्लीके बीचो बाजार स्थान मौजूद है बादशाह बंगोराने बहु मान किया अब तक ज्ञी आप द्वितीय दादा साहवके नामसें मशहूर है ॥ ४५ ॥

१०६ तत्पश्चे श्री जिनपतिसूरि हुवे एक दिन आसोपुरमें श्रीमाली हाजी-शाहिने जिन मन्दिर बनवाया उसकी प्रतिष्ठा आपके हाथसे हुई प्रतिष्ठाके समय उस मणिके ग्रहण करनेवाले योगीने प्रतिमाजीको भीतर प्रवेश करवाते समय स्तम्भित कर दिये, आपने गुरुदेव श्री जिनचन्द्रसूरीश्वरको स्मरण किये गुरुमहाराजने प्रकट होकर उन्हें वासक्षेप प्रदान किया उससें जिनपति-सूरिने प्रातःकालमें प्रतिमाजी पर वह वासक्षेप प्रक्षेप किया कि प्रतिमाजी श्रीग्रही उठकर अपने आसनारूढ़ हो गये यह चमत्कार जान उस योगीने वह मणि वापिस समर्पण कर दी आदि अनेउ प्रज्ञावशाली कार्य किये ॥ ४६ ॥

तत्पट्टे श्री जिनेश्वरसूरि हुवे आपके वरतमें श्री जिनसेनसूरिसँ चार स० १७०१ वि० सं० १३३१ में लघु खरतर शाखा अचलित हुई यह तृतीय गद्य जेद हुवा ॥ ४७ ॥ तत्पट्टे श्री जिनप्रबोधसूरि ॥ ४८ ॥ तत्पट्टे श्री जिनचन्द्रसूरि हुवे आपने चार राजाओंको प्रतिबोध दिया तबसे आप कलिकाल केवली पदसे विभूषित हुवे इसही समयसे खरतर गद्य राजगद्यके नामसे प्रसिद्ध हुवा आप एक विशाल मजावशाली आचार्य थे ॥ ४९ ॥

तत्पट्टे प्रत्यक्ष प्रतापी श्री जिनकुशलसुरीश्वर हुवे मियाणे नगरम चाजेड गोत्रावतंसी मन्त्रि जीलहागर पिताके कुटुम्बमें जपतश्री माताके रत्न कुक्षीसे वीर स० १८०० वि० सं० १२३० में अवतरित हुवे वीर सं० १८१७ वि० सं० १६४७ में इस असार संसारको त्यागकर नवोद्धारक निर्मल चारित्र्य ग्रहण किया वीर सं० १८४७ वि० सं० १३७७ जेष्ठ कृष्ण ११ को शुभ मुहूर्तमें श्री राजेन्द्राचार्यजीसे आचार्य पद संभार की पाटण निवासी शाह तेजपालने तथा दहेली निवासी महतीयाणा गोत्रीये विजयसेन श्रावकने बहु उच्च खर्चकर नंदी महोत्सव किया

वीर स० १८५० वि० सं० १३८० में शाह तेजपाल श्रावकक सघमें पवित्र तीर्थेश्वर श्री सिद्धाचलजीकी जिपारत काके खरतर बीसी में सत्ताइस अहुल प्रमाण श्री आदिनाथ प्रतिमाकी प्रतिष्ठा की जापपत्तिनगरे भुवनपालका बनाया हुवा बहत्तर देव कुलसे मण्डित वीर चैत्य, जसलमेर नगरे जस भवलका निर्माण कराया हुवा चिन्तामणि पार्श्वनाथ, चैत्य, जालोर नगरे श्री पार्श्व जिन चैत्यादि अनेक जिन विवोंकी प्रतिष्ठा करवाई.

आगरा श्री संघके अत्यन्ताग्रहस श्री शत्रुंजय तीर्थराजकी यात्रा करके ज्ञानेश्वर कृष्ण ७ को पाटण नगरको पवित्र किया आप पूज्य मजावशालीके चारहसो मुनिराज तथा एकसौ पाँच साधियोंके संग-

दाय हुई, आप पूज्य गुरुवर्यने वित्तयपन्नादि सुशिष्योंको उपाध्याय पदवी प्रदान की इन्हीं विनयप्रज्ञोपाध्यायने अपने निर्घन भ्राता "सोना" के लिये सिद्धार्थय मन्त्र गणित गौतम रासकी रचनाकर उसका दरिद्रदूर किया, इस प्रकार इन पूज्य प्रज्ञावशाली कुशलसूरीश्वरने अपने विशाल ज्ञानद्वारा जिन शासनका अनुपम प्रज्ञावनाकर अनेक श्रावक बनाये

आप अपने पवित्र जीवनको सार्थककर देरावर नगरमें अष्ट दिवसका अनशन कर वीर सं० १८५६ वि० सं० १३८६ फाल्गुन कृष्ण अमावस्याके दिन स्वर्गवास पधार गए अपने देव गति जानेके पश्चात् पूर्णिमा सोमवार को प्रथम दर्शन दिये अतः यह दिवस विशेष आराधनीय है आप मता-पशाली तृतीय दादा साहबके नामसे मशहूर हुवे ॥ ५० ॥

तत्पट्टे श्री जिनपद्मसूरि ५१ तत्पट्टे श्री जिनलब्धसूरि ५२ तत्पट्टे श्री जिनचन्द्रसूरि ५३ तत्पट्टे श्री जिनोदयसूरि हुवे, आपके वक्तमें वीर सं० १८६२ वि० सं० १४३३ में वेगड़ खरतर शाखा प्रचलित हुई, यह चतुर्थ गच्छ जेद हुवा ५४ तत्पट्टे श्री जिनराजसूरि ५५ तत्पट्टे श्री जिनज्जसूरि आपके वक्त श्री जिनवर्यनसूरिसें पिप्पलिया खरतर शाखा जारी हुई, यह पञ्चम गच्छ जेद हुवा, ५६ तत्पट्टे श्री जिनज्जसूरि ५७ तत्पट्टे श्री जिनसमुद्गसूरि ५८ तत्पट्टे श्री जिनहससूरि आपके समय मरुस्थल देशमें आचार्य शान्तिसागरजीसे आचार्य खरतर शाखा प्रकट हुई, यह षष्ठम गच्छ जेद हुवा, ५९ तत्पट्टे श्री जिनमाणिक्यसूरि हुवे ॥ ६० ॥

तत्पट्टे अकबर प्रतिबोधक श्री जिनचन्द्रसूरीश्वर हुवे, मरुस्थल देशके बडलु ग्राममें रिहड गौत्रके अन्दर श्री वन्त पिताके कुलमें, सिरिया देवी माताने वीर सं० २०६५ वि० सं० १५६५ में जन्म दिया और वीर सं० २०७४ वि० सं० १६०४ में आपने दीक्षा ग्रहण की तथा वीर सं० २०८२ वि० सं० १६१२ ज्ञानपद शुक्ला नौमीको जेसलमेरमें आचार्य पदवीसे विभूषित हुवे

एक समयका प्रस्ताव है कि आप सवेग रङ्गसे रङ्गे हुवे जैन शासनकी अनेक विध प्रजावना कर रहे थे कि मन्त्री कर्मचन्दने बादशाहके रूबरू आपकी बड़ी जारी तारीफ की इससे पतशाह दर्शनार्थ प्राप्त हुवा आप गुरुवर्यने लाहौर नगरमें पधारकर अकबर बादशाहको "अहिंसा परमोधर्म" का प्रजावशाजी उपदेश दिया इस समय उसमें महदुपदेशका इतना असर पहुँचा कि महा पर्वाधिराज श्री पर्यूपण पर्वमें आठों ही दिन सकल देशमें कोई जो हिंसा न कर सके यह फरमान पत्र समर्पण किया तथा अति प्रसन्न होकर गुरुमहाराजको "युगप्रधान" पदसे भूषित किये

एक वरतका जिक्र है कि अकबर बादशाहने अपने पूज्य समज यह आर्जु किया कि उध चामारादि राज चिन्हे स्वीकार कीजियेगा चूके आप राजगुरु (हमारे गुरु) पदसे सुशोभित है-गुरुवर्यने प्रत्युत्तरमें फरमाया कि हम फकीर (साधु) हैं हमें ये चीजें ठतनी ही अशोभनीक है कि जैसे चक्रवर्तीके सुवर्ण कण्ठमें हड्डियोंकी माला, हम लिये बादशाह ! श्रमण जव कलङ्ककारी जवोजव सुखहारी इस परिग्रहमयी वस्तुओंका संसर्ग तर्क करना अधमाचार समझते हैं-आपके इन साहितिक वचनोंको सुनकर बादशाहको खामोसी अखत्यार करना पडी

बादशाहने श्री संघ सहित आपके शिष्य श्री जिनसिंहसूरिकों अखन्ताग्रह द्वारा दाक्षिण्यताके मुजालम डाल सर्व राज चिन्होसे अलङ्कृत कर दिये-आप श्रीको मजबूर होकर यह प्रवृत्ति अङ्गीकार करना पडी-इसवखत सर्व वस्तुएं श्रावक वर्गके ही स्वाधीन रहती थीं आपश्रीका इसमें लेश मात्र जी समर्ग नहीं था-बस यहाँसे श्री पूज्यएन (सपरिग्रह श्रमणलिङ्ग) प्रवृत्त हुवा—

तदनन्तर शनैः १ परिग्रहका संसर्ग बढ़ता गया कभी कम कभी ज़ियादे किन्तु हीन दशाका साम्राज्य विशाल विस्तीर्ण रूपमें फैल गया-आज हमें श्री पूज्य व यतियोंकी हालत (कतिपय महा जागोंको उठाकर) देख कर

शोक सागरमें बलता डूबना पड़ता है—हमारा यह कथन औचित्य पंक्तिसे वा-
हिर न होगा की ये लोग सदगृहस्थोंकी सभ्य श्रेणीसे अक्षरूप योजन दूर है
मैरे उन धर्म प्रेमियोंसे यह निवेदन है कि हृदयको शान्तकर पुनरपि अपना
उद्धार कीजियेगा ताके वीर शासनका अनुपम उद्योत हो और आपकी आ-
त्माओंका भी कल्याण हो—किम् विशेषम्.

आपने बादशाहके अत्यन्ताग्रहसे श्री जिनसिंहमूरिकों अपने हाथसे
आचार्य पदवी प्रदान की कर्मचन्द्र मन्त्रीने इस वक्त याचकोंको बहुत सादान
दिया आप गुरुदेवने पच नदीके पाँच पीरोंको तथा मानजङ्ग, यक्षखञ्ज और
क्षेत्रपालादि देवोंको साधन किये.

एक वक्त सलेमपतसाहने किसी एक खास कारणसे यह हुकूम दिया
कि मैरे समस्त देशोंमें सर्व दर्शनीयोंको स्त्रीधारक बना दो उस वक्त
बहुतसे यतिवर्य (सयमी मुनिराज) अपने शील रक्षार्थ इधर उधर जगने
लगे कह एक समुद्र पार हो गए—कई एक भूमि गृहमें उतर गए इत्यादि नाना
प्रकारके संकट सहन कर रहे थे कि इधर पर्योपकारी आप पूज्येश्वर मुनते
ही इस अहवालके शीघ्र ही अगरेमें पधारे और अनेक चमत्कार दिसजाकर
उस अनाचरिणी आज्ञाको खारिज करवाई और सब ब्रह्मचारी जी-
वोंको सुखी किये.

इस प्रकार जैनशासनकी अथाह प्रभावनाकर वीर सं० २१४०, वि० सं०
१६७० में स्वर्गवास पधारे इनके मरणमें वीर सं० २०९१-वि० सं० १६२१ में
ज्ञान हर्ष उपायायसे ज्ञान हर्षीय खरतर-शाखा प्रचलित हुई यह
सप्तम गच्छ जेद हुवा ॥ ६१ ॥

तत्पट्टे श्री जिनसिंहमूरि ६२ तत्पट्टे श्री जिनराजमूरि हुवे आपके वक्तमें
वीर सं० २१५६ वि० सं० १६८६ में आचार्य श्री जिनसागरमूरिसे लघु
आचर्याय खरतर-शाखा अष्टम गच्छ जेद हुवा.

तथैव आपके काल प्राप्तके एक वर्ष बाद घानो वीर स० २१७० वि० सं० १७०० में पण्डित तरङ्गविपणणोंसे रङ्गविजय खरतर शाखा प्रवृत्त हुई. यह नौमा गण जेद हुआ. इसही शाखामेंसे सारोपाध्यायसे श्री सारीय खरतर शाखा जिन हुई. यह दशम गण जेद हुआ. मथम तो वृहत् खरतर मूल गण और दश शाखाएं एवं सर्व ग्यारह जेद हुवे. ॥ ६३ ॥

तत्पट्टे श्री जिनरत्नसूरि ६४ तत्पट्टे श्री जिनचन्द्रसूरि ६५ तत्पट्टे श्री जिनसौख्यसूरि ६६ तत्पट्टे श्री जिनजक्तिसूरीश्वर हुवे आप गुरुवर्य वहेही प्रभावशाली थे अनेक विध जैन शासनका उद्योत किया अखीर वीरात् २१७४ वि० सं० १७०५ जेष्ठ शुक्र ४ को स्वर्गवास पधारे ॥ ६७ ॥

श्री जिनजक्तिसूरीश्वरके बुद्धि विचक्षण परम वैरागी पदधर दिव्य पूज्यपाद गणिवर्य श्रीमान् प्रीतिसागरजी महाराज साहव हुवे इस वृहत्खरतर गणमे आपसे परम वैराग्य रङ्गरङ्गित संवेग कल्प वृक्ष पुनरपि अपनी दिव्य कान्ति विस्तृत करता हुआ सकल शुद्धाचाररूपी लतासें विभूषित हुआ जिसका किञ्चित् निवृत्त पाठक प्रेमियोंके अन्निमुख करता हूँ:—

आप महानुभावके एक लघु गुरु भ्राता श्री लक्ष्मीलाल थे. आप एक बड़े ही सज्जन पुरुष थे आचार्य पदमें आपका नाम श्री जिनलालसूरि हुआ

श्री जिनजक्तिसूरीश्वरके काल प्राप्त पश्चात् यति महानुभावोंने यह सोचा कि इस वखत क्रिया बहुत शीथिल हो रही है इसलिये यदि गुरुवर्य श्रीमान् प्रीतिसागरजी महाराज साहवको तत्खतनशीन (पट्ट स्थापन) करेंगे तो क्रियाका पालन उष्कर हो जायगा चूके वे परम वैरागी त्यागी और उत्कृष्ट क्रियाको पालन करने वाले हैं अतः लघु भ्राता लक्ष्मीलालजीको

ही पट्टेधर बनाना ठीक है यह सोच आचार्य पदवर्क के समय अत्यंत प्रेमी यतियोने उन बहजागोंको एक कोटडीमें बंढकर कुलुफ़ (ताला) लगा दिया और लक्ष्मीलाजकी गद्दी पर स्थापन कर उनकी आणा (आज्ञा) प्रवृत्ता दी. यह विचित्र घटना देख श्रीमानने कोटडीमेंसे ही फरमाया कि यदि लक्ष्मीलाजकी गद्दीधर बनाया तो कोई हर्ज़ नहीं वह जी मेरा ही लघु नाई है इत्यादि कहनेसे उन्हे बाहिर निकाले उनका इस प्रकार तेज प्रताप था कि एक वार समस्तको लज्जा महाराणीके अधीन होना पड़ा अस्तु

वे पुण्येश्वर तो महान् दयालु थे आखिल संसारका हित करनेमें एक अ-नूठे कृपावतार थे आपने अपने लघु भ्राता श्री जिनलाजसूरिजीसे सम्पत्ति लेकर अनुमान इसही वीर सम्बत् २२७४ वि० सं० १८०४ में परम पवित्र तीर्थराज श्री सिद्धाचलजी पर सर्व त्यागकर पञ्च महाव्रत अवधारण किये और सकल समाज पर अनुपम उपकार किये.

आपने वैरागी, त्यागी परम संवेगीके पहिचानके लिये व कितनेक अन्य कारणोंसे कथ्ये चुनेमें वस्त्र रङ्गना प्रारंभ किया. पवित्र खरतर गडमें आप महानुभावसे कथ्याई वस्त्र प्रारंभ हुवे

हमने उपरोक्त विवरण जिस प्रकार परंपरासे सुना है वैसाही उद्धृत किया है कितनेक लोगोंका यह जी कथन है कि आप परम वैरागी योगी-श्वर श्री मान्प्रीतिसागरजी महाराज साहबानिष्कारण ही केवल अपनी वैराग्यावस्थामे रमण करनेके हेतु संवेगी श्रमण नामसे विभूषित हुवे तथा कथ्याई वस्त्र आपके प्रशिष्य श्रीमान् कृमाकट्याणजी महाराजसे प्रचलित हुवे है. हम ज़र्ही कह सकते कि दोनोमेंसे तृण क्या है अतः " तत्त्वं केवली गम्यम् " इस न्यायका अङ्गीकार करना ही समुचित है.

आप अद्वैत मुनि पुद्गवजन समाज पर अवरणीय। उपकारकर वीर सं० १३२१ वि० सं० १९५१ के माघ शुक्ल ८ को स्वर्गवास पधारे. वृहत्खरतर

गठमें पुनरपि परम सागावस्थाकों अवधारण करनेवाले आप प्रथम मुनि-
वर हुवे हैं तथा पद परपरानुसार अमृतवें पदधर हुवे ॥ १ ॥-॥ ६८ ॥

तत्पट्टे पर वैरागी वाचनाचार्य श्रीमान् अमृतधर्मजी महाराजसाहब हुवे
आप परम आत्मार्थी और जन्वजन प्रतिबोधमें एक अनुते महात्मा थे ॥१॥
॥ ६९ ॥ तत्पट्टे अद्वैत विद्या महा महोपाध्याय श्रीमान् कृष्ण
व्याणजी महाराजसाहब हुवे उनका यत्किञ्चित्स्वरूप इस प्रकार है:-

आप पूर्वमें जति* थे श्री जिनहर्षसूरिजीके समय अधिक शिथिलाचार
देख पर वैरागी संवेगी साधु हुवे आप श्री पेंतालीश आगमोंके पूर्ण
वेत्ता थे तथा अनेक प्रकरणादिके सुविद्ग थे तथैव सम्कृतके एक प्रखर
विद्यान थे आप महानुभाव श्री जिनहर्षसूरिजीके पाठक (विद्यागुरु)
थे अतः आप महा महोपाध्यायकी पदवीमे विज्ञापित थे

बहुतसे शारक श्राविका शिथिलाचारियोंके अनुरागी हो रहे थे उन्हे जैन
तत्त्वज्ञान बताकर शुद्ध धर्ममें संलग्न किये पूज्यपाद प्रीतिसागरजी मा.
सा. के बोये हुये बीजको इस कदर सीचन किया कि जो हमारी लेखनीसे
बाहिर है आपका अविर्णीय उपगार जैन समाजको सदैव स्मरणीय है .

आपमें सर्वसे विशिष्ट गुण यह ऊलकता था कि गुण जोहियोंको ठोकर
कर सकल जैन समाज आपको पूज्य दृष्टिसे अवलोकन करता था इतनाही
नही किन्तु उनके परमार्थी मधुर वचनोंको शिरोधार्यकर—अपनी आत्माका
कल्याण करता था .

आपने अनेक संस्कृत व आपाके ग्रन्थ बनाकर जन समाज पर अ-

* वर्तमान कालमें कियासे विहीन होकर केवल वेशकों धारण करनेवालेको
“जति” कहते हैं

वर्णीय उपकार किया आपश्रीके बनाये हुये जितने ग्रन्थ हमें उपलब्ध हुये हैं उनके नाम इस स्थल पर उद्धृतकर गुणानुरागियोंको आपके महत्त्वका परिचय दिलाते हैं:—

१ वारह पर्व सस्कृत २ आत्म प्रबोध सस्कृत ३ गुर्वाणली संस्कृत ४ साधु समाचारी जापा ५ अनेक शास्त्रोंसे उद्धृतकर महडपयोगी केमसो बोल जापा ६ वैराग्य व तत्त्वगर्भित अनेक स्तवन सजायादि जापा ७ चतुर्विंशति तीर्थ-रूरोके चैत्यवन्दन सस्कृत ८ गुरु महाराजोंके अष्टक सस्कृत ९ विधि विधान चर्चा जापा १० श्री पार्श्वनाथ स्तुति संस्कृत ११ श्री जिन चतुर्विंशति स्तुति संस्कृत १२ प्रश्नोत्तर सार्द्ध शतक संस्कृत इस प्रकार अनेक ग्रन्थोंकी रचनाकर अपनी अकथनीय उपकार बुद्धिका विशाल प्रभाव प्रदर्शित किया धन्य है ! गुस्दयाल आपके अपूर्व ज्ञानको पुनः १ धन्य है !

आप मात्र चित्रा प्रेमीही नहीं थे किन्तु एक प्रबल प्रत्यक्ष चमत्कारीजी महात्मा थे—मेरे प्यारे पाठकों देखिये आप पूज्यका चमत्कारीय अलौकिक दृश्य:—

(१) एक बल्लतका जिक्र है (जब कि आप जेसलमेरमें विराजमान थे) कि योधपुर महाराजा अपनी चतुरङ्गी सेना सजकर जेसलमेरको आन घेरा नगराभीश (जेसलमेरपति) गवलजी क्रोधित होकर रणभूमि पर जा बंसे परस्पर घोर युद्ध हुवा—हाथियोने विलन्द चीकारी शब्दोंसे युद्ध क्षेत्र गुजा दिया घोंसे दिन दिनाने लगे रयोका झकारा व ऊरनाट करने लगा योधा लोग जूजाबलसे एक दूसरे पर दृष्ट पसे तलवार, जाले और चरठियोंकी धना धनी चलते लगी बन्दूककी गोलिये धडाधर टूटने लगी तोपोंके गोलोकी अ-विरल बरसा होने लगी सेंकरो योधा पृथ्वीतल पर लोटपोट हो गये अर्थात् सर्व जह्दीके मुखमे प्रवेश हो गए

इस वस्थाको जान महारावलजीको बड़ा जारी पशोपेश हुवा, शीघ्र ही पूज्यपाद गुरुवर्यके चरणोंमें सादर वंदना नमस्कार कर सनम्र अपनी आफ-

तका किस्सा प्रार्थना रूपमें निर्मित किया और यह विजय करने लगे, कि स्वा-
मिन् ! इस समय लज्जा रखता आपके आ गीन है, यह सुन दयासागर श्रीमा-
नूने शीघ्रही एक नकारा मद्भवानेकी सूचना की राजाने तुरन्त ही- हाजिर
किया मन्त्र, तन्त्र, जन्डादिवेता महानुजावने तत्कालही उसनकारे
पर सर्वतो ज्द्र यन्त्र लिप्त दिया-गुरुमहाराजका पूर्ण विश्वासी राजा
तत्कालही सेना सजकर अपने गनीमों पर दृढ पडा नकारे पर धनाधन मके
पहने लगे युद्ध क्षेत्र गुजाररमें गूड ऊठा-शत्रुओंकी सकल सेना जाग गई
गुरुमहाराजके प्रजाविक यन्त्रसें रावलजीकी विजय हुई-इससें जिन शास-
नकी महती प्रजावना हुई और जेशलमेरका राजा दृढ जैन
धर्मी बन गया.

(२) एक दिन सजाके मध्यमें रावलजीने ज्योतिपीकों अपनी उमरका
निर्णय करनेको कहा-उसने उत्तरमें यह निवेदन किया कि आपकी केवल
सातही वर्ष शेष आयुष्य हे राजाने सविनय गुरुमहाराजसें निर्णय करने
के वास्ते विनती की-पूज्यपादने कृपा पूर्वक ज्योतिप सहायद्वारा व देवके साहयमें
रावलजीकी सत्तरह वर्षकी उमर बताई सज्जनों ! महा पुरुषोंके यवन कभी
खाली जाते है क्या ? ठीक सत्तरह वर्षमें राजा परलोकमें कूच कर गए इससें
यह प्रसङ्ग सिद्ध हे कि आप ज्योतिप ज्ञानके जी एक पूर्ण वेत्ता थे

आपके स्वर्गवास पधारनेके प्रश्नात् जी आपने एक आश्चर्यजनक चम-
त्कार दिखलाया:—

जब आप वीकानेरमें अपनी आयुष्य पूर्ण करे स्वर्गवास पगारे उसही
दिन आपके एक परम जक्त साम्प्रतिराम व्यासकों जेशलमेर और लौडवपुर
पहन महा तीर्थराज (लौडवपुर जेशलमेरसें दश, माइल है) धीचमे, दर्शन
दिये उनके आपुसमें कुछ वात्तालाप हुआ तदनन्तर यह व्यास एक दो दिन
बाद जेशलमेरमें आया तो आपके स्वर्गवासकी खबर सुनी उमने अपने दर्श-
नके हाल श्री सधके सामने जाहिर किये इस आश्चर्यभूत अहेवालको सुन
सकले सधकों विवेश होकर बलात् आनन्दभागरमें निमग्न होना पडा

महानुभावों! कहां तक निवेदन करूं मेरी-यह सामर्थ्य नहीं कि आपके सर्व चतकारोंका उल्लेख कर सकूं आप पूज्यने अपने अनेक विशाल भजाव-शोली कार्य किये हैं धन्य हो गुरुदयाल! आपका अनुठा जीवन प्रशंसनीय है—

आप कृपावतार श्री संघपर अविस्मरणीय उपकारकर वीर सं. १३४१ वि सं १८११ के पौष क्र० १४ के शुभ दिवसको इस जवसे प्रस्थानकर उच्च गतिको पधार गये ॥ ३ ॥ १० ॥

तत्पष्टे श्रीमान् धर्मानंदजी महाराज हुवे आप एक पूर्ण विद्वान् थे आपने आत्म ज्ञानके साथही साथ श्री संघपर अनहद उपकार किया: ॥४॥१॥

तत्पष्टे श्रीमान् राजसागरजी महाराज हुवे आप एक प्रचण्ड विद्वान् थे आपने अपने ज्ञान बलवारा मिथ्यात्व रद्धरद्धित ज्ञीपम पन्थकों त्याग कराकर सैकड़ों लोगोंको शुद्ध जैन धर्म अवधारण करवाया तथा अनेक मास मदिरादिमें आसक्त हुवे प्राणियोंको डर्व्यसनोसे मुक्त कराकर अपने निर्मल चरणकमलोंका शरण दिया आदि अनेक विध उपकारकर अपनी आत्माका कल्याण किया ॥ ५ ॥—॥ ११ ॥

तत्पष्टे असाधारण विद्वान् श्रीमान् ऋद्विसागरजी महाराजसाइब हुवे पाठकवरों! ये वेही पूज्य है कि जिन्होंने पवित्र तीर्थराज श्री आवूकी रक्षा की है अर्थात् वहाकी अनेक आशातनाओंको दूर करवाई है आपने ड्वार उपसर्गोंके प्रबल आक्रमण होने पर ज्ञी, अपने तीव्र मन्त्र ज्ञान-द्वारा विजयकर गवर्मेन्टसे ग्यारह नियम (Rules) प्रवृत्त कराए हैं यह जैन समाजसे त्रिपा नहीं है अर्थात् पत्रलिकमें रोशन है आपने इन नियमोंको विनयवश होकर अपने वृहदुरुजाई प्रीतिसागरजी या के नामसे जारी करवाए हैं

यह तो निसंदेह है कि कृतघ्नोंके सिवाय समस्त जैन समाज

इस अवर्णाय उपकारको हरगीज, नही भूल सकता. इतनाही नहीं, किन्तु गुणानुरागी लोग अत्र तक जी आपको पूज्य दृष्टिसे अवलोकन कर अपने मुक्त कण्ठसे प्रशंसा करते हैं

आप संस्कृतके पूर्ण विद्वान् थे मन्त्र जन्त्र और यन्त्रादिमें मैं तो एक आनेवाही अनुजवि महात्मा थे आपने बहुतसे जिन जुवनोंकी ऐसेश उत्तम सुहृत्तामें प्रतिष्ठा कराई है कि जिनकी दिनवदिन तरकी होती हुई दृष्टिगोचर हो रही है

आप श्री संघ पर अनुपम उपकारकर वीरात् १४११ विण सं १९५१ में देवलोक पधार गये ॥ ६ ॥-॥ ७३ ॥*

तत्पट्टे श्री खरतरगढ गगनमार्तएम् विशाल ज्ञानी गणाधीश्वर श्री म-
जैनाचार्य अविरोह स्मरणीय पूज्यपाद गुरुवर्य श्रीमान् सुखसागरजी
महाराजसाहब हुवे आप पेटालीस आगमोंके पूर्ण वेत्ता थे तथैव अ-
नेकानेक प्रकरणोंके सुविद् थे

* कई एक सम्य पुरुष गभीर आशयसे पृथक् होकर अवश्य इस प्रश्नमें जिज्ञासु
होगे कि अन्य कर्ता एक स्थान पर तो श्रीमान् राजसागरजी ऋजिसागरजी मा कों
“कर्मवश शिथिल होना पना” ऐसा लिखता है और इस स्थल पर बड़ीही पूज्य
दृष्टिसे पेश आता है यह विषवाद स्वीकृत श्रेणीमें क्योंकर शुमार किया जायगा-

महानुभावा ! उत्तरमें इननाही निवेदन है कि मैं हर दो पूज्योको सदैव पूज्य दृष्टिसे
ही अवलोकन करता हूँ मैंने “कर्म व शिथिल-होना पना इत्यादि” केवल इस ही
आशयको प्रकट करनेके हेतु लिखा है कि पूज्यपाद गुरुवर्य श्रीमान् सुखसागरजी मा
सा. कों पृथक् क्योंकर होना पडा तथा आपके नामसे सिंघाम्ना क्योंकर प्रसिद्ध
हुवा-आबू तीर्थराजादिके कारण यदि क्रियासे यत्किञ्चित् तटस्थ होना भी पडा ही तदपि
अनुचित श्रेणीसे अवश्य ही विमुक्त हैं पाठक प्रेमियोंको यदि इतने पर भी सतोष न होगा
तो द्वितीयात्रिमे परिवर्तन करनेमें प्रयत्नशील होनेका निवार करूंगा।

यने तथा आगेवान, गृहस्थोंने मिलकर समुदायका निर्वाह आप महानुजां-
वकों समर्पण किया आप श्रीने वीर सं १४१३ वि सं १९५७ जे. यु. १४
से समुदायका निर्वाह करना प्रारंभ किया

आपने इस पवित्र समुदायमें सर्वसे अधिकांश संस्कृतका-विशिष्ट
प्रचार किया, तथा शास्त्र पठन पाठनादि अनेक मुकायमि हौसियार किये
यह आपका अचरणीय उपकार सदैव स्मरणीय है

आप पैतालीश आगमोंके पूर्ण वेत्ता थे तथा आगमोंके मथन करनेमें
एक अनुभूते ही प्रयत्नशील पुरुष थे आपकी तपस्या पर इस कदर प्रबल
इच्छा थी कि जो हमारी लेखनीसे बाहिर है तदपि यत्किञ्चित् उल्लेख करते हैं

वीर सं १४१३ वि सं १९४३ मे अर्थात् प्रथम चातुर्मासके प्रारंभमें ही
योधपुर राज्यान्तरगत नागौर नगरमें ५ उपवास किये इसका पारणा करके
साथही साथ १५ उपवास किये तथा कार्तिकमें मासकर्मण कर अपने कमोकी
निर्जराकी-तथैव आपने अपने जीवनमें कई एक मासकर्मण, पद्मकर्मण, अष्टा
ईश, पाँच, चार, और तेले किये और उपवास तो बेशुमार किये होंगे

आपने वीर सं १४१३ वि सं १९४३ मे पवित्र तीर्थेश्वर श्री सिद्धा-
चलजीकी यात्रा कर अपने मानवजवकों कृतार्थ किया

आपका प्रथम चातुर्मास अर्थात् वीर सं १४१३ वि सं १९४३ का ना-
गौर हुवा ४३ का शिरोही ४४ का बीकानेर ४५ फलोदी ४६ का बीकानेर
४७ का पाली ४८ का नागौर ४९ का लोहावट ५० का कलोदी ५१ का लो-
हावट ५२-५३ का फलोदी ५४ का लोहावट ५५ फलोदी ५६ का लोहावट
५७ से ६५ तक फलोदी* ६६ का अन्तिम चातुर्मास लोहावट हुवा

आपके निशार्थमें मुनिराज तथा ६७ साध्वियोजी दीक्षित हुई आपने समु-

* वृद्धावस्थाके हेतु तथा शारीरिक व्यथाके कारण एकदम इतने चातुर्मास एक
स्थान पर हुवे हैं

दायका प्रशसनीय निर्वाह किया तथा अनेक जन्मात्माओं पर अनुपम उपकार किया

आप ९ वर्ष ३ माह ७ दिन धर्म राज्य कर जगत्प्रशसनीय पुत्र उपवासोका संग्रारा, अवधारण कर लोहावट नगरमें द्वितीय श्रावण शुक्र ६ वीर सं १४२६ वि० सं १९६६ में स्वर्गवास पधारे

आपने ५२ उपवासोंमें ४० तो तिविहार किये शेष १२ चाँदिविहार किये हैं चालीस उपवासों तक सैकड़ों लोगोकी सजामें सिहनाट रूप धर्म देशना दी उस वरतका महोत्सव दृश्य एक दर्शनीय ही था गुरुदयाल ! आप हमेंशां जयवन्ता वरतों।

श्रीमान् जगवान्सागरजी मा. सा. के विद्यमान पदवर विज्ञाते स्मरणीय शान्त मूर्ति पूज्यपाद गणाधिपति गुरुवर्य श्रीमान् त्रैलोक्यसागरजी महाराज साहब अपना अटल धर्म राज्य कर रहे हैं

आप श्रीमान् जेसलमेर राज्यान्तरगत गिरासर ग्राममें बृहद् औसर्वश पारख गौत्र (राठोड) विभूषित जीतमलजीके कुलमें कुणना देनाके रत्न रूक्षिमें शुभ मिति श्रावण शुक्र १४ वीर सं २३९८ वि० सं १९१८ में अवतरित हुवे आपका नाम चुन्नीलालजी था।

आपके गृहस्थाश्रमकी सहोदर बृहन्नगिनी पत्नीवाई (पुण्यश्रीजी) के सुहृद् प्रयत्नमें आवाल ब्रह्मचारी महत्पदमें विभूषित होते हुवे परम वैराग्य रत्नरत्नित होकर गुजरात देशान्तर गत पाटणमें वीर सं १४२२ वि० सं १९५२ प्रथम जेष्ठ शु० ७ को जवोच्चरक निर्मल चारित्र अवधारण कर अपने मानवजवकों कृतार्थ किया आप श्रीमान् गणनायक श्री जगवान्सागरजी मा. सा. के सुशिष्य हवे नाम त्रैलोक्यसागरजी

रखवा गया। आपकी बृहद्दीक्षा माघ शु. १३ वीरात् २४२५ वि० सं० १९५५ में फलोदी नगरमें हुई।

श्रीमान् उगनसागरजी मा. सा. ने अपने काल प्राप्त समय पूज्य पाद गुरुवर्यकी द्वितीय श्रावण शुक्ल ८ वीर स. १४३६ वि सं १९६६ को समुदायका स्वामी पद प्रदान किया अर्थात् इस शुभ दिनसे आप श्रीमान् गणाधिपतिके सुपदसे विभूषित हुवे उसही दिनसे आपने अपना धर्म साम्राज्य करना प्रारम्भ किया।

आपके शान्त साम्राज्य में, सनाका खुलना, सघका निकलना, नवीन नव पुरातन ग्रन्थोंका प्रकाशित होना इत्यादि अनेक कार्य प्रचलित हुवे जिनका सक्षिप्त विवरण इस स्थल पर उल्लेख कर पाठक प्रेमियोंके अजिमुल करता हूँ:—

जैन समाजमें एक अग्रेसरी श्रेष्ठिवर्य रायबहादुर केसरीसिंहजी वापना (पंचार) के अखन्ताग्रहसे वीर सं २४३९ वि सं १९६९ में आपने पाँच मुनि रत्नों सहित कोटा नगरमें चातुर्मास कर जैन शासनका अनुपम उद्योग किया आपकी पवित्र सेवामें पुण्यश्रीजी आदि १६ साध्वियोंजीने जी चातुर्मास किया था इसही चातुर्मासमें अपने शिष्य समुदायके प्रौढ प्रयत्नसे "श्री ज्ञानसुधारस धर्म सन्ना" खोली गई जिसके जरिये समुदायकी बहुतसी ज़ुदियें दूर कर उत्तम आचारोंका आन्दोलन किया अब तक जीये परोपकारिणी सन्ना बहुत कुछ काम कर रही है आशा है की गुरुदेवकी मुक्तपासे जिविष्यकालमें इस सन्नामें कई एक अनुपम गुणोंकी संप्राप्ति होगी।

वीर सं २४३९ वि० सं० १९६९ वैशाख कृष्णमें आपके 'व' आपकी शिष्य शिष्याओंके सदुपदेशसे सुप्रसिद्ध मालव देशमें पन्नाशाली तीर्थरा-

जकी जियारत (यात्रा) करनेके लिये डंग, गङ्गधर और सीतामहूके
तीन संघ निकलवाए गए तथैव आपके सदुपदेश-द्वारा विमलश्रीजीके
सुप्रयत्नसे वीर सं० १४४० वि० सं० १९७० में तीर्थराज श्री जेशलमे-
रका संघ निकलवाया गया

इसके अतिरिक्त चतुर्विध संघके साथ बडेही समारोहसे अनेक यात्राएं
की यथाः—मालव देशमें सेमलिया, विबहोर्, करोंदी बगेरा कोटाके स-
मीप दादावाडी यह स्थलमें, पालीके पास जाकगी-खीचन ये सर्व यात्राएं
आपके साथ हुई आपके आझानुयाई हर्यानदसागरादिके वीर सं० १४४०
वि० सं० १९७० के चातुर्मासमें बीकानेरके समीप नालदादाजी, जीनासर,
शिववाडी, उदासर, गङ्गासर बगेराकी यात्रा बडेही धूमधाममें हुई अखीर
सुजानगरकी प्रतिष्ठा व नवमी जैन श्वेताम्बर कॉनफरन्समें श-
रीक हुये पश्चात् फलोदी पार्श्वनाथकी यात्रा की तथैव सेमानंदसागरादिके
वीर सं० १४४३ वि० सं० १९७२ के चातुर्मासमें जयपुरके समीप सोंगानेर,
आपेर और स्टेशन पर मन्दिरकी यात्रा की महोत्सवके साथ सौजाग्य समाप्त
हुआ कहाँ तक लिखा जाय यात्राओंका ऊलाऊल ठाठपाठ व धूम
धाम अपार है.

आपके शासनमें अब तक इतने ग्रन्थ प्रकाशित हुवे व हो रहे हैं—
॥ नवीन ग्रन्थ ॥

नं.बर.	नाम ग्रन्थोंके.	रचयिता	प्रति
१	सप्त व्यसन निषेध प्रथमा वृत्ति	वीर पुत्र आनंदसागर	१०००
२	मोह जीत चरित्र संस्कृत	गुनिराज श्री. क्षेमसागरजी	५००
३	सप्त व्यसन निषेध द्वितीय वृत्ति	वीर पुत्र आनंदसागर	१५००
४	गुण स्थान दर्पण	श्रावकचर्य श्री. ललितजी जैन	१०००
५	*सप्त व्यसन निषेध तृतीया वृत्ति	वीर पुत्र आनंदसागर	१०००
६	सुख चरित्र	वीर पुत्र आनंदसागर	१०००

॥ प्राचीन ग्रन्थ ॥

१	वारह पर्व संस्कृत	महामहोपाध्याय—श्री समाकल्याणजी मा सा	१०००
२	जपति हुआ स्तोत्र त्रिपाठ	नवाङ्गीवृत्तिकारक—श्री अजयदेवसूरीश्वरादि	१०००
३	जिन स्तोत्र ज्ञानागार प्राकृत—संस्कृत	अनेकाचार्य	१०००

* सप्त व्यसन निषेधकी तीनों आवृत्तियोंको पृथक् २ नम्बरसे विभूषित की इसका यह प्रयोजन है कि एकसे दूसरीमें इसही प्रकार तीसरीमें व्यसनोको विस्तृत रूपेण प्रदर्शित किये हैं इत्यादि

इसके शिवाय "कर्म विचार" नामक यन्त्र जो कि. हेमानंदसागर ने जगवति सूत्रमेंसे उद्धृत किया है उसकी पाचसौ. कॉपी तथैव पञ्च प्रतिक्रमण सूत्रकी एक हजार और देवशीरार्ई प्रतिक्रमण सूत्रकी दो हजार कॉपीये उप रही हैं ये श्रीग्रही प्रकाशित होने वाली है

जुमला नव हजार ग्रन्थ तो प्रकाशित हो चुके हैं तथा मांढेतीन हजार उपनेवाले हैं एव सर्व ग्रन्थ साडेबार हजार आपके पवित्र शासनमें आजतक प्रकट हुवे ये सकल ग्रन्थ जगोर न्योठरावलही जेट दिये गये व दिये जाते हैं व दिये जायगे यह आपकी उदार वृत्तिका एक विशाल परिचय है

आप बहुतमें सूत्रोंके तथा अनेक प्रकरणादिके सुवेत्ता है आपको शा-
स्तोंकी सेकड़ों वाते कण्ठम्य स्मरण है आप पठन पठनादिके पूर्ण प्रेमी है या
यों कहियेगा कि आपका अर्धन रसिक है

आपके शासनमें साधु सा-त्री प्रदेही आनदसे निवास करते हैं और
शान्तता पूर्वक मंषम पालन करते हुवे अपनी आत्माका कल्याण कर रहे
तथा ज्ञव्यात्माओंका अनुग्रम उपकार करते हुवे उन्हे कृतकृत्य कर रहे है
आप श्रीपानका हमारे समुदायके सकल कृतज्ञ महानुभाव सतदाः धन्यवाद
देने हुवे अपने देवगुरुसे अहर्निश यह प्रार्थना करते है कि सुशिक्षारूपी अमी-
रसका पान करानेवाले एमे शान्तमूर्त्ति पूज्यपादगुरुवर्य विद्यमान जवमें हमारे
पर अटल शासन वर्त्तते रहो इतनाही नहीं किन्तु जज्ञोजवमें हमारे शरण-
भूत होवो सच्च है ? अर्धन सुखदाताकी सबही बॉछा करते हैं

आप महोदयका वीर सं० २४०० वि० सं० १९५२ अर्थात् प्रथम चा-
नुर्मास व द्वितीय चानुर्मास फलोदीमें हुवा ५४ का लोहावट देव का फलोदी
५६ लोहावट ५७ में लेकर ६२ तक फलोदी विराजे* ६४ का योधपुर ६५

* आपका इतने वर्ष एक स्थान पर विराननेका कारण यह था कि आपके पूज्यपाद
गुरुवर्य तथा महा तपस्वी श्रीमान् छगनसागरजी मा सा की वृद्धावस्था थी तथा आप
भी शरीरमें कुछ लाचार थे

का नागौर ६६ का लोहावट ६७ का फलोदी और ६८ का मालवदेश रत्नपुरी (रतलाम) में हुवा.

आप श्रीने परमदयाला कर इसही सम्बन्धके वैशाख शुक्ल ११ बुधवार वीरान् ३४३७ विक्रम स १९६८ तारीख १० मे सन् १९११ को लघु दीक्षा तथा आपाठ शु० २ बुधवार तारीख २८ जून सन् १९११ को बृहदीक्षा देकर मुझ अधमको अपने सुखदाता चरणकमलोंका शरण देकर पावन किया अर्थात् इस शुभ दिवशको ज्ञानोद्धारक दीक्षा प्रदान की-हे नाथ ! आपका यह अविर्णीय उपकार सदैव स्मरणीय है निरन्तर आपही कृपालुका शरण हो यही हार्दिक वॉछा है-६९ का कोटा ७०-७१ फलोदी ७२ का चातुर्मास पाळी हुवा

ये आप परमोपकारीने कोटेके चातुर्मास पश्चात् लोहावट नगरमें संवत् १९७० के वैशाख मासमें स्वर्गस्थ पूज्यपाद ग्हा तपस्वी श्री उगनसागरजी मा० सा० के चरण संस्थापन करवाए .

इसही वरुत्त आपने श्री उगनसागर जैन पाठशाला खुलवानेका अनुपम उपदेश किया-फल बंधिकाके दोनो चातुर्मास करनेके पश्चात् जब आप वापिस लोहावट पधारे उम समय पाठशालाका कार्य प्रचलित करवाया आप पूज्य गुरुवर्यका यह परमोपकार चिर स्मरणीय है

आप कृपावतारका गत चातुर्मास समय अपने ६ मुनि रत्नोंके मरु स्थलके मृगसिद्ध शहर विक्रमपुर (विकानेर) में हुवा

आप यहोदयके पवित्र शामनमें आजतक ४ मुनिराज ५३ साध्वियोंजी सुदीक्षित हुई

अखिरमें यही प्रार्थना करता हूँ कि आपका धर्म साम्राज्य चिरकाल अटल प्रवर्त्तता रहे हे स्थाभिन् ! आपका पवित्र नाम सदैव जयन्ता वर्त्तों .
॥ ९ ॥ ७६ ॥

पाठकवरों ! अब मैं आपके पवित्र शासनमें रहे हुवे कतिपय अग्रेसरी मुनिराजों व साध्वियोंकी परिचय दिलाता हूँ

श्रीमान् हरिसागरजी महाराज तथा केमसागरजी महाराज एक अग्रेसरी मुनिराज है.

आप हर दो मुनिराज प्राकृत, संस्कृत, देवनागरी और गुजराती बगेरा जापाओं (Languages) से परिचित है अर्थात् कितनेक मून आपके अवलोकन किये हुवे है तथैव व्याकरण, काव्य, कोष बगेराके वेत्ता है आपमें लेख लिखनेकी वा ग्रन्थ रचनेकी जी सामर्थ्य है. यद्यपि आप विद्यार्थी-जीवन (student life) में निवास कर रहे हैं तदपि यथा समय शासनकी जी सेवा वजाते रहतेहै आप श्रीमानोंका मुझपरबड़ाही धर्म प्रेम है यहाँ तक कि मैं आपसे दीक्षा पर्यायमे लघु जी हूँ तदपि आपमुझे हमझोलीका ही समझ उच्चम व्यवहार रखते हैं यह आपके वरूपनका एक विशाल परिचय है. मैं यही श्रुता हूँ की आप लोग हृषेसा मुझ पर महरवान रहे

वर्तमानमें सबसे बड़ी साध्वीजी लक्ष्मीश्रीजी है यह महानुज्ञावा बड़ी ही शान्तमूर्ति हैं तथा पठन पाठनादि विषयोंमे पूर्ण निपुण है एवं अपनी आर्या वर्गकों हृदयसे लगाकर बड़े ही प्रेम पूर्वक पालन करतीं हैं इनकी प्रशिष्या पुण्यश्रीजी एक विशाल पुण्यात्मा है तथा शिष्या सिहश्रीजी एक प्रबल धर्मात्मा हुई है.*

* सिहश्रीजी यद्यपि इस वक्त विद्यमान नहीं है तदपि पुण्यश्रीजी व इनका युगल सम्बन्ध होनेसे इनका भी उल्लेख कर दिया गया है —

प्रशिष्याका नाम प्रथम लिखकर पश्चात् शिष्याका लिखा गया इस्मे हमारे कतिपय पाठकवरोंको अवश्य यह प्रथमय उमङ्ग लहे-उल्लेगी वि ग्रन्थकर्त्ताने किसआश

का नागौर ६६ का लोहावट ६७ का फलोदी और ६८ का मालवदेश रत
पुरी (रतलाम) में हुवा

आप श्रीने परमदयाला कर इसही सम्बत्के वैशाख शुक्ल ११ बुधवार
वीरात् ३४३७ विक्रम स १९६८ तारीख १० मे सन् १९११ को लघु दी,
तथा आपाढ शु० २ बुधवार तारीख २८ जून सन् १९११ को वृहदी
देकर मुझ अधमकों अपने सुखदाता चरणकमलोंका शरण देकर पावन कि
अर्थात् इस गुन दिवशकों ज्ञवोद्धारक दीक्षा मदान की हे नाथ ! आप
यह अवर्णनीय उपकार सदैव स्मरणीय है निरन्तर आपही कृपालुका शरण
हो यही हार्दिक वॉत्ता है-६९ का कोटा ७०-७१ फलोदी ७२ का चा
र्मास पाली हुवा

ये आप परमोपकारीने कोटेके चातुर्मास पश्चात् लोहावट नगरमें संवत्
१९७० के वैशाख मासमें स्वर्गस्थ पूज्यपाद महा तपस्वी श्री उगनसागर
शाठ सा० के चरण संस्थापन करवाए

इसही वरुत्त आपने श्री उगनसागर जैन-पाठशाला खुलवानेका अ
पम उपदेश किया-फल वार्द्धिकाके दोनो चातुर्मास करनेके पश्चात् जब आ
वापिस लोहावट पधारे उम समय पाठशालाका कार्य प्रचलित करवाय
आप पूज्य गुरुवर्यका यह परमोपकार चिर स्मरणीय है

आप कृपावतारका गत चातुर्मास समय अपने ६ मुनि रत्नोंके म
स्थलके मृमसिद्ध शहर विक्रमपुर (विकानेर) में हुवा

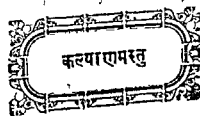
आप यहोदयके पवित्र शामनमें आजतक ४ मुनिराज ५३ सावित्रियों
सुदीक्षित हुई.

अखिरमें यही प्रार्थना करता हूँ कि आपका धर्म साम्राज्य चिरकाल
अटल प्रवर्धता रहे हे स्थापित् ! आपका पवित्र नाम सदैव जययन्ता वत्
॥ ११ ॥ ७६ ॥

जप योगादि सकल सिद्धियें समाप्त होती है इतनाही नहीं किन्तु पूज्यपाद गुरुवर्यके गुण गानेसे अनादिसंजखड़े हुवे पापकर्म तत्काल विध्वंस हो जाते हैं जिससे दिव्य शास्वत सुखमें रमण करते है अर्थात् अनेक सुखोंमें झिलानेवाले मोक्षपदकों सं प्राप्त करते है—देखिये किसी अनुजवि महात्माका कथन है:—

(सवैया)

ज्ञान घटे जड़ मूढकि सङ्गत
 ध्यान घटे विन धीरज आए ।
 मान घटे जवही कहु माझ हूं
 चाह घटे नितके घर जाए ॥
 प्रीति घटे जुं कगोर वे बोल हूं
 रीति घटे मुँह नीच लगाए ।
 बुद्धमसे दारिद्र घटे सब
 पाप कटे गुरुके गुण गाए ॥१॥



प्यारे पाठकवरों ! अब मैं ग्रन्थकी पूर्णाहुतीमें कतिपय दोहरोंकी रचना कर ग्रन्थकों सम्पूर्णा करता हूँ

॥ पुण्यश्रीजी अनेक सूत्र सिद्धान्तोंको अवलोकन की हुई है संकटों बोल चाल कण्ठस्थ है पठन पाठनमें इनकी पूर्ण दिलचस्पी है तपस्याकी एक अद्भुत प्रेमणी है आप महानुभावाने अपनी आत्माका कल्याण करते हुवे ज्ञव्य जनो पर अनुपम उपकार किया यहातक कि जनसमुदाय अपने मुक्त कण्ठसे इन श्रीकी प्रशंसा करता है.

सिद्धश्रीजी कइएक सूत्र सिद्धान्तोंकी वेत्ता थी बहुतसे बोलचाल दिव्य याददास्त थे पठन पाठनकी दिली प्रेमणी थी अपनी गुरुवर्याकी सेवामें अनुपम दिलचस्वीको अवधारण करनेवाली थी-आप महानुभावाने प्रशंसनीय उपकारके साथही साथ अपनी आत्माका कल्याण किया.

पाठकवरों! आप हर दो साध्वियोंजी पर पूज्यपाद चरित्र नायकों असीम उपकार है इसही लिये ये ये दोनो सुयोग्यताको संभास हुई है

इनहर दो साध्वियोंकी निश्चिन्ता नहीं हुई, आभेवान् साध्वियोंजी चारों ओर जैन शासनका उद्योत करती हुई अपने परमोपकारी गुरु महाराजका पवित्र नाम दे दिव्य कर रही है इनमे कइएक सूत्र सिद्धान्त, मकर-ण, दि व्याकरण, काव्य, कोप न्यायादि व अनेक बोलचालोंकी वेत्ताएं है कइएक बाल शिष्याएं पृथक् २ विषयोंका अभ्यास कर रही है आशा है कि वे शीघ्र ही उच्च स्थितियों पहुँचेंगी

वाचक वृन्दों! जिस कदर मुझसे बना सका परमोपकारी गुरु महाराजकी पवित्र सेवा बजाकर अपने मानवजन्मको सफल किया. आप पाठक प्रेमियोंको यह जली व प्रकार सुविज्ञात होगा कि गुरु महाराजकी सेवा एक ऐसी उत्तम पदार्थ है कि जिससे ज्ञान, ध्यान, तप, यसे लिखा है प्यारे मुमुक्षुओं! इस्मे इतनी ही समाधानी 'सतोपप्रव' होगी कि श्रमण मार्गमे चरित्र पर्यायसे बटा छोटा ममजा जाता है नतु सन्तान परंपरासे अत प्रशिष्याका नाम प्रथम उल्लेख किया है चुके वे टीका पर्यायमे नहीं है —

॥ श्री वीतरागेभ्यो नमः ॥

॥ श्रीपत् सुखसागर सद्गुरुभ्यो नमः ॥

(मुनिराज श्री माणिक्य मुनिजी कृत)

॥ गुरुगुणाष्टकम् ॥

संजातः सरसापुरे सुवदनः कान्तारतौनोस्तो
पुण्यौघः पितरंवरं मनसुखं लब्ध्वा सुसेवा कृतः ॥

यः श्राद्धौघ्य विज्ञापणः शुभ्रमतिर्गोत्रं वरंदूगहं
संप्राप्तः सुखनागरः सुजननी जेतीमनोञ्जीष्टदः ॥१॥

लब्धान्यायधनं पुराजयपुरे संतोषवृत्तिधृतो
बुध्वावैवरराजसागरमुनेर्वोधात् तदा दीक्षितः ॥

पूज्योयस्य वरछिंसागर गुरुः संसारपङ्कोद्धृतो
धन्यास्ते गुरवः सदैवमुनयः किन्तु स्पृहोञ्छेदकाः ॥२॥

प्राप्येत्पुण्यनिदान सुबोधनिलयंतीर्थेश वाक्यामृतम्
लब्ध्वा तीर्थपतेर्वचो गुरुमुखात्संसार छिःखौघहृद् ।

वैराग्यनिजचित्तसौख्यजनकं मन्येन्नकिंयः कृति
त्रांत्वाऽन्नव्यविसार छिःखनिकरं संसारचक्रंजनः ॥३॥

किंश्रेयज्ञविनां सदैवहितदं बुध्याजनो मृश्यति
सम्यक्त्वं सुगतिप्रदं कथन्नवृणुतेज्ञानं द्वितीयं तथा ॥

(दोहरे)

घट घट अन्तरमें वशे । सुखसागर गुरुराय ॥
 चरणकमल प्रतिदिन नसु । झुक झुक शीश नमाय ॥ १ ॥
 तस्य शिष्य गुण शोभता । जगवान् गुरु सुखकार ॥
 तस पटधर जग दीपता । त्रैलोक्य गुरु आधार ॥ २ ॥
 इनके अतुल पसायसैं । ग्रन्थ रचा सुविचार ॥
 सुख चरित्र सुख देत है । मोक्ष मार्ग दातार ॥ ३ ॥
 गुरु सेवामे लीन हो । जो कुछ किया विचार ॥
 सफल हुई मन कामना । जगमें जयजयकार ॥ ४ ॥
 चौबीस्ते वाया लिशे । चैत्र पूर्णिमा सार ॥
 पूर्ण किया ये ग्रन्थ हम । वीकानेर मजार ॥ ५ ॥
 सगुरु गुण गाया हमें । सकल जीव हितकार ॥
 दासानंद इम वीनवे । कृपा करी सुज तार ॥ ६ ॥
 झूल झूक यदि होय तो । शुध कर लीजो दह ॥
 हांस न करेजो चतुर जन स्वल्प बुद्धि हम लह ॥ ७ ॥

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

सर्व मङ्गल माङ्गल्यं । सर्व कल्याण कारणम् ॥
 प्रधानं सर्व धर्माणां । जैनं जयति शासनम् ॥ १ ॥



॥ श्री वीतरागेभ्यो नमः ॥

॥ श्रीमत् सुखसागर सद्गुरुभ्यो नमः ॥

(मुनिराज श्री माणिक्य मुनिजी कृत-)

॥ गुरुगुणाष्टकम् ॥

संजातः सरसापुरे सुवदनः कान्तारतोनोरतो
पुण्यौघः पितरंवरं मनसुखं लब्ध्वा सुसेवा कृतः ॥

यः श्राद्धैश्च विज्ञापणः शुभ्रमतिर्गोत्रं वरंदूगहं
संप्राप्तः सुखनागर. सुजननी जेतीमनोज्ञीष्टदः ॥१॥

लब्ध्वान्यायधनं पुराजयपुरे सतोपवृत्तिधृतो
बुध्वावैवराजसागरमुनेर्वोधात् तदा दीक्षितः ॥

पूज्योयस्य वरर्षितागर गुरुः संसारपङ्कोद्धृतो
धन्यास्ते गुरव. सदैवमुनयः किन्तु स्पृहोञ्चेदकाः ॥२॥

प्राप्येत्पुण्यनिदान सुबोधनिलयंतीर्थेश वाक्यामृतम्
लब्ध्वा तीर्थपतेर्वचो गुरुमुखात्संसारं दुःखौघहृद् ।

वैराग्यनिजचित्तसौख्यजनकं मन्येन्नकिंयः कृतिः
ब्रात्वाऽऽन्यविसारं दुःखनिकरं संसारचक्रजनः ॥३॥

किंश्रेयंज्ञविनां सदैवहितदं बुद्ध्याजनो मृश्यति
सम्यक्त्वं सुगतिप्रदं कथन्नवृणुतेज्ञानं द्वितीयं तथा ॥

येनात्रैव हिताहितं शुचिमतिर्विज्ञायहेयाश्रवम्
त्यक्त्वासंवरशुद्ध रूपममलं बुद्धोऽश्रयत्तद्गुरुः ॥ ४ ॥

साधुश्रेष्ठ गुणौघधारकः मुनिर्मोक्षार्थं दीक्षारतो
ज्व्यानांहितचिन्तकः शिवरुचिर्दृष्ट्याच पीयूषदः ॥

जित्वाकर्म समूहमूलजनकं कामंनृणांभ्रान्तिदम्
लीनोवीरविज्ञौ गुरौचशमदध्येयोनकिंप्राणिभिः ॥५॥

तीर्थोद्योतकरो गुणाधिनिलयो शुद्धात्मरूपंश्रितः
पंचाचारतः सदैवविरतौ चित्तंचचक्रे स्थिरम् ॥

पश्चात्कर्मविनाशकं शुचितपस्तद्ववाऽज्ञवन्निर्मलः
स्मर्तव्यः श्रमणैःसुखाज्जिरुचिज्जिः श्राद्धैस्तथाकिन्नसः ॥६॥

धृत्वायत्सुगुरो सुपादममलं उःखार्णवेतारकम् ।
सौख्यार्थं लज्जतेस्मयत्सशमदः पूज्योऽज्ञवत्सर्वदा ॥

पश्चाद्देविनयितथैव शिवदंसाधुं निरीदंश्रितः
यस्मात्शान्तं सुदान्तशान्तिजनकः साधुजनैःसंस्तुतः ॥७॥

जंतूनांहितकारणान्मुनिगुणान् श्रुत्वामयाग्रथिता
ज्व्याना प्रमुदेजनाः कथयत्स्युः किंनतेशान्तिदाः ॥

यद्वायेसुखसागरान् मुनिवरान् मुक्त्यर्थंज्ञानाश्रितः
स्तेपां वैखलुमोदकं सुरचितं साधुष्टकं सौख्यदम् ॥८॥

मोक्षायमान्योऽज्ञविज्जिर्गुरुर्वै । हत्वाचकर्मारिचि मूंचनूनम् ॥
नत्वाजिनेशं सुगुरुंचहर्षं । शैवायमाणिक्य मुनिर्वज्ञापे ॥९॥

(श्रीमान् केमसागरजी महाराज कृतः)

॥ सद्गुरुगुणाष्टकम् ॥

ज्ञजामिपूज्यञ्च नमोमि नित्यम्
वक्ष्यामि ज्ञक्त्याप्रणतान्तरात्मा ॥
यथाज्ञिधानं किलसजुणीय
तस्यस्वरूपं शुभ्रज्ञावज्ञाव्यम् ॥१॥

पिताकुलीनश्च मनः सुखाख्यः
सुशीलधत्री जननीहिजेती ॥
श्राद्धौश्यवन्द्यः सुखलाल संज्ञः
ग्रामः प्रसिद्धः सरसेतिनाम्ना ॥२॥

आ ब्रह्मचारी जिन धर्मरागी
सम्यक्तव धारी विरति प्रज्ञावी ॥
संत्यज्य ससार-मसार-मृदि-
रत्नाकरारख्यस्य गुरोश्च पाश्वर्ति ॥३॥

चारित्र-मादायसदा विहारी
विनातिचारं यति धर्मधारी
श्रीमाञ्जिताक्षो गुणभूतपोतम्
संसारपाराय परदधार ॥ ४ ॥

सुबुद्धि सङ्गी कुमति प्रणाशी
 खलप्रबोधी शुभ्र मार्गदर्शी
 सार्थाणि सूत्राणि पपाठ धीरः
 गजेन्द्र तुल्यो वचनेषु वीरः ॥ ५ ॥

रराज नित्यं करुणैक पात्रम्
 जीवोपकारी सुखसागरारुधः
 सत्यार्थवक्त्या सुजनाञ्जिनन्धः
 साधुप्रज्ञावोज्झितमोहमायः ॥ ६ ॥

अन्तारिपून्वाह्य परिग्रहागी-
 न्त्यागी निरागी न्नविशर्मकारी-
 जगत्प्रसिद्धो बहु मान धाम
 एन्निर्गुणैः सत्यथमाजगाम ॥ ७ ॥

त्रैलोक्यसिन्धो ! हरित्तामुपेत !
 आनन्दकारी शुभ्रज्ञावन्नक्तिम्
 कुर्वन्तिलोका नवतत्वसिद्धिम्
 तेवद्ध्रजावैदुत-माप्नुवन्ति ॥ ८ ॥

बुद्धन्ती वीक्ष्यामू-मतिशुभ्र गुणाचार तरणीम् ॥
 गणाधीश स्वामिन् ! युगपदवदध्रे न्नवजले ॥
 कथन्नोपास्यामेतव शुभ्रगुणाः मङ्गलकरा
 गुरोः पूर्णाव्वेचरणे युगले हेमनमनम् ॥ ९ ॥

मुनि हेमसागर.

मु वीकानेर.

(वीर पुत्र श्रीमान् आनन्दसागरजी महाराज कृत.)

॥ सहस्रगुणाष्टकम् ॥

(अनुष्टुप छन्दः)

यथाप्राणानराधारा—स्तथैव सुखसागरः ॥

नित्यं नमामि नाथत्वां । त्वमेव शरणं मम ॥ १ ॥

चखान डष्ट कर्माणि । दिव्यज्ञान दिवाकर ॥

चारित्र रत्नज्जण्डार । दर्शनं विमलं कृतम् ॥ २ ॥

दानशील तपोज्ञाव । अष्टमातृ परायणः ॥

आ बाल ब्रह्मचारी च । ज्ञाविता ज्ञावना सदा ॥३॥

कपायमद निद्रादि । पञ्चेन्द्रियाणि शेषतः ॥

जितानि हास्यजिन्नूनं । वैरिणी विकथा जिता ॥४॥

निर्जितौ काममोहौ च । रागद्वेष विवर्जित ॥ ५ ॥

धौतं सकल मिथ्यात्वं । सम्यक्तव रागरङ्कित ॥ ५ ॥

नयनिक्षेप संवेत्ता । गुणस्थानं विशेषतः ॥

विज्ञानासि गुणग्राहिन् । स्याद्वादञ्च महारसम् ॥ ६ ॥

त्वमेव प्राणकाधारः । त्वमेव हितकारकः ॥

त्वमेव सुखसौन्दर्यः । त्वमेव ज्वतारकः ॥ ७ ॥

पवित्रनाम जापेन । ज्ञानादि सकलं फलं ॥

लज्जन्ते सर्व धीमन्तः । नैवात्रकोपि संशयः ॥ ८ ॥

त्रैलोक्यसिन्धोर्जवतापहर्तु-

गुरोः प्रसाद प्रच्युताङ्कितान्तः ॥

तस्यैवसानन्द सुखाम्बुराशोः ।

पादौ सदानन्दरसेन नौमि ॥ ए ॥

॥ शुद्धम् ॥

ANANDSAGAR

॥ ॐ ॥

(श्रीमान् हरिसागरजी महाराज कृत)

॥ गुरुवर्य प्रशंसा ॥

॥ शिखरणी उद ॥

सुः- सुधारसको पीते शुद्ध ज्ञाव हृदय धरके

खः- खयोपशम श्रेणी ध्यान धरते सुखद होके

साः- सामर्थ्य ररकते ये कर्म अरि को नष्ट करके

गः- गम्यागम्य वस्तु मनन करते हर्ष धरके ॥१॥

रः- रटन करते ये मुक्तिपुरीका अहनिश ही

जीः- जीवोको वचाते ये अज्ञय देके आप खुद ही

महाः- महा क्रोधादि रागद्वेषको दूर करते

राजः- राज पुंजधारी चरण आके नमन करते ॥२॥

॥ दोहरा ॥

सुखसागर मुनिराजके चरण करूं प्रणाम ॥

गुण गावुं तिनके सदा अक्षर २ नाम ॥ १ ॥

सु:- सुगुरु गुण है अति सदा । सुखसंपत्ति दातार ॥

सुज्ञ मारगकों धारते । सुमती यश जंडार ॥ १ ॥

ख:- खरतर गठकों धारते । खसम अती विस्तार ॥

खप करते थे मोक्षकी । खणते कर्म विकार ॥ २ ॥

सा:- साधु धर्मको पालते । साधे तप विधि वार ॥

सावधान मनको करि । सागर तरे संसार ॥ ४ ॥

ग:- गहिरे सकल समुझे । गमन करे जव पार ॥

गमनागमन निवारके । गहे मुक्ति दरवार ॥ ५ ॥

र:- रमण करे निज ज्ञावमें । रहे सदा एकांत ॥

रम्य वस्तु विचारते । रत्नत्रयी सुख शांत ॥ ६ ॥

जी:- जीते मन वच कायकों । जीव दया धरनार ॥

जीव तत्वको धारते । जीवन प्राणाधार ॥ ७ ॥

म:- ममताको मारे गुरु । मनकों वश करनार ॥

मगन जये शुद्ध ध्यानमें । मन वांछित देनार ॥ ८ ॥

हा:- हारे तिनसे कर्म हैं । हार गये सबी डुष्ट ॥
हाम धरी गुरु वंदीये । हाथ जोरु धर मिष्ट ॥९॥

श:- राखे षट् काया प्रति । रागद्वेष करी दूर ॥
राचे नहीं मोह राजसें । राख सदा मुज सूर ॥१०॥

ज:- जन्म मरणको मेटते । जराकों दूर निवार ॥
जग मांही दीपे सदा । जयजय करुणा धार ॥११॥

उन्नीसे सीतरमें माघ मास गुरुवार ॥
कृष्ण पक्ष दिन चौथको फलवर्द्धि नगर मझार ॥१२॥

यह गुण गाया है सही तुल्य मति अनुसार ॥
हरिको शरणे राखिये दीजिये दरिद्राण सार ॥१३॥

मुनि हरिसागर.

मु बीकानेर.

॥ ॐ ॥

॥ श्री बीतरामेभ्यो नमः ॥

॥ श्रीमत् सुखसागर सद्गुरुभ्योनमः ॥

(मुनिवर्य श्रीमान् हरिसागरजी महाराज तथा वीर

पुत्र आनंदसागरजी महाराजादि कृत.)

॥ सद्गुरु गढ़ली संग्रह ॥

कुमा कल्याण गुरु वंदो मोरे प्यारे ॥

वंदत हो आनंदो मोरे प्यारे ॥ देक ॥

जव्य जीव उपकारके हेतु । दिव्य चारित्र तुमारो ॥
निर्मल कीनो दर्शन तुम गुरु । ज्ञान तणो जंमारो ॥ मोरे० ॥ कृमा० ॥ १ ॥

वाल ब्रह्मचारी गुरु शोत्रे । महिमा अपरंपारो ॥
यति धर्म करी दीपता गुरुवर । देशना अमृत धारो ॥ मोरे० ॥ कृमा० ॥ २ ॥

सायर सम गज्जीर गुरुवर । रवि सम तेज प्रतापो ॥
शशि समान है शौम्यता गुरुकी मणि समतुम गुरु दीपो ॥ मोरे० ॥ कृमा० ॥ ३ ॥

अष्टापद सम सूरवीर गुरु । डुर्धर कर्म हटावो ॥
आतम ध्यानमे मग्न होयके । मोक्ष नगरको पावो ॥ मोरे० ॥ कृमा० ॥ ४ ॥

वीकानेरमें आप विराजो । दर्शन कर झुलसायो ॥
दिलसा हर्ष न मावे गुरुवर । आनंद संघमा छायो ॥ मोरे० ॥ कृमा० ॥ ५ ॥

वीर चौबीस्से बायालिस माही । श्रावण मास सुहायो ॥
कृष्ण बीज गुरुवार सुहावे । हरप २ गुण मायो ॥ मोरे० ॥ कृमा० ॥ ६ ॥

गुरु सम अवर न दूजो जगमें । चरणोंमे शीस नमायो ॥
दास आनद आनदमें जीले ॥ मन वाञ्छित फल पायो ॥ मोरे० ॥ कृमा० ॥ ७ ॥

॥ ॐ ॥

सुखसागर गुरु बंदीये । शुज जाव धरीने ॥ हाहारे शुज जाव धरीने ॥
सुमती गुप्तीकों पालते । बहु हर्ष धरीने ॥ हाहारे बहु हर्ष धरीने ॥ १ ॥

पंच महाप्रत वारिया । पाले पट्ट काया ॥ हाहारे पाले पट्ट काया ॥
त्रीहा दोष निवारता । सहुको मन जाया ॥ हाहारे सहुको मन जाया ॥ २ ॥

जव्य जीव उपदेश दे । शुज पय बताया ॥ हाहारे शुज पय बताया ॥
तारे कोई नरनारको । ज्ञानी गुरुराया ॥ हाहारे ज्ञानी गुरुराया ॥ ३ ॥

खरतर गठमें दीपता । गुरु गुणका दरिया ॥ हाहारे गुरु गुणका दरिया ॥
संयम सतर प्रकारसे । शुज संपदा वरिया ॥ हाहारे शुज संपदा वरिया ॥ ४ ॥

हैः—हारे तिनसे कर्म हैं । हार गये सबी डुष्ट ॥
हाम धरी गुरु वंदीये । हाथ जौरु धर मिष्ट ॥९॥

राः— राखे षट् काया प्रति । रागद्वेष करी दूर ॥
राचे नही मोह राजसे । राख सदा मुज सूर ॥१०॥

जः— जन्म मरणको भेटते । जराको दूर निवार ॥
जग मांही दीपे सदा । जयजय करुणा धार ॥११॥

उन्नोसे सीतरमें माघ मास गुरुवार ॥
कृष्ण पक्ष दिन चौथको फलवर्द्धि नगर मझार ॥१२॥

यह गुण गाया है सही तुह मति अनुसार ॥
हरिको शरणे राखिये दीजिये दरिद्राण सार ॥१३॥
मुनि हरिसागर.

मु वीकानेर.

॥ ॐ ॥

॥ श्री वीतरामेभ्या नमः ॥

॥ श्रीमत् सुखसागर सद्गुरुभ्योनमः ॥

(मुनिवर्य श्रीमान् हरिसागरजी महाराज तथा वीर
पुत्र आनंदसागरजी महाराजादि कृत.)

॥ सद्गुरु गह्वरी संग्रह ॥

हैमा कल्याण गुरु वंदो मोरे प्यारे ॥
वंदत हो आनंदो मोरे प्यारे ॥ देक ॥

नाम मोहको मार जगाया ।
परमारथ पद व्याया ॥
शुद्ध स्वरूप रमणता रमिया ।
आत्म अनुभव वरिया-ठगन० ॥ ५ ॥

अष्टमी शुक्रा चैत्र वधाया ।
शुक्रवारको आया ॥
दरुगति सम्बत् जिनराया ।
परमानन्द वरपाया-ठगन० ॥ ६ ॥

सुख दाता जगवान आदरिया ।
तीन लोक गुण दरिया ॥
आनन्दकारी आनन्द ठाया ।
आनन्द आनन्द पाया-ठगन० ॥ ७ ॥

॥ आनन्द परम-सुखम् ॥

॥ ॐ ॥

(पूज्य गुण गह्वली)

त्रैलोक्य गुरु-विरह सहो नही जाय कृपा कर तारीये ॥
डर्लज दर्शन-हम डःखिये निराधारको जल्दी दीजिये-टेक

गुरु आप वने उपकारी थे । अष्टैत ज्ञान गुण धारी थे ।
संयम दर्शन सुखकारी थे—त्रैलोक्य० ॥ १ ॥

गुरु करुणारसके सागर थे । मुनि गुण रत्नोंके आगर थे ॥
गुरु सन दम मुख जंवार थे—त्रैलोक्य० ॥ २ ॥

गुरु चमत्कार एक जारी थे । दर्शन कर्त्ता डःखहारी था ॥
जांका रोम २ हुलसारी था—त्रैलोक्य० ॥ ३ ॥

मैं अज्ञानी अधम अपावन । कैसे होऊँ जवपारी ॥
 दूर करो गुरुदेव ये उर्मन । शरण ग्रही हितकारी—जगत० ॥६॥
 सुखकारी आनन्द दिवाकर । तीन लोक सुखकारी ॥
 आनंदकी वरपा जगसुखकर । आनंद आनंदधारी—जगत०॥७॥

॥ ॐ ॥

छगन गुरु सुन्दर दरश दिखाया ।
 गुरु उग्र तपस्वी कहाया—ठगन० ॥ टेक० ॥

नगर लोहाउट दर्शन पाया ।
 चरण कमल सुख दाया ॥
 आनन्द ठाया हर्ष न माया ।
 बाल हृदय हुलसाया—ठगन० ॥ १ ॥

दानशील शुभ जाव ना जाया ।
 वावन ब्रत मुहाया ॥
 दिव्य तपस्या अङ्ग जराया ।
 जगमें जय वरताया—ठगन० ॥ २ ॥

आगम अनुपम धर्म दिपाया ।
 तत्त्वज्ञानसे रङ्गाया ॥
 अति उत्कट संयम आचरिया ।
 निर्मल दरशन धरिया—ठगन० ॥ ३ ॥

अष्ट पञ्च षट् सप्त हटाया ।
 दश गुण अङ्ग रमाया ॥
 तीन तत्वसे प्रेम लगाया ।
 जगमें धर्म दिपाया—ठगन० ॥ ४ ॥

गुरु एक अतिशय ज़ारी ।

जगमें तुमरी है बलिहारी ॥

गुरु शान्त मुझ प्यारी-बंदो ॥ ५ ॥

जो करजोड़ी गुणकों गावे ।

ताके पाप सकल पिट जावे ॥

निर्मल जावना दिलमें जावे-बंदो ॥ ६ ॥

आनंद सदानदका गावे ।

आनद ९ सब जग ध्यावे ॥

आनद परमानदको पावे-बंदो ॥ ७ ॥

॥ आनन्दः परमं सुखम् ॥

४ ॐ ॥

दिलजर दर्शन टो हो स्वामी ॥ तुम हो दीनदयाल हो स्वामी ॥ टेक० ॥

सरतर गजमा टीपतः स्वामी । सुखसागर मुनिराया हो स्वामी ॥

सूत्रति जहाजको तारी हो स्वामी । मोक्ष मार्ग बताया हो स्वामी-दिल० ॥ १ ॥

तसपटपर जगवान् गुरुके । त्रैलोक्य सागर गुरुराय हो स्वामी ॥

पर उपकारमां मग्न होयके । करते आतम ध्यान हो स्वामी-दिल० ॥ २ ॥

हरिसागर हरि तूष्य हो स्वामी । जग्य जीव प्रतिबोध हो स्वामी ॥

दर्शन पदको धारत स्वामी । करत निज उपकार हो स्वामी-दिल० ॥ ३ ॥

नवनिधिसागर मुनिवर स्वामी । ज्ञान निधिको चचे हो स्वामी ॥

जैन बालक अत्र बोधता स्वामी । मोक्ष मार्गको व्यावे हो स्वामी-दिल० ॥ ४ ॥

क्षेमसागर मुनिराय कहावे । चारित्र रत्न सुहाय हो स्वामी ॥

सदचारी बधु सुख पावे । आनद अङ्ग नसाय हो स्वामी-दिल० ॥ ५ ॥

गुरु ज्ञान बिना कैसे जीवें । यह आप बिना कैसे पावें ॥
यह दुःख अनन्त कैसे सेव—त्रैलोक्य० ॥ ४ ॥

गुरु शरण समो नही कोई है । जिनको आज्ञाव जो होई है ।
वह जीवित मृतक समो ही है—त्रैलोक्य० । ५ ॥

मैं शुभ उपयोगसे जूला हूँ । गुरु कृपा करो मैं चूका हूँ ॥
मैं अशरण जावना जूला हूँ—त्रैलोक्य० ॥ ६ ॥

मैं अरजी ध्यान गुजारी है । आनन्दको आनन्दकारी है ॥
आनन्द परमानन्द धारी है—त्रैलोक्य० ॥ ७ ॥

॥ शुभम् ज्ञयात् ॥

॥ ॐ ॥

वंदो २ रे त्रिविक गुरुरायकोजी ।

वंदो त्रैलोक्यसिंधु आधार-गणपतिगयकोजी ॥ टिक० ॥

सुन्दर दर्शन कर दीदार ॥

दिलमे आनन्द हर्ष अपार ॥

प्रणमुं चरण शरण सुखकार-वंदो० ॥ १ ॥

ज्ञानी जैन समयके जान ॥

तैसे पर दर्शन विज्ञान ॥

तात्त्विक गुण रत्नो की खान-वंदो० ॥ २ ॥

गुरु सम दम रस गुण धार ॥

ये है सकल धर्मका सार ॥

याते तुम जगके आधार-वंदो० ॥ ३ ॥

अनुभव आत्म गुण हितकार ॥

उसमें रमते वारंवार ॥

जगमें वरते जस शकार-वंदो० ॥ ४ ॥

द्वेष गुणो करी शोभे महा मुनि ।
आनन्द अग जरी ॥ सु० ॥ ७ ॥

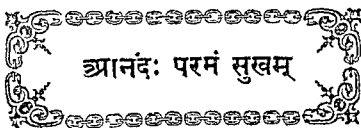
बद्धज जक्ती है महु संघका ॥
वन धन आज वरी ॥ सु० ॥ ८ ॥

उप सम नदिया आज वही है ।
उन्ना फली सवरी ॥ सु० ॥ ९ ॥

पूरव पुण्य उदय हुबो हमारो ।
पाया दरश फरी ॥ सु० ॥ १० ॥

श्री सघ चावे मन वच तनसें ।
गुरुकी जय जवरी ॥ सु० ॥ ११ ॥

शेरसिंह चरणोका चाकर ।
कहे गुरु पाय परी ॥ सु० ॥ १२ ॥



आनंद सिन्धु आनंद पावे ॥ ज्ञान वैराग्य अपार हो स्वामी ॥
सिंह परे गुरु धर्म दिपावे । देशना अमृतधार हो स्वामी-दिलण ॥ ६ ॥

बल्लजसागर मुनि पद सुखकारी । गुरु जक्तिमें जारी हो स्वामी ॥
जक्तिसागर मुनि जक्तिमे शोहे । विनयवन्त गुण मोहे हो स्वामी-दिलण ॥१॥

वीर चौबीस्से उनचाळीस स्वामी । पर्व पर्यषणकी बलिहारी ॥
जाडव कृष्ण एकादशी स्वामी । नगर फलोढीम जय १ कारी-दिलण ॥ ७ ॥

चरण कमलमे बंदना स्वामी । विनय करी करे जोरु हो स्वामी ॥
वाल शिष्य ६म विनये स्वामी । हममनशागुरुपुरोहो स्वामी ॥ ८ ॥

॥ ॐ ॥

मुनोरे जाई आज आनंद घरी ॥ टेकण ॥

मुनि दर्शनके लाज लिये हम
डःख जावे विखरी ॥ सुण ॥ १ ॥

सोना केरो सुरज उगियो ।
आज विकाणे खरी ॥ सुण ॥ २ ॥

आज हमारे सुरतरु फलियो ।
जावे करम जरी ॥ सु० ॥ ३ ॥

खरतर गड्डमे दीपे महा मुनि ।
सुख सूरि पेट धरी ॥ सुण ॥ ४ ॥

गुरु जगवानके प्रदधर सोहे ॥
मुडा शान्त धरी ॥ सुण ॥ ५ ॥

त्रैलोक्य सिंधु नाम धरावे ।
हरिनिधि साय वरी ॥ सुण ॥ ६ ॥

केम गुणे करी शोभे महा मुनि ।
आनद अग जरी ॥ सु० ॥ ७ ॥

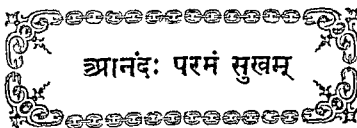
वल्लज जक्ती है महु संघका ॥
वन धन आज बरी ॥ सु० ॥ ८ ॥

उप सम नदिया आज बही है ।
इन्ना फली समरी ॥ सु० ॥ ९ ॥

पूरव पुण्य उदय हुवो हमारो ।
पाया दरश फरी ॥ सु० ॥ १० ॥

श्री सघ चावे मन वच तनसैं ।
गुरुकी जय जवरी ॥ सु० ॥ ११ ॥

शेरसिंह चरणोका चाकर ।
कहे गुरु पाय परी ॥ सु० ॥ १२ ॥



॥ श्री सुखसागरजी मुनि समुदाय यन्त्र ॥ ❀

क्र.सं.	नाम मुनिगर्जोंके	गुरुवर्यके नाम	विद्यमानया काल प्राप्त	सौन पृज्यके शा- मनमें हुये.
१	गुणवन्तसागरजी महाराज	राजसागरजी महाराज	काल प्राप्त	राजसागरजी महाराज
२	पद्मसागरजी महाराज	"	"	"
३	स्थानसागरजी महाराज	"	"	"
४	जगवानमागरजी महाराज	सुखसागरजी महाराज	"	सुखसागरजी महाराज
५	चिदानन्दजी महाराज	"	"	"
६	रामसागरजी महाराज.	"	"	"
७	ऋष्याणसागरजी महाराज	"	"	"
८	रत्नसागरजी महाराज	"	"	"
९	ठगनसागरजी महाराज	स्थानसागरजी महाराज	"	जगवानमागरजी महाराज
१०	चैतन्यसागरजी महाराज	जगवानसागर- जी महाराज.	"	"
११	सुमतिसागरजी महाराज	"	विद्यमान	"
१२	गुमानसागरजी महाराज	"	कालप्राप्त	"
१३	वनसागरजी महाराज	"	"	"

* श्री सुखसागर मुनि समुदाय यन्त्र होने हुये भी श्रीमान् राजसागरजी महाराजके भी कतिपय शिष्य इन्मे सम्मिलित किये गये हैं उसका यही कारण है कि वे मुनिराज आपके शासनमे थे.

१४	तेजसागरजी महाराज	"	"	"
१५	कीर्तिसागरजी महाराज	सुमतिसागरजी महाराज	"	स्वतन्त्रतया सुमति सागरजी मणके पास
१६	त्रैलोक्यसागरजी महाराज	जगवान्सागरजी महाराज	विद्यमान	जगवान्सागरजी महाराज
१७	रत्नसागरजी महाराज	त्रैलोक्यसागरजी महाराज	"	ठगनसागरजी महाराज
१८	हरिसागरजी महाराज	जगवान्सागरजी महाराज	"	"
१९	कल्याणसागरजी	हरिसागरजी महाराज	"	"
२०	हृमासागरजी महाराज	सुप्तसागरजी महाराज	काल प्राप्त	"
२१	लब्धिसागरजी महाराज	कीर्तिसागरजी महाराज	विद्यमान	स्वतन्त्रतया सुमति सागरजी महाराजके पास
२२	जावसागरजी महाराज	"	"	"
२३	मणिसागरजी महाराज	सुमतिसागरजी महाराज	"	"
२४	पूर्णसागरजी महाराज	ठगनसागरजी महाराज	काल प्राप्त	ठगनसागरजी महाराज
२५	नवनिधिसागरजी महाराज	पूर्णसागरजी महाराज	विद्यमान	"
२६	क्षेमसागरजी महाराज	"	"	"
२७	रूपसागरजी महाराज	त्रैलोक्यसागरजी महाराज	"	"

३८	मणिसागरजी महाराज	रूपसागरजी महाराज	"	लपता
३९	आनंदसागर.	त्रैलोक्यसागरजी महाराज.	"	त्रैलोक्यसागरजी महाराज
३०	कल्याणसागरजी	"	"	"
३१	ब्रह्मजसागरजी.	द्वैपसागरजी महाराज	"	"
३२	भक्तिसागरजी.	त्रैलोक्यसागरजी महाराज.	"	"

